श्रीमद्विजयानन्दसूरि - स्वर्गारोहणशताब्दिस्मारकग्रंथ - संस्करण - श्रेणि

तपागच्छगगनदिमणि - न्यायांभोनिधि - श्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरजी महाराज

(प्रसिद्धिनाम पूज्य आत्मारामजी म. विरचित)

सम्यक्त्व शल्योद्धार

: शुभाशीर्वाद :

तपागच्छाधिराज पूज्यपाद आचार्यदेवेश

श्रीमद् विजय रामचन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा

: संपादक :

वात्सल्यमहोदधि पूज्य आचार्यदेव

श्रीमद् विजय महाबलसूरीश्वरजी महाराजा

के शिष्यरत्न प्रवचनप्रदीप पूज्य आचार्यदेव

श्रीमद् विजय पुण्यपालसूरीश्वरजी महाराजा

: प्रकाशक :

पार्श्वाभ्युदय प्रकाशन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

।। सकलवाञ्छितप्रदायक श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः ।।
।। परमाराध्यपाद श्रीमदात्म-कमल-वीर-दान-प्रेम-रामचन्द्रसूरीश्वरेभ्यो नमः ।।

※ *श्रीमद्विजयानन्दसूरि-स्वर्गारोहणशताब्दिस्मारक ग्रन्थ-संस्करण श्रेणि* ※

तपागच्छगगनदिनमणि-पाञ्चालदेशोद्धारक-न्यायांभोनिधि-जैनाचार्य
श्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरजी (प्रसिद्ध नाम आत्मारामजी) महाराज विरचित

सम्यक्त्वशल्योद्धार

: शुभाशीर्वाद :
सुविशालगच्छाधिपति-व्याख्यानवाचस्पति-परमशासनप्रभावक
देवांशीमहामानव संघस्थविर पूज्यपाद आचार्यदेव
श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा

: संपादक :
वात्सल्यनिधि पू. आचार्यदेव
श्रीमद् विजय महाबल सूरीश्वरजी महाराज
के शिष्यरत्न प्रवचनप्रदीप पू. आचार्यदेव
श्रीमद् विजय पुण्यपाल सूरीश्वरजी महाराज

: सौजन्य :
श्री झालावाड जैन श्वे.मू.पू. ट्रस्ट-संघ- सुरेन्द्रनगर
आराधना भुवन जैन उपाश्रय सुरेन्द्रनगर- ३६३००१

: प्रकाशक :
पार्श्वाभ्युदय प्रकाशन - अहमदाबाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्तिस्थान

रसिकभाई चन्दुलाल शाह
४७, चंद्रालय,
स्वस्तिक सोसायटी,
नवरंगपुरा, अहमदाबाद-९
फोन : ४४ १३ ७९

ज्योतिन्द्रभाई जे. शाह
३, कंचनतारा एपार्टमेन्ट,
जैननगर, पालड़ी,
अहमदाबाद
फोन : ४१ ०२ ८३

श्रीपालनगर जैन श्वे. मू. पू. ट्रस्ट पेढी
१२, जे. महेता रोड, वालकेश्वर, मुंबई-६
फोन : ८१२१६८२

: प्रकाशन दिन :

ज्येष्ठ शुक्ल ८ दि. २६-५-१९९६ रविवार
वी.सं. २५२२ : स्वर्गारोहण शताब्दि दिन : वि.सं. २०५२

मूल्य : रू. १००-०० **प्रतियाँ :** १०००
प्रथमावृत्ति : १९४१ ● **द्वितीयावृत्ति :** १९४३
तृतीयावृत्ति : १९४९ ● **चतुर्थावृत्ति :** २०५२

सूचना

यह पुस्तक ज्ञानद्रव्य से प्रकाशित हुआ है इसलिए गृहस्थों से विनंति है कि ज्ञानखाते में योग्य मूल्य देकर ही इस पुस्तक का उपयोग करें ।

◆ टाइपसेटिंग ◆
देवराज ग्राफिक्स
५४, मेघदूत फ्लेट्स,
आश्रम रोड, अहमदाबाद-९
फोन : ४० ४१ ८६

◆ मुद्रक ◆
पद्म प्रकाशन
प्रकाश हाईस्कूल
रिलिफ रोड, अहमदाबाद-१
फोन : ४१ ०२ ८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

जिनशासन के जवाहीर, भारतवर्ष के भूषण, गुजरात के गौरव और महाराष्ट्र के जो मुगुटमणि थे ऐसे सुविशालगच्छाधिपति-व्याख्यानवाचस्पति-स्वर्गीय-पूज्यपाद आचार्यदेव **श्रीमद्विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी** महाराजा की अप्रतिम कृपा और शुभाशीष से सज्ज्ञान की आराधना में आगे बढ़ते हुए हमारे **पार्श्वाभ्युदय प्रकाशन** नामक ट्रस्ट द्वारा, जिनकी आज जिनशासन में स्वर्गारोहणशताब्दि मनाई जा रही है ऐसे सूरिपुरंदर पूज्यपाद **श्री आत्मारामजी महाराज** विरचित **'सम्यक्त्वशल्योद्धार'** ग्रंथ की चतुर्थ आवृत्ति प्रकाशित की जा रही है वह हमारे लिए परमसौभाग्य की बात है ।

इस ग्रन्थ के रचयिता महापुरुष पूज्य आत्मारामजी महाराज का जीवन-कवन बहुत ही रोचक और रोमांचक था । 'तपागच्छ के आद्य आचार्यदेव' के नाते वीसवीं सदी में बहुत ही ख्यातनाम थे । 'सत्य शोध के लिए उत्कंठा और ध्येयप्राप्ति तक संघर्ष का अविरत सामना' उनकी ये दो चीजें हम सब के लिए अनुपम आदर्श हैं । साधु-जीवन की मर्यादा के अखंड उपासक होने पर भी उन्हें प्राप्त आंतरराष्ट्रीय ख्याति यह उनकी अद्भूत विशेषता थी । जिनशासन के विरोधियों को चुनौती देकर उनके मुँह बंद करने की अजीबगजीब शक्ति के धनी पूज्यश्री ने अनेक तात्त्विक ग्रन्थों का निर्माण किया था जो उन्हीं की 'परमविद्वत्ता' के साक्षीरूप हैं ।

वीसवीं सदी के युगपुरुष समान इस पवित्र आत्मा की इस साल (सं. २०५२) ज्येष्ठ शुक्ल दि. २६-५-९६ रविवार के दिन स्वर्गारोहण-शताब्दि आ रही है, इस प्रसंग की स्मृति के लिए एक महामूल्य कर्तव्यरूप **'श्रीमद्विजयानन्दसूरिस्वर्गारोहण शताब्दि स्मारक ग्रन्थ संस्करण श्रेणि'** के अंतर्गत उनके द्वारा रचित प्रत्येक ग्रन्थों को ऑफसेट मुद्रण में पुनः प्रकाशित करने का शुभ निर्णय हमारे ट्रस्ट ने किया है, उसी के अनुसंधान में पहला पुस्तक **'जैनतत्त्वादर्श'** तीन बरस पहले प्रकाशित हो गया । आज **'सम्यक्त्वशल्योद्धार'** यह दूसरे ग्रन्थरत्न का प्रकाशन करते हुए हमें बहुत ही आनंद की अनुभूति हो रही है ।

हमारे इस कार्य के प्रेरक बल यदि कोई है तो वे जिनशासन के ज्योतिर्धर स्व.पू.आ.भ. **श्रीमद्विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी** महाराजा है । उन्होंने ही एकबार बातचीत दरम्यान पू.आ.भ. **श्रीमद्विजय पुण्यपालसूरीश्वरजी** म. को कहा था कि **'पूज्य**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मारामजी महाराज के सभी ग्रन्थ पुनः प्रकाशित करने लायक हैं, उससे बहुत बड़ा उपकार होगा' इन्हीं वचन के फलस्वरूप आज पूज्यपादश्रीजी के शुभाशीष से पू. आचार्यदेव **श्रीमद्विजय पुण्यपालसूरीश्वरजी** महाराज के काबिल संपादन की निगरानी में तैयार किया गया **'सम्यक्त्वशल्योद्धार'** ग्रंथ आपके करकमलों को शोभित कर रहा है । पूज्यश्री की इच्छा को मूर्त करने के लिए इस प्रकार हम भी निमित्त बने इनके आनंद के साथ शेष सभी ग्रंथ भी जल्दी से प्रकाशित हो, ऐसी कामना इस समय पर हम रखते हैं ।

वाचक को निवेदन है कि इस ग्रन्थ को पढ़ने के पहले ग्रंथकार और ग्रंथ के बारे में जानकारी प्राप्त करने हेतु 'संपादकीय और प्रस्तावना' पढ़ने के लिए खास अनुरोध करते हैं, जिससे वाचक स्वयं ग्रंथ की विश्वसनीयता से परिचित होकर किसी अमूल्य चीज की प्राप्ति का आनंद और अनुभव कर सकेगा । जिनके आधार पर इस चतुर्थ आवृत्ति का संपादन-प्रकाशन शक्य बना है वे सभी आवृत्तियाँ प्रकाशित करनेवाली संस्था और संपादकों का हम हार्दिक आभार मानते हैं ।

इस अनुपम आवृत्ति का चित्ताकर्षक संपादन करनेवाले, धर्मतीर्थप्रभावक पू.आ.भ. **श्रीमद्विजय मित्रानन्दसूरीश्वरजी महाराज** के प्रभावकशिष्यरत्न वात्सल्यनिधि पू.आ.भ. **श्रीमद्विजय महाबलसूरीश्वरजी महाराज** के शिष्यरत्न प्रवचनप्रदीप पू.आ.भ. **श्रीमद्विजय पुण्यपालसूरीश्वरजी महाराज** के हम अत्यंत ऋणी हैं । **श्री झालावाड जैन श्वे.मू.पू.ट्रस्ट संघ - सुरेन्द्रनगर** ने अपने ज्ञानद्रव्य के निधि में से इस ग्रंथ का प्रकाशन करके जो अनुमोदनीय लाभ लिया है, इनका अनुमोदन व अभिनन्दन करने के साथ अपेक्षा रखते हैं कि भविष्य में भी श्रीसंघ ऐसे लाभ लेते रहेगा ।

अंत में इस ग्रंथ के अध्ययन द्वारा भव्यात्माएँ जैनशासन को यथार्थ रीति से समझे, उसके तत्त्वों पर अडिग श्रद्धा बनाये रखें और यथाशक्ति उनका आचरण करके सभी मुक्ति को प्राप्त करें यही मंगल मनोकामना !

- पार्श्वाभ्युदय प्रकाशन - अहमदाबाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुप्रसिद्ध शासनप्रभावक स्व-परशास्त्रनिष्णात न्यायाम्भोनिधि जैनाचार्य

श्री १००८ श्रीमद् विजयानन्दसूरीश्वरजी महाराज

❁ ढूंढक दीक्षा-१९१० (पंजाब) मालेरकोटला ❁ संवेगी दीक्षा-१९३२, अमदावाद (गुजरात) ❁

❁ आचार्य पद-१९४३, पालीताणा (काठीयावाड) ❁ स्वर्गवास-१९५२, गुजरांवाला (पंजाब) ❁

श्री १००८ श्रीमद् आत्मारामजी महाराजजी

जन्म : विक्रम संवत-१८९३, चैत्र शुदि-१, लेहरा (पंजाब)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनके हृदयकमल की अदम्य इच्छा, अंतःकरण के अनहद आशीर्वाद
और लगातार बरसती कृपा-वर्षा के जिस त्रिवेणी संगम से
इस ग्रंथ का सम्पादन-प्रकाशन शक्य बना, ऐसे
सुविशालगच्छाधिपति, व्याख्यान-वाचस्पति, सन्मार्गदर्शक, पू. आ. भ.

श्रीमद्विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुमोदन-अभिनन्दन

तपगच्छगगनदिनपति पूज्यपाद आचार्यदेवेश

श्रीमद्विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा

की दिव्याशिष व सुविशालगच्छाधिपति पूज्यपाद आचार्यदेव

श्रीमद्विजय महोदयसूरीश्वरजी महाराजा

की आज्ञा से प्रशांतमूर्ति पूज्यपाद आचार्यदेव

श्रीमद्विजय नित्यानन्दसूरीश्वरजी महाराजा

वात्सल्य महोदधि पूज्यपाद आचार्यदेव

श्रीमद्विजय महाबलसूरीश्वरजी महाराजा

प्रवचन प्रदीप पूज्यपाद आचार्यदेव

श्रीमद्विजय पुण्यपालसूरीश्वरजी महाराजा तथा

तपस्वीरत्न पूज्य मुनिराज

श्री कमलरत्नविजयजी महाराज

आदि पूज्य विशाल (ठा. १२) मुनिगण का

सं. २०५० की साल में अनेकविध धर्मानुष्ठान-अनुमोदनीय

तपश्चर्या और मोक्षामार्गानुसारि प्रवचनों से सभर जो ऐतिहासिक व

अविस्मरणीय चातुर्मास, **श्री सुरेन्द्रनगर जैन श्वे.मू.पू. संघ - आराधना भुवन**

के आंगण में हुआ, इनकी अनुमोदनार्थ अपने संघ के ज्ञानद्रव्य की आय में से

इस ग्रन्थ का समुद्धार करने के लिए आर्थिक संपूर्ण सहयोग देकर

श्रुतभक्ति का अमूल्य लाभ लेनेवाले

श्री झालावाड जैन श्वे.मू.पू. ट्रस्ट संघ- सुरेन्द्रनगर का

हार्दिक अनुमोदन और अभिनन्दन !!!

पार्श्वाभ्युदय प्रकाशन - अहमदाबाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनन्द-वाणी

'शुद्ध मार्ग गवेषक और सम्यक्त्वाभिलाषी प्राणियों का मुख्य लक्षण यही है कि : शुद्ध देव, गुरु और धर्म को पहचान के उनको अंगीकार करना और अशुद्ध देव, गुरु, धर्म का त्याग करना । परन्तु चित्त में दंभ रख के अपना कक्का खरा मान बैठके सत्यासत्य का विचार नहीं करना अथवा विचार करने से सत्य की पहचान होने से अपना ग्रहण किया मार्ग असत्य मालूम होने से भी उसको नहीं छोड़ना और सत्य मार्ग को ग्रहण नहीं करना यह लक्षण सम्यक्त्व प्राप्ति की उत्कंठावाले जीवों का नहीं हैं । और जो ऐसे हो तो हमारा यह प्रयत्न भी निष्फल गिना जावेगा, इस वास्ते प्रत्येक भव्य प्राणी को हठ छोड़ के सत्य मार्ग के धारण करने में उद्यत होना चाहिये ।'

(स. श. पृ. नं. १७४)

'चौटे के चोर तो वही हैं जो सूत्रों में कही हुई बातों को उत्थापते है, सूत्रों को उत्थापते हैं अर्थ फिरा लेते हैं, शास्त्रोक्त वेश को छोड़के विपरीत वेश में फिरते हैं । इतना ही नहीं परन्तु शासन के अधिपति श्री जिनराज के भी चोर हैं और इस से इनको निश्चय दंड (अनंत संसार) प्राप्त होनेवाला हैं ।'

(स. श. पृ. नं. ७६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुभ्यं समर्पयामि

मेरे अनन्तोपकारी हे सूरिपुरन्दर गुरुदेव ! आत्मारामजी महाराज की सत्यनिष्ठा, संयमनिष्ठा और शास्त्रनिष्ठा आपकी धमनियों में रक्त की तरह लगातार प्रवाहमान रही थी । पूज्य आत्मारामजी महाराज की तरफ से मिली सुविशुद्ध विरासत को आपने यथार्थ रीति से जी जान से जीवनपर्यंत संभल रखी थी, इतना ही नहीं उसकी वृद्धि करके उसमें चार चाँद लगा दिये थे । पूज्य आत्मारामजी महाराज की तरह ही आप धनाढ्यों की शेह-शरम में न आकर सिर्फ एकमात्र जिनाज्ञा और शास्त्र को केन्द्र बनाकर हमेशा सन्मार्ग का निरूपण करते थे । उन्हीं की तरह आपको भी आंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई थी । व्यक्तित्व और कृतित्व से आप स्वयं **'लघु आत्माराम'** थे ।

सत्यपथ प्रदर्शक- संघ परमहितचिंतक - संघ स्थविर - जिनशासन के ज्योतिर्धर - हजारों, लाखों और करोड़ों हृदयों के शृंगार - मेरी जीवन नौका के तारणहार - परम कृपावतार - प्रातःस्मरणीय हे परम गुरुदेव पूज्याचार्य देव **श्रीमद्विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा !** जहाँ कुछ भी मेरा नहीं हैं, सभी आपका ही है, वहाँ आपको मैं किसका समर्पण करूँ ? फिर भी एक शिष्टाचार के रूप में आपकी इच्छा और आशीर्वाद के फलस्वरूप पुनः संपादित यह ग्रन्थरत्न आपकी पवित्र आत्मा को समर्पित करके दिव्यानन्द की अनुभूति करता हूँ ।

- बाल पुण्यपाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपादकीय

कहा जाता है : महापुरुष जितने प्रसिद्ध होते हैं, उतने ही अप्रसिद्ध होते हैं । न्यायांभोनिधि - पांचालदेशोद्धारक - श्रीमद् विजयानन्दसूरीश्वरजी महाराजा एक ऐसा ही व्यक्तित्व था । उन्हीं के द्वारा विरचित जैन तत्त्वादर्श आदि ग्रंथ का संपादन करने की जिम्मेदारी मुझ पर आने से उन्हीं के बारे में बहुत कुछ जानने व अनुभव करने को मिला । फिर भी उन्हें समझने का दावा तो कर ही नहीं सकता । उन्हें पहिचानने का और जानने का दावा तब ही और वे ही कर सके कि उन्हीं के द्वारा रचा गया साहित्य जीवन में कुछ समझने की इच्छा से पढ़ा हो, उस पर श्रद्धा पैदा की हो । सिर्फ उनके गुणगान से या उनके भक्त कहलाने से उनकी सही पहचान नहीं हो सकती लेकिन उन्हें सही रूप में पहिचानने के लिए उनका विशाल साहित्य ही हमारे लिए प्रमाण बन सके यह निःशंक बात हैं । लेकिन दुःख के साथ बताना पड़ता है कि उनके भक्त और शिष्य गिने जानेवाले वर्ग में से भी बहुत बड़ा वर्ग ऐसा होगा कि- जिन्होंने पूज्यश्री के साहित्य का अध्ययन तो दूर रहा, उस साहित्य को देखा भी नहीं होगा !!!

अपने सबके तारणहार-सुविशालगच्छाधिपति-संघ परमहितचिंतक-परमकृपावतार-करुणासागर-महामनीषीप्रवर-संघस्थविर पू. आचार्यदेव श्रीमद्विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के हृदय में यह बात खटकती थी । वे अपने संभाषणमें कभी-कभी इसके संदर्भ में अंगुलीनिर्देश करते थे । उन्होंने एक बार मुझे कहा कि **'पुण्यपाल ! आत्मारामजी म. के ग्रंथ बहुत ही उपयोगी हैं । इनका अध्ययन-चिंतन-मनन बहुतों को उपकारक सिद्ध हुआ है इसलिए उनका रचा हुआ सभी साहित्य पुनः प्रकाशित करने जैसा है, जिससे उसके द्वारा लोग सन्मार्ग को समझे और प्राप्त करे'** महापुरुषों का अंगुलीनिर्देश ही पर्याप्त होता है । पूज्यश्री की इस बात को उसी समय हीं मैंने 'तहत्ति' की । इसके लिए पूज्यश्री ने अंतःकरण से आशीर्वाद भी दिये । इन सबके परिणामस्वरूप तीन बरस पहले **'जैन तत्त्वादर्श'** संपादित करके प्रकाशित किया, इस के बाद में आज **सम्यक्त्व शल्योद्धार** का प्रकाशन हो रहा है यह एक आनंद की बात है ।

वर्षों पूर्व प्रकाशित पूज्यश्री का विशाल और समृद्ध साहित्य आज अनुपलब्ध हैं । कुछ पुराने भंडारों में उनका साहित्य देखने को मिलता है । लोक भोग्य से लेकर विद्वद्भोग्य बन सके ऐसा विपुल साहित्य पूज्यश्री ने अल्प समय में हमें दिया है, यह हमारा परम सौभाग्य है । ५९ साल की छोटी-सी जिन्दगी में पूज्यश्री का संयमपर्याय श्वेतांबर मूर्तिपूजक के नाते सिर्फ २० साल का था जब कि ग्रंथ सर्जन का पर्याय २६ वर्ष का ही था । इस समयावधि में नवतत्त्व से प्रारंभित पूज्यश्री की श्रुत गंगा का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवाह गति करते करते स्नात्रपूजा तक पहुँचा है । **जैन तत्त्वादर्श, अज्ञानतिमिरभास्कर, चतुर्थस्तुतिनिर्णय(भा. १-२) तत्त्वनिर्णयप्रासाद, सम्यक्त्वशल्योद्धार, ईसाई मत समीक्षा** आदि अनेक सुरुचिपूर्ण ग्रंथों का नवसर्जन करके पूज्यश्री ने सिर्फ भारत के ही नहीं लेकिन विदेश के भी दिग्गज पंडित और विद्वानों को अपनी बुद्धि-प्रतिभा से प्रभावित किया था । इसीलिए तो इस देश की सीमा को पार करके परदेश में पहुँची हुई इनकी कीर्ति ने परदेशियों द्वारा भी उन्हीं को **'जैन धर्म और जैन साहित्य के विद्वानों ने मान्य किये निहायत विद्वान और सबसे बड़े व्यक्तित्त्व धारक पुरुष हैं'** ऐसा सन्मान दिलवाया था । शायद जैन शासन में यह प्रथम ही प्रसंग था कि विदेश में भी एक जैन मुनि ने यह सन्मान प्राप्त किया हो ।

पंजाब जैसे दूर प्रदेश में भी सिक्ख जाति के कपूर क्षत्रिय कुल में पैदा होने पर भी किसी निमित्त के कारण स्थानकवासी पंथ की प्रव्रज्या प्राप्त करने पर भी वे जैनदर्शन को यथार्थ रूप में समझ सके, सही मार्ग को प्राप्त कर सके इसका कारण उनकी विद्वत्ता के साथ-साथ 'सत्य ही प्राप्त करना' यह उनका असिव्रत था । सत्य को प्राप्त करने की उत्कंठा थी । सत्य का दूसरा नाम पूज्य आत्मारामजी म. था । सत्य उनका जीवन नहीं किंतु प्राण था । सत्य उनका शरीर नहीं किंतु उनकी आत्मा थी । सत्य उनका प्रेय ही नहीं, ध्येय था । 'सत्य के बिना सब कुछ व्यर्थ' ऐसा वह मानते थे । यदि जीवन में सत्य प्राप्त नहीं किया और उसे आचरण में नहीं लाया गया तो मानव जन्म भी असफल रहेगा, ऐसी उनकी स्पष्ट मान्यता थी । इसीलिए ही तो जब स्थानकवासी संप्रदाय के वरिष्ठ अमरसींघजी पूज्य आत्मारामजी महाराज को एकांत में बुलाकर समझाने लगे कि **'तुम तो अपने धर्म में रत्न जैसे पैदा हुए हो, इसलिए अपने में मतभेद पैदा हो ऐसा तुम्हें नहीं करना चाहिए'** तब पूज्य आत्मारामजी म. ने जो कहा था वह याद रखने योग्य है । **'शास्त्रों में पूर्वाचार्य महात्माएं जो कह गये हैं उससे उलटी प्ररुपणा तो मैं कदापि नहीं करूँ । मैं तो आपको भी यही विनती करता हूँ कि सत्यासत्य का निर्णय आप अवश्य कर लें और मिथ्या आग्रह छोड़ दें ! क्योंकि यह मनुष्यावतार बारबार मिलता नहीं है'** पूज्यश्री की इस सत्यनिष्ठा ने ही उन्हीं को सन्मार्ग की ओर प्रेरित किया और सत्य की उपलब्धि के बाद वे भी इसके साथ दृढता से लगे रहे !

'सत्य किसी भी समय असत्य प्रेमी को कडुआ प्रतीत होता है । इसलिए सत्य द्वेषी ऐसे लोग सत्य का गला घोंटने का प्रयास करते हैं । इसी प्रकार उनके समय में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं थी । सत्य के संवर्धन-संरक्षण के लिए पूज्यश्री को भरसक प्रयत्न करना पड़ा । सत्य प्राप्त करना आसान है, उसे संभालना कठिन है । साधना का प्रथम सोपान सत्य है तो बाद का सोपान है सत्त्व । पूज्यश्री के पास यह सत्त्व गुण भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जबरदस्त था । पूज्यश्री को अनेक अवरोध, संघर्ष और चुनौतियों का सामना करना पड़ा था । इसके लिए जान की बाजी लगाकर बहादुर सैनिक की तरह उन्हें सामना करना पड़ा था । ऐसे प्रतिकूल समय में भी हताश-निराश न होकर पूज्यश्री ने अकेले ही सत्य का समर्थन, संरक्षण, संवर्धन पूरी ताकत से और अधिक परिश्रम उठाकर किया था । फलस्वरूप सात हजार श्रावक मूर्ति पूजक बने थे । और सोलह साधुओं के साथ पूज्यश्री स्थानकवासी मत को तिलांजली देकर श्वेतांबर मूर्तिपूजक साधु बने थे ।

'सम्यक्त्वशल्योद्धार' ग्रंथ का सर्जन भी पूज्यश्री की इस सत्यनिष्ठा का ही परिणाम हैं । इस ग्रंथ की रचना हुई इनमें कारण एक जेठमल नामक ढूंढक साधु की असत्य - कूट उपदेश और निराधार युक्ति से पूर्ण सम्यक्त्वसार नामक एक किताब थी । मूर्ति-पूजा के विरुद्ध जिनाज्ञा और शास्त्र निरपेक्ष कई बातों से कूट-कूट कर भरे हुए इस ग्रंथ का तीव्र निषेध करने की जब आवश्यकता महसूस हुई तब उनके प्रतिकार के लिए पूज्यपाद **श्री आत्मारामजी म.** ने अपनी कलम उठाई और स्थल-स्थल पर आगम और आगममान्य प्रकरण ग्रंथों को साक्षी देकर जिस ग्रंथ का नवसर्जन किया वो ही **'सम्यक्त्वशल्योद्धार'** नाम से प्रसिद्ध हुआ । पूज्यश्री ने जेठमल साधु की बातों का इतना तर्क शुद्ध और श्रद्धापूर्ण खंडन किया कि आज भी यह ग्रंथ तटस्थ जिज्ञासु प्राणिओं के लिए अनोखा राहबर बनता है और जिनशासन का गौरव बढ़ाता है ।

चतुर्थ आवृत्ति के रूप में प्रकाशित हो रहे इस ग्रंथ की रचना की शुरूआत पूज्यश्रीने वि.सं. १९४० (ई.सं. १८८३) में बिकानेर के चातुर्मास में की और वि.स. १९४० (ई.सं. १८८४) में इस ग्रंथ की पूर्णाहूति अहमदाबाद के चातुर्मास में की । इस चातुर्मास में 'इस ग्रंथ की पूर्णाहूति और शांतिसागर यति से वाद' यह दोनों महत्त्वपूर्ण जिनशासन की प्रभावना के कार्य पूज्यश्री ने किये थे । यह ग्रंथ पूज्यश्री ने गुजराती भाषा में लिखा और सबसे पहले **श्री जैन धर्मप्रसारक सभा - भावनगर** की ओर से प्रकाशित हुआ । इस ग्रंथ को हिन्दी भाषी जनता भी पढ़ सके व सत्य को पा सके इसलिए वडोदरा के **श्री गोकुलभाई** ने हिन्दी भाषा में छपवाया । इसके बाद भाषा के अल्प तफावत के साथ **आत्मानन्द जैन सभा - पंजाब** की ओर से पुनःप्रकाशित किया गया । आज यह बड़ी आनंद की बात है कि ग्रंथकर्ता पूज्यश्री की स्वर्गगमन शताब्दि के स्मृति प्रसंग पर यह ग्रंथ की चतुर्थावृत्ति प्रकाशित हो रही है । इस ग्रंथ के विशेष परिचय के लिए इसमें समाविष्ट **'पूर्वावृत्ति की प्रस्तावना'** का पठन करे ऐसा पाठकों को अनुरोध है ।

पुनः प्रकाशन की कुछ बात : वि.सं. २०५२ का वर्ष यानी ग्रंथकर्ता पू. आत्मारामजी म. की स्वर्गारोहण शताब्दि पर्व मनाने का एक अनोखा अवसर ! यह अवसर जैन संघ के लिए गौरवपूर्ण बात है । समस्त जैन शासन की आन-मान और शान को बढ़ानेवाले तपागच्छ के सूरिपुरन्दर पूज्यश्री के रचे गये सभी ग्रंथों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशन/संपादन, जिन श्रीमद् की परम इच्छा- कृपा और आशीर्वाद से आरंभ किया गया है ऐसे शासन के अग्रणी- संघ स्थविर पूज्यपाद आचार्यदेवेश **श्रीमद्विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी** महाराजा की उपस्थिति में ही मुझे यह कार्य पूर्ण करना था, लेकिन कुछ संयोगवश मैं शुरू भी नहीं कर सका तो पूर्ण करने की बात क्या रही ? इनका अतीव दुःख होने पर भी पूज्यश्रीजी के वे वचन आज साकार स्वरूप धारण कर रहे हैं, इसका आनंद भी अवर्णनीय है । पूज्यश्री की उपस्थिति में यह कार्य हुआ होता तो पूज्यश्री बहुत ही हर्षान्वित होते यह निश्चित बात है ।

संपादन कार्य का समग्र यश, मेरे दीक्षा दाता परम गुरुदेव सिद्धांत महोदधि-सच्चारित्र्यचूडामणि-कर्मसाहित्य निष्णात पूज्यपाद आचार्यदेवेश **श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराजा**, प्रेरणा दाता पूज्यश्री तथा सुविशालगच्छाधिपति पूज्यपाद आचार्यदेव **श्रीमद् विजय महोदय सूरीश्वरजी महाराजा** और धर्म तीर्थ प्रभावक पूज्यपाद आचार्यदेव **श्रीमद् विजय मित्रानन्दसूरीश्वरजी महाराजा** और उनके शिष्यरत्न मेरे परमतारक पिता गुरुदेव वात्सल्यमहोदधि पूज्यपाद आचार्यदेव **श्रीमद् विजय महाबलसूरीश्वरजी महाराजा** की मुझ पर लगातार बरसती कृपा को ही दिया जा सकता है । इस महाकीय ग्रंथ का संपूर्ण प्रुफ रीडींग आदि करनेवाले अन्तेवासी **मुनिश्री भुवनभूषणविजयजी** तथा **मुनिश्री वज्रभूषणविजयजी** भी श्रुतभक्ति के साथ-साथ परम निर्जरा के भागी बने है तो प्रकाशन कार्य की जिम्मेदारी अपने सिर पर लेनेवाले **श्री झालावाड जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक ट्रस्ट- सुरेन्द्रनगर संघ** ने अपने ज्ञानद्रव्य में से इस ग्रंथ का प्रकाशन कार्य करके अनुमोदनीय लाभ लेने के साथ-साथ श्रुत रक्षा का एक सुन्दर कार्य किया है । प्रकाशन संस्था **पार्श्वाभ्युदय प्रकाशन** का भी यह स्तुत्य प्रयास अभिनन्दनीय है । नास्तिक को भी आस्तिक बनाने वाले इस ग्रंथ के संपादन में जो स्वाध्याय का परमानन्द मिला है इसका वर्णन मैं कैसे करूँ ?

भगवद्भक्ति की सिद्धि-शुद्धि और वृद्धि के लिए अनुपम आदर्श रूप इस ग्रंथ का पठन सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का अपूर्व साधन है । दलील-दृष्टांत और आगम प्रमाणों से समृद्ध इस ग्रंथ की पूज्य श्री द्वारा जैन शासन को मिली भेट एक अमूल्य नजराना है । इस ग्रंथ को चिंतन-मनन-निदिध्यासन से सभी भव्यात्माएँ यथार्थ तत्व समझकर, यथाशक्ति आचरण करके वे परमतत्व स्वरूप मोक्ष को शीघ्र प्राप्त करे यही शुभेच्छा -

श्री जैन उपाश्रय - संगमनेर **- विजय पुण्यपालसूरि**

सं. २०५२ चै.सु. ९,

गुरुवार, दि. २८-३-१९९६

स्वर्गारोहण शताब्दि वर्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

[पूर्वावृत्ति में से साभार]

नित्यानंदपदप्रयाणसरणी श्रेयोऽवनिसारिणी ।
संसारार्णवतारणैकतरणी विश्वर्द्धिविस्तारिणी ।।
पुण्याङ्कूभरप्ररोहधरणी व्यामोहसंहारिणी ।
प्रीत्यैस्ताज्जिन तेऽखिलार्त्तिहरणी मूर्त्तिर्मनोहारिणी ।। १ ।।

अनंत ज्ञानदर्शनमय श्रीसिद्ध परमात्मा को तथा चार निक्षेपायुक्त श्रीअरिहंत भगवंत को और शाश्वती अशाश्वती असंख्य जिनप्रतिमा को त्रिकरण शुद्धि से नमस्कार कर के इस ग्रंथ के प्रारंभ में मालूम किया जाता है कि प्रथम प्रश्नोत्तर में लिखे अनुसार ढूंढकमत अढाईसौ वर्ष से निकला है जिस में अद्यापि पर्यंत कोई भी सम्यक्ज्ञानवान् साधु अथवा श्रावक हुआ हो ऐसे मालूम नहीं होता है, कहां से होवे ? जैनशास्त्र से विरुद्ध मत में सम्यक्ज्ञान होने का संभव ही नहीं है, उत्पत्ति समय में इस मत की कदापि कितनेक वर्ष तक अच्छी स्थिति चली हो तो आश्चर्य नहीं परंतु जैसे इंद्रजाल की वस्तु बहुत काल तक नहीं रहती है वैसे इस कल्पित मत का भी बहुत वर्ष से दिनप्रतिदिन क्षय होता देखने में आता है, क्योंकि अनजानपन से इस मत में साधु अथवा श्रावक बने हुए बहुत प्राणी जब जैन शास्त्र के सच्चे रहस्य के ज्ञाता होते हैं, तो जैसे सर्प कुंज को त्याग के चला जाता है ऐसे इस मत को त्याग देते हैं और जैनमत जो तपागच्छ में शुद्ध रीति देशकालानुसार प्रवर्त्तता है उस को अंगीकार करते हैं, इसी प्रकार इस ग्रंथ के कर्ता महामुनिराज १००८ **श्रीमद्विजयानंदसूरि** (आत्मारामजी)महाराज भी जैनसिद्धांत को पढकर ढूंढकमत को असत्य जानकर कितने ही साधुओं के साथ ढूंढकपंथ को त्याग कर पूर्वोक्त शुद्ध जैनमत के अनुयायी बने, जिन के सदुपदेश से पंजाब, मारवाड, गुजरात आदि देशों में बहुत ढूंढियों ने ढूंढकमत को छोडकर तपागच्छ शुद्ध जैनमत अंगीकार किया है ।

तपागच्छ यह बनावटी नाम नहीं है परंतु गुणनिष्पन्न है क्योंकि श्रीसुधर्मास्वामी से परंपरागत जैनमत के जो ६ नाम पडे हैं उन में से यह ६ (छठा) नाम है जिन ६ नामों की सविस्तर हकीकत **तपागच्छ की पट्टावलि** में है [१] जिस से मालूम होता है कि तपागच्छ नाम मूल शुद्ध परंपरागत है और ढूंढकमत बिनागुरु के निकला हुआ परंपरा से विरुद्ध है ।।

इस ढूंढकमत में जेठमल नामक एक रिख साधु हुआ है उसने महा कुमति के प्रभाव से तथा गाढ मिथ्यात्व के उदय से स्वपर को अर्थात् रचनेवाले और उस पर श्रद्धा करनेवाले दोनों को भवसमुद्र में डुबानेवाला समकितसार (शल्य) नामक ग्रंथ १८६५ में बनाया था परंतु वह ग्रंथ और ग्रंथ का कर्ता दोनों ही अप्रामाणिक होने से

१ देखो **जैन तत्त्वादर्श**का बारहवां परिच्छेद ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ वर्ष तक वह ग्रंथ जैसा का तैसा ही पडा रहा, संवत् १९३८ में गोंडल (काठियावाड) निवासी कोठारी नेमचंद हीराचंद ने अपनी दुर्गति की प्राप्ति में अन्य को साथी बनाने के वास्ते राजकोट (काठियावाड) में छपवा कर प्रसिद्ध किया ।

पूर्वोक्त ग्रंथ को देख कर शुद्ध जैनमताभिलाषी भव्यजीवों के उद्धार के निमित्त पूर्वोक्त ग्रंथ के खंडनरूप **सम्यक्त्वशल्योद्धार** नाम यह ग्रन्थ श्रीतपगच्छाचार्य श्री १००८ **श्रीमद्विजयानंदसूरि प्रसिद्ध नाम आत्मारामजी महाराज** ने संवत् १९४० में बनाया जिस को संवत् १९४१ में भावनगर (काठियावाड) की श्रीजैनधर्म प्रसारक सभा ने अहमदावाद में गुजराती बोली में और गुजराती ही अक्षरों में छपवा कर प्रसिद्ध किया, परंतु पंजाब मारवाडादि अन्य देशों में उस का प्रचार न होने से बडौदा स्टेटनिवासी परमधर्मी शेठ गोकल भाई ने प्रयास कर शास्त्री अक्षरों में संवत् १९४३ में छपवा कर जैसा का वैसा ही प्रसिद्ध किया, तथापि बोली का फरक होने से अन्य देशों के प्रेमी भाईयों को यथायोग्य लाभ नहीं मिला इस वास्ते शेठ गोकलभाई की खास प्रेरणा से श्रीआत्मानंद जैनसभा पंजाब की आज्ञानुसार अपने प्रेमी शुद्धजैनमताभिलाषी भाईयों के लिये यथाशक्ति यथामति इस ग्रंथ को सरल भाषा में छपवाने का साहस उठाया है, और इस से निश्चय होता है कि आप लोग इस ग्रंथ को संपूर्ण पढ कर मेरे उत्साह की वृद्धि जरूर ही करेंगे ।।

यद्यपि पूर्वे बहुत बुद्धिमान आचार्यों ने इस ढूंढकमत का सविस्तर खंडन पृथक् २ ग्रंथों में लिखा है । **श्रीसम्यक्त्वपरीक्षा** नामक ग्रंथ अनुमान दश हजार श्लोक प्रमाण है उस में ढूंढकमती की बनाई ५८ बोल की हुंडी का सविस्तर उत्तर दिया है । **श्रीप्रचनपरीक्षा** नामक ग्रंथ अनुमान वीस हजार श्लोक हैं उस में ढूंढकमत की उत्पत्ति सहित उन के किये प्रश्नों के उत्तर दिये हैं । श्रीमद् **यशोविजयोपाध्यायजी ने** लींबडी (काठियावाड) निवासी मेघजी दोसी जो ढूंढिये थे उनके प्रतिबोध निमित्त **श्रीवीरस्तुतिरूप हुंडीस्तवन** बनाया है, जिस का बालावबोध सूत्रपाठ सहित सविस्तर पंडित शिरोमणि **श्रीपद्मविजयजी** महाराज ने बनाया है । जिसकी श्लोक संख्या अनुमान तीन हजार है उस में भी संपूर्ण प्रकार ढूंढकमत का ही खंडन है । **ढूंढकमतखंडननाटक** इस नाम का ग्रंथ गुजराती में छपा प्रसिद्ध है जिस में भी बत्तीस सूत्रों के पाठों से ढूंठकपक्ष का हास्य रस युक्त खंडन किया है ।

इत्यादि अनेक ग्रंथ ढूंढकमत के खंडन विषयक विद्यमान हैं तो उसी मतलब के अन्य ग्रंथ बनाने का वृथा प्रयास करना योग्य नहीं है ऐसा विचार के केवल समकितसार के कर्त्ता जेठमल की स्वमति कल्पना की कुयुक्तियों के उत्तर लिख ने वास्ते ही ग्रंथकार ने इस ग्रंथ को बनाने का प्रयास किया है ।

ढूंढियों के साथ कई बार चर्चा हुई और ढूंढियोंकी ही पराजय होती रही । पंडितवर्य **श्रीवीरविजयजी** के समय में श्रीराजनगर(अहमदावाद) में सरकारी अदालत में विवाद हुआ था जिस में ढूंढिये हार गये थे । इस विवाद का सविस्तर वृत्तांत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"**ढूंढियानो रासडो**" इस नाम से किताब छपी है उस में है । पूर्वोक्तचर्चा के समय समकितसार के कर्ता जेठमल भी हाजर थे परंतु पराजयकोटि में आकर वह भी पलायन हो गये थे, इस तरह वारंवार निग्रह कोटि में आकर अपने हृदय में अपनी असत्यता को जान कर भी निज दुर्मतिकल्पना से कुयुक्तियों का संग्रह करके समकितसार जैसा ग्रंथ बनाना यह केवल अपनी मूर्खता ही प्रकट करनी है ।

आधुनिक समय में भी कितने ही ठिकाने जैनी और ढूंढियों की चर्चा होती है वहां भी ढूंढिये निग्रहकोटि में आकर पराजयको ही प्राप्त होते हैं[१] तथापि अपने हठ को नहीं छोडते हैं, यही इन की संपूर्ण मूर्खता का चिह्न है । ढूंढकमत के आदि पुरुष का मूल आशय जिनप्रतिमा के निषेध का ही था, और इसी वास्ते उस ने जिनप्रतिमा संबंधी परिपूर्ण हकीकतवाले जो जो सूत्र थे उन का निषेध किया, इस तरह निषेध करने से उन सूत्रों की अन्य बातों का भी निषेध हो गया और इस से इन ढूंढियों को बहुत बातें जैनमत विरुद्ध अंगीकार करनी पडीं ।

महुआ (काठियावाड)में श्रीमहावीर स्वामी के समयकी श्रीमहावीर स्वामी की मूर्ति है जो कि अद्यापि पर्यंत श्रीजीवत्स्वामी की प्रतिमा कहाती है ।

औरंगाबाद में अनुमान २४०० वर्ष से पहले का श्रीपद्मप्रभ स्वामी का मंदिर है जिस के वास्ते अंग्रेज ग्रंथकार भी साक्षी देते हैं ।

श्रीशत्रुंजय तीर्थों पर हजारों ही वर्षों के मंदिर विद्यमान हैं ।

श्रीसंप्रतिराजा जो कि श्रीमहावीर स्वामी के पीछे २९० वर्ष हुआ है उस ने सवालाख जिनप्रासाद और सवाकोटि जिनबिंब कराये हैं, जिन में से हजारों जिनचैत्य तथा जिन-प्रतिमा ठिकाने २ देखने में आती हैं ।

पोर्तुगाल के हंगरी प्रांत में बुदापेस्त शहर में श्रीमहावीर स्वामी की बहुत प्राचीन मूर्ति जमीन में से एक अंग्रेज को मिली, जिस को अंग्रेज बहादुर ने बाग के बीच छत्री बनवा कर स्थापन किया है । मूर्ति बहुत ही अद्भुत है जिस का फोटो लाहौर के रजिस्टार स्टाईन साहिब का दिया हुआ हमारे पासे है । इस से साफ जाहिर होता है कि एक समय वहां जैन धर्म जरूर था और जैन धर्म में मूर्ति का मानना प्रथम से ही है ।

आजकल मूर्ति के खंडन में कटिबद्ध आर्यसमाज के आचार्य स्वामी दयानंद सरस्वती भी अपने ग्रंथों में मंजूर कर चुके हैं कि सब से पहले मूर्ति का मानना जैनियों से ही शुरू हुआ है और बाकी सर्व मतों वालोंने उन की देखादेखी नकल की है ।

मथुरा के टीले में से श्री महावीर स्वामी की मूर्ति निकली है जो बहुत प्राचीन है

१ अमृतसर, होश्यारपुर, फगवाडा, बगीयां, जेसे प्रमुख स्थानों में जो जो कारवाई हुई थी प्रायः पंजाब के सर्व जैनी और ढूंढिये जानते हैं, कई क्षत्री ब्राह्मण वगैरह भी जानते हैं कि सभा मंजूर कर के सभा के समय ढूंढिये हाजर नहीं हुए ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस के लेख को देख कर अंग्रेज विद्वान् जो कि कल्पसूत्र को बनावटी मानते थे वह यथार्थ मानने लगे हैं[१] परंतु अफसोस है ढूंढियों पर, कि जो जैनी कहा के फेर जैनसूत्र को नहीं मानते हैं ।

सन् १८८४ में पंडित भगवान्लाल इंद्रजी ने एक रसाला छपवाया था उस में लिखा है कि उदयगिरि गुफा में हाथी गुफा के शिरे पर एक लेख खुदा हुआ है उस हाथी गुफा के लेख से सिद्ध होता है कि नंदराजा जो कि श्रीमहावीर स्वामी के निर्वाण से थोडे ही काल पीछे हुआ है वह, तथा खारावेला नामक राजा जो ईसा से १२७ वर्ष पहले जन्मा था और ईसा के पहले १०३ वर्ष गद्दी पर बैठा था वह, जैन धर्मी थे और श्रीऋषभदेव की मूर्ति की पूजा करते थे ।

इत्यादि अनेक प्रमाणों से जिनप्रतिमा का मानना पूजना जैन धर्म की सनातन रीति सिद्ध होती है और इस ग्रंथमें भी प्रायः जिन प्रतिमा संबंधी ही सविस्तर विवेचन शास्त्रानुसार किया है । इस वास्ते स्थानकवासी ढूंढक लोगों को बहुत नम्रता से विनति की जाती है कि हे प्रिय मित्रो ! जैनशास्त्रों के प्रमाणों से, प्राचीन लेखों के प्रमाणों से, प्राचीन जिनमंदिर और जिनप्रतिमाओं के प्रमाणों से, अन्यमतियों के प्रमाणों से तथा अंग्रेज विद्वानों के प्रमाणों से इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि प्रत्येक जैनी जिनप्रतिमा को मानते और वंदना, नमस्कार, पूजन, सेवा, भक्ति करते थे । तो फिर तुम लोग किस वास्ते हठ पकड के जिनप्रतिमा का निषेध करते हो ? इसवास्ते हठ को छोड कर श्रावकों को श्रीजिनप्रतिमा पूजने का निषेध मत करो जिस से तुम्हारा और तुम्हारे श्रावकों का कल्याण होवे ।।

यद्यपि सत्य के वास्ते मरजी में आवे वैसा लिखने में कोई हरकत नहीं है तथापि इस पुस्तक में जो कोई कठिन शब्द लिखा गया है तो उस में समकितसार ही कारणभूत है क्योंकि **यादृशे तादृशमाचरेत्** इस न्याय से समकितसार में लिखी बातों का यथायोग्य ही उत्तर दिया गया होगा । न किसी के साथ द्वेष है और न कठिन शब्दों से कोई अधिक लाभ है यही विचार के समकितसार की अपेक्षा इस ग्रन्थ में कोई कठिन शब्द रहने नहीं दिया है, यदि कोई होगा भी, तो वह फक्त समकितसार के मानने वालों को हित शिक्षारूप ही होगा ।

इस ग्रंथ के छपाने का उद्देश्य मात्र यही है कि जो अज्ञानता के प्रसंग से उन्मार्गगामी हुए हो वह भव्यजीव इसको पढके हेयोपादेय को समझकर सूत्रानुसार **श्रीतीर्थंकर**गणधर पूर्वाचार्यप्रदर्शित सत्य मार्ग को ग्रहण करें और अज्ञानीप्रदर्शित **उन्मार्ग का त्याग** कर देवें, परंतु किसी की वृथा निंदा करने का अभिप्राय नहीं है इस वास्ते इस पुस्तक को पढनेवालोंने सज्जनता धारन कर के और द्वेष भाव को त्याग के,

१ देखो प्रोफेसर बुल्हर की रीपोर्ट अथवा जैनप्रश्नोत्तर तथा तत्त्वनिर्णय प्रासादग्रंथ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि से अंत पर्यंत पढ के हंसचंचू हो कर सारमात्र ग्रहण करना, मनुष्यजन्मप्राप्ति का यही फल है जो सत्य को अंगीकार करना परंतु पक्षपात कर के झूठा हठ नहीं करना यही अंतिम प्रार्थना है ।

अफसोस है कि ग्रन्थकर्ता के हाथ की लिखी इस ग्रन्थ की खास संपूर्ण प्रति हम को तलाश करने से भी नहीं मिली तथापि जितनी मिली उस के अनुसार जो प्रथमावृत्ति में अशुद्धता रह गई थी इस में प्रायः शुद्ध की गई है और बाकी का हिस्सा जैसा का वैसा गुजराती प्रति के ऊपर से यथाशक्ति उलथा किया गया है । इस बात में खास कर के मुनिश्रीवल्लभविजयजी की मदद ली गई है । इस लिये इस जगह मुनिश्री का उपकार माना जाता है । साथ में श्रीभावनगर की श्रीजैनधर्मप्रसारक सभा का भी उपकार माना जाता है कि जिस ने गुजराती में छपवाकर इस ग्रन्थ को हयात बना रखा जिस से आज यह दिन भी आ गया जो निजभाषा में छपा कर अन्य प्रेमी भाईयों को इस का लाभ दिया गया ।।

दृष्टिदोषान्मतेर्मांद्या-द्यदशुद्धं भवेदिह ।
तन्मिथ्यादुष्कृतं मेस्तु, शोध्यमार्यैरनुग्रहात् ।।

वीर सं. २४२९ । वि.सं. १९५९ । ई.स. १९०३ आत्म सं. ७ ।

श्रीसंघ का दास जसवंतराय जैनी,
लाहौर
श्रीआत्मानंद जैनसभा पंजाब के हुकम से ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीविजयानन्द-सूरीश्वराष्टकम्

तत्त्वज्ञानसमिद्धबोधविबुधव्यूहावृतोऽनारतं ।
हृद्यं जैनशरण्यचारुचरणद्वन्द्वं दधानो हृदि ॥
उद्दीच्यज्जगदेकरञ्जनविधावुद्योगविद्योतितः ।
सम्मोदं दिशतादमन्दविजयानन्दः सदानन्दनः ॥१॥

शास्त्रस्याभ्यसनं विना श्रुतिधरो यः सूरिरन्यैरलं ।
न्यायाम्भोधिमुपाधिमाधिततरां राजद्बहुव्रीहिकम् ॥
भूयो जीवनदानमानविदितो जीमूतवद् यः स्वयं ।
सम्मोदं दिशतादमन्दविजयानन्दः सदानन्दनः ॥२॥

सद्धर्माचरणप्रचारणपरो विश्वम्भराभूषणं ।
वैराग्यैकनिधिर्विधिः सुयशसां कारुण्यवारांनिधिः ॥
लोकानां हितकामनापरतया तीर्थाटने व्यापृतः ।
सम्मोदं दिशतादमन्दविजयानन्दः सदानन्दनः ॥३॥

उत्साहेन समाकलय्य विबुधव्रातं समन्तात्पुन-
र्नैबन्धं निवहं निबध्य सकलं शास्त्रं सदोपैदिधत् ॥
सोऽयं सत्कुलजः समस्तजनतासौजन्यवित्तिंगतः ।
सम्मोदं दिशतादमन्दविजयानन्दः सदानन्दनः ॥४॥

सारासारविचारचारुचतुरो दिव्यप्रतीची स्फुरद् ।
बौद्धव्रातविपक्षपक्षदलनप्रेक्षाप्रतीतः परम् ॥
जैनाचार्यपदप्रफुल्लकुसुमैः संपूजितः सर्वतः ।
सम्मोदं दिशतादमन्दविजयानन्दः सदानन्दनः ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यं प्राप्ता पृथुना गुणातिशयिता लोकानवन्ती यत-
स्तत्पृथ्वीति भुवोऽवनीति च वरं नामार्थवत्तां गतम् ॥
लोकालोचनयष्टितामुपगतो जैनीयधर्म्मध्वजः ।
सम्मोदं दिशतादमन्दविजयानन्दः सदानन्दनः ॥६॥

चञ्चच्चन्द्रमरीचिसंचयसुधाधाराकरीन्द्रस्फुरत्-
कुन्दामन्दविकाशकैखलसन्मुक्ताहिमानीसमः ॥
यस्यास्मिन् भुवने यशः समुदयो विद्योतते सोऽनिशं ।
सम्मोदं दिशतादमन्दविजयानन्दः सदानन्दनः ॥७॥

वन्द्यानामनृतेन वन्दनवचोवृन्देन संवन्दना-
दादेयानि सुगृह्णतेऽनवरतं दिङ्मण्डले कोविदाः ॥
नासत्यास्तुतिवागमुष्य बत तत्सत्यस्तुतेर्वादिने ।
सम्मोदं दिशतादमन्दविजयानन्दः सदानन्दनः ॥८॥

न्यायांभोनिधिश्रीमदविजयानन्दाष्टकं पूर्णम् ।
सहृदयसमुदयमनसः प्रमुदनिदानं सदोदयताम् ॥९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

नं०	विषयाः	पृष्ठांकाः
१	मंगलाचरणम्	१
२	ढूंढकमत की उत्पत्ति वगैरह	१
३	ढूंढकमत की पट्टावली	५
४	ढूंढियों के ५२ प्रश्नों के उत्तर	७
५	ढूंढियों के प्रति १२८ प्रश्न	११
६	बत्तीस सूत्रों के बाहर के २०४ बोल ढूंढिये मानते हैं	१८
७	बत्तीस सूत्रों में से कुछ बोल ढूंढिये नहीं मानते हैं	२५
८	निर्युक्ति वगैरह मानना शास्त्रों में कहा है	२७
९	आर्यक्षेत्र की मर्यादा	३०
१०	प्रतिमाकी स्थिति का अधिकार	३०
११	आधाकर्मी आहार की बाबत	३१
१२	मुहपत्ती बांधने से सन्मूर्च्छिम जीव की हिंसा होती है	३३
१३	यात्रा तीर्थ कहे हैं इस बाबत	३५
१४	श्रीशत्रुंजय शाश्वता है	३८
१५	कयबलिकम्मा शब्द का अर्थ	३९
१६	सिद्धायतन शब्द का अर्थ	४२
१७	गौतमस्वामी अष्टापद पर चढे	४४
१८	नमुत्थुणं के पाठ की बाबत	४८
१९	चारों निक्षेपे अरिहंत वंदनीय है	४९
२०	नमूना देख के नाम याद आता है	५५
२१	नमो बंभीए लिवीए इस पाठ का अर्थ	५८
२२	जंधाचारणविद्याचारण साधुओं ने जिनप्रतिमा वांदी है	६०
२३	आनंद श्रावक ने जिनप्रतिमा वांदी है	६५
२४	अंबड श्रावक ने जिनप्रतिमा वांदी है	७०
२५	सात क्षेत्र में धन खरचना कहा है	७२
२६	द्रौपदी ने जिनप्रतिमा पूजी है	७६
२७	सूर्याभ ने तथा विजयपोलीए ने जिनप्रतिमा पूजी है	८८
२८	देवता जिनेश्वर की दाढा पूजते हैं	१०१
२९	चित्राम की मूर्ति नहीं देखनी चाहिये इस बाबत	१०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०	जिनमंदिर करा ने से तथा जिनप्रतिमा भरा ने से १२ वें देवलोक जावे	११०
३१	श्रीनंदिसूत्र में सर्व सूत्रों की नोंध है	११४
३२	साधु या श्रावक श्रीजिनमंदिर न जावे तो दंड आवे इस बाबत श्रीमहाकल्पसूत्र के पाठ सहित वर्णन	११६
३३	जेठमल्ल के लिखे ८५ प्रश्नों के उत्तर	१२०
३४	ढूंढियों को कुछ प्रश्न	१३१
३५	सूत्रों में श्रावकों ने जिनपूजाकरी कहा है इस बाबत	१३३
३६	सावद्य करणी बाबत	१३६
३७	द्रव्यनिक्षेपा वंदनीय है	१३९
३८	स्थापना निक्षेपा वंदनीय है	१४०
३९	शासन के प्रत्यनीक को शिक्षा देनी	१४१
४०	वीस विहरमान के नाम	१४२
४१	चैत्य शब्द का अर्थ साधु तथा ज्ञान नहीं	१४३
४२	जिनप्रतिमा पूज ने के फल सूत्रोंमें कहे हैं	१४७
४३	महिया शब्द का अर्थ	१४८
४४	छीकाया के आरंभ बाबत	१४९
४५	जीवदया के निमित्त साधु के वचन	१५१
४६	आज्ञा सो धर्म है इस बाबत	१५३
४७	पूजा सो दया है इस बाबत	१५४
४८	प्रवचन के प्रत्यनीक को शिक्षा कर ने बाबत	१५७
४९	देवगुरु की यथायोग्य भक्ति कर ने बाबत	१५८
५०	जिनप्रतिमा जिनसरीखी है इस बाबत	१५९
५१	ढूंढकमति का गोशालामती तथा मुसलमानों के साथ मुकाबला	१६१
५२	मुंह पर मुहपत्ती बंधी रखनी सो कुलिंग है	१६४
५३	देवता जिनप्रतिमा पूजते हैं सो मोक्ष के वास्ते है	१६६
५४	श्रावक सूत्र न पढे इस बाबत	१६६
५५	ढूंढिये हिंसाधर्मी हैं इस बाबत	१७०
५६	ग्रंथ की पूर्णाहुति	१७३
५७	ढूंढक पंचविशी	१७५
५८	सवैये	१७७
५९	सुमतिप्रकाश बारह मास	१७८
६०	संदर्भ ग्रंथ की सूचि	१८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

।। सर्ववाञ्छित प्रदायक श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ।।

।। परमाराध्यपाद श्रीमदात्म-कमल-वीर-दान-प्रेम-रामचन्द्रसूरीश्वरेभ्यो नमः ।।

सम्यक्त्व-शल्योद्धार

ग्रंथ-पारंभ

मूर्तिं निधाय जैनेन्द्रीं सयुक्तिशास्त्रकोटिभिः ।
भव्यानां हृद्विहारेषु लुम्पन् ढुण्ढककिल्विषम् ।।१।।
सम्यक्त्व-गात्रशल्यानां व्याप्यानां विश्वदुर्गतेः ।
कदङ्कर्णक उद्धारं नत्वा स्याद्वाद ईश्वरम् ।। २ ।। युग्मम् ।।

ढूंढक मत की उत्पत्ति वगैरह :

प्रथम प्रश्न में ढूंढकमती कहते हैं " भस्मग्रह उतरा और दया धर्म प्रसरा" अर्थात् भस्मग्रह उतरे बाद हमारा दया धर्म प्रकट हुआ, इस कथन पर प्रश्न पैदा होता है कि क्या पहिले दया धर्म नहीं था ? उत्तर - था ही परंतु **श्रीकल्पसूत्र** में कहा है कि श्री महावीर स्वामी के निर्वाण बाद दो हजार वर्ष की स्थितिवाला तीसवाँ भस्मग्रह प्रभु के जन्म नक्षत्र पर बैठेगा । जिस सें दो हजार वर्ष तक साधु साध्वी की उदित उदित पूजा नहीं होगी, और भस्मग्रह उतरे बाद साधु साध्वी की उदित उदित पूजा होगी । भस्मग्रह के प्रभाव सें जिन की पूजा मंद होगी उन की पूजा प्रभावना भस्मग्रह के उतरे बाद विशेष होगी । इस मूताबिक श्रीआनंदविमलसूरि, श्रीहेमविमलसूरि, श्रीविजयदानसूरि, श्रीहीरविजयसूरि और खरतर गच्छीय श्रीजिनचंद्रसूरि वगैरह ने क्रियोद्धार किया । तब से ले के आज तक त्यागी संवेगी साधु साध्वी की पूजा प्रभावना दिनप्रतिदिन अधिक अधिकतर होती जाती है और पाखंडियों की महिमा दिनप्रतिदिन घटती जाती है । यह बात इस वक्त प्रत्यक्ष दिखाई देती है । इस वास्ते **श्रीकल्पसूत्र** का पाठ अक्षर अक्षर सत्य है । परंतु जेठमल्ल ढूंढक के कथनानुसार **श्रीकल्पसूत्र** में ऐसे नहीं लिखा है कि गुरु बिना का एक मुख बंधों का पंथ निकलेगा जिस का आचार व्यवहार श्रीजैनमत के सिध्दान्तों से विपरीत होगा । इस पंथ वाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की पूजा होगी और उसका चलाया दयामार्ग दीपेगा ! इस वास्ते जेठमल्ल का कथन सत्य का प्रतिपक्षी है । लौकिक दृष्टांत भी देखोः १. जिन आदमी को रोग हुआ हो उस रोग की स्थिति के परिपक्क हुए रोग के नाश होने पर वही आदमी नीरोगी हो या दूसरा ? २. जिस स्त्री को गर्भ रहा हो, गर्भ की स्थिति परिपूर्ण हुए वही स्त्री पुत्र प्रसूत करे या दूसरी ? ३. जिस बालक की कुडमाई (मांगनी) हुई हो विवाह के वक्त वही बालक पाणिग्रहण करे या दूसरा ? इन दृष्टांतो के मुताबिक भस्मग्रह के प्रभाव से जिन साधु साध्वी की उदय उदय पूजा नहीं होती थी, भस्मग्रह के उतरे बाद उनकी ही उदित उदित पूजा होती है, परंतु ढूंढक पहिले नहीं थे कि भस्मग्रह के उतरे बाद उन की उदित पूजा हो । इस वास्ते जेठमल्ल का लिखना सत्य नहीं है ।

तथा **श्रीवग्गचुलियासूत्र** में कहा है कि बाईस २२. गोठिल्ले पुरुष काल कर के संसार में नीच गति में और बहुत नीच कुल में परिभ्रमण कर के मनुष्य भव पावेंगे और सिध्दान्त से विरुद्ध उन्मार्ग को स्थापन करेंगे, जैन धर्म के और जिन प्रतिमा के उत्थापक निंदक होवेंगे और जगत् निंदनीय कार्य के करने वाले होवेंगे, इस मुताबिक ढूंढक पंथ बाईस पुरुषों का निकाला हुआ है और इस समय यह **बाईस टोले** के नाम से प्रसिद्ध है ।

श्रीवग्गचूलियासूत्र का पाठ :

तेसट्ठिमे भवे मझविसएसु सावयवाणीयकुलेसु पुढो पुढो समुप्पज्जिस्संतितएणं ते दुवीस वाणीयगा उम्मुक्क बालवत्था विण्णाय परिणय मित्ता दुट्ठा धिट्ठा कुसीला परवंचना खलुंका पुव्वभवमिच्छत्तभावओ जिणमग्गपडिणीया देवगुरुनिंदणया तहारूवाणं समणाणं माहणाणं पडिदुट्ठकारिणा जिणपण्णत्तं तत्तमन्नहापरुविणो बहूणं नरनारी सहस्साणं पुरओ नियगप्पा नियकप्पियं कुमग्गं आधवेमाणा पण्णवेमाणा जिणपडिमाणं भंजणयाणं हीलंता खिंसंता निंदंता गरिहंता परिहवंता चेइयतीत्थाणि साहु साहूणीय उड्ढावइस्संति ।।

भावार्थ - त्रयसठवें ६३. भवे मध्यखंड के विषे श्रावक बनिये के कुल में भिन्न भिन्न उत्पन्न होंगे,, बाद वे बाईस बनिये बाल्यावस्था को छोड के विज्ञानसहित, दुष्ट, धीठ, कुशीलिये, परकों ठगनेवालें, अविनीत, पूर्व भव के मिथ्यात्व भाव से जिन मार्ग के प्रत्यनीक (शत्रु), देव गुरु के निंदक, तथारूप जे श्रमण माहण साधु उन के साथ दुष्टता के करने वाले, जिन प्ररूपित धर्म के अनजान, हजारों नरनारियों के आगे अपने आप कल्पना कर के कुमार्ग को सामान्य प्रकार कहते हुए, विशेष प्रकारे कहते हुए, हेतु दृष्टांत प्ररूपते हुए, जिन प्रतिमा के तोडने वाले हीलना करते हुए, खींसना करते हुए, निंदा करते हुए, गरहा करते हुए, पराभव करते हुए, चैत्य (जिन प्रतिमा) तीर्थ और साधु साध्वी को उत्थापेंगे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा इसी सूत्र में कहा हे, कि श्रीसंघ की राशि ऊपर ३३३ वर्ष की स्थिति वाला धूमकेतु नामक ग्रह बैठेगा, और उसके प्रभाव से कुमत पंथ प्रकट होगा, इस मुताबिक ढूंढकों का कुमत पंथ प्रकट हुआ है, और उस ग्रह की स्थिति अब पूरी हो गई है, जिस से दिनप्रतिदिन इस पंथ का निकंदन होता जाता है ! आत्मार्थी पुरुषों ने यह बात **वग्गचूलियासूत्र** में देख लेनी ।

समकितसार (शल्य) नामक पुस्तक के दूसरे पृष्ठ की १९वीं पंक्ति में जेठमल्लने लिखा है कि " सिद्धांत देख के संवत् (१५३१) में दया धर्म प्रवृत्त हुआ" यह बिलकुल झूठ है क्योंकि **श्रीभगवतीसूत्र** के २०वें शतक के ८वें उद्देश में कहा है कि भगवान् महावीर स्वामी का शासन एक बीस हजार (२१०००) वर्ष तक रहेगा सो पाठ यह है ।

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे इमीसे उस्सप्पिणीए ममं एकवीसं वाससहस्साइं तित्थे अणुसिज्जिस्सति ।। [भ० श०२०उ०८]

भावार्थ - हे गौतम ! इस जम्बूद्वीप के विषे भरतक्षेत्र के विषे इस उत्सर्प्पिणी में मेरा तीर्थ एकबीस हजार (२१०००)वर्ष तक प्रवर्त्तेगा ।

इस से सिद्ध होता है कि कुमतियों ने दया मार्ग नाम रख के मुख बंधों का जो पंथ चलाया है, सो वेश्या-पुत्र के समान है, जैसे वेश्या-पुत्र के पिता का निश्चय नहीं होता है, ऐसे ही इस पंथ के देव गुरु का भी निश्चय नहीं है । इस से सिद्ध होता है कि यह संमूर्च्छिम पंथ हुंडा अवसर्प्पिणी का पुत्र है ।

श्रीभगवतीसूत्र के २५वें शतक के ६ छट्ठे उद्देश में कहा है कि व्यावहारिक छेदोपस्थापनीय चारित्र बिना गुरु के दिये आता नहीं है और इस पंथ का चारित्र देनेवाला आदि गुरु कोई है नहीं क्योंकि ढूंढक पंथ सूरत के रहनेवाले लवजी जीवाजी तथा धर्मदास छींबे का चलाया हुआ है तथा इस का आचार और वेष बतीस सूत्र के कथन से भी विपरीत है, क्योंकि **श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्र** के पांचवें संवर द्वार में जैन साधु के यह उपकरण लिखे हैं, **तथा च तत्पाठः - पडिग्गहो पायबंधणं पाय केसरीया पायट्ठवणं च पडलाइं तिन्निव रयत्ताणं गोच्छओ तिन्निय पच्छागा रओहरण चोल-पट्टक मुहणंतगमाइयं एयं पिय संजमस्स उववूहट्ठयाए ।।**

भावार्थ - (१) पात्र (२) पात्रबंधन (३) पात्र के शरिका (४) पात्रस्थापन (५) पडले तीन (६) रजस्त्राण (७) गोच्छा (१०) तीन प्रच्छादक (११) रजोहरण (१२) चोलपट्टा (१३) मुखवस्त्रिका वगैरह उपकरण संजम की वृद्धि के वास्ते जानने ।

ऊपर लिखे उपकरणों में ऊन के कितने, सूत के कितने, लंबाई वगैरह का प्रमाण कितना, किस किस प्रयोजन के वास्ते और किस रीति से वर्त्तने, वगैरह कोई भी ढूंढक जानता नहीं है, और न यह सर्व उपकरण इन के पास है, तथा सामायिक, प्रतिकमण दीक्षा, श्रावक व्रत, लोच करण, छेदोपस्थापनीय चारित्र, वगैरह जिस विधि से करते हैं, सो भी स्वकपोलकल्पित है, लंबा रजोहरण, बिना प्रमाण का चोलपट्टा और कुलिंग की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निशानी रूप दिनरात मुख बांधना भी जैनशास्त्रानुसार नहीं है, मतलब प्रायः कोई भी क्रिया इस पंथ की जैन शास्त्रानुसार नहीं है, इस वास्ते यह दासी-पुत्र तुल्य हैं, इन में सेठाई का कोई भी चिह्न नहीं है, अनंत तीर्थंकरों के अनंत शास्त्रों की आज्ञा से विरुद्ध इन का पंथ है, इस वास्ते किसी भी जैनमतानुयायी को मानना न चाहिये ।

और जो संघपट्टे का तीसरा काव्य लिखा है, उस में तेरह (१३) खोट हैं, और उसके अर्थ में जो लिखा है "नवा नवा कुमत प्रगट थाशे" सो सत्य है । वह नवीन कुमतपंथ तुम्हारा ही है, क्योंकि जैन सिद्धान्त से विरुद्ध है, और जो इस काव्य के अर्थ में लिखा है "छ कायना जीव हणीने धर्म प्ररूपसे" इत्यादि यह सर्व महामिथ्या है क्योंकि काव्याक्षरों में से यह अर्थ नहीं निकलता है । इस वास्ते जेठा ढूंढक महामृषा-वादी था, और उस को झूठ लिखने का बिलकुल भय नहीं था । इस वास्ते इस का लिखा प्रतीति करने योग्य नहीं है ।

तथा चौथा काव्य लिखा उस में तेईस (२३) खोट है, इस काव्य के अर्थ में जो लिखा है "हिंसा धर्म को राज सूर मंत्रधारीनी दीपती" इत्यादि सम्पूर्ण काव्य का जो अर्थ लिखा है सो महामिथ्या और किसी की समझ में न आवे ऐसा है, क्योंकि काव्याक्षरों में से यह अर्थ निकलता नहीं है । इसी वास्ते मुंहबंधे महामृषावादी अज्ञानी पशु तुल्य हैं । बुद्धिमानों को इन का लिखना कदापि मानना न चाहिये ।

सत्रहवाँ काव्य लिखा उसमें (१७) खोट हैं और इस के अर्थ में जो लिखा है "छ काय जीव हणीनें हींस्यायें धर्म कहे छें सूत्र वाणी ढांकीने कुपंथ प्रकरण देखी कारण थापी चेत्य पोसाल करावी अधो मार्गे घाले छे कीहांइ सूत्र मध्ये देहरा कराव्या नथी कह्या" यह अर्थ महा मिथ्या है क्योंकि काव्याक्षरों में नहीं है इस वास्ते मुंहबंन्धों का पंथ निःकेवल मृषावादियों का चलाया हुआ है ।

तथा वीसवें काव्य में सात (७) खोट है और इस का जो अर्थ लिखा है सो सर्व ही महा मिथ्या लिखा है । एक अक्षर भी सच्चा नहीं । ऐसे मृषावादियों के धर्म को दया धर्म कहते हैं ? ऐसा झूठ तो म्लेछ (अनार्य) भंगी भी लिखते बोलते नहीं हैं ।

तथा इक्कीसवें (२१) काव्य में बारह (१२) खोट है उस में ऐसा अधिकार है, वेष धारी जिन प्रतिमा का चढावा खाने वास्ते सावद्य काम का आदेश देते हैं । यह तो ठीक है परंतु जेठे ढूंढक ने जो अर्थ इस काव्य का लिखा है, सो झूठा निःकेवल स्वकपोलकल्पित है ।

तथा तीसवा काव्य लिखा है उस में (१३) तेरह खोट हैं इस का अर्थ जेठे ने सर्व जूठ ही लिखा है संशय होवे तो वैयाकरण पंडितों को दिखा के निश्चय कर लेना ।

पूर्वोक्त छे काव्य के लिखे अर्थों को देखने से सिद्ध होता है कि समकित सार (शल्य) के कर्ता ने अपना नाम जेठमल्ल नहीं किंतु झूठ मल्ल ऐसा सार्थक नाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्ध कर दिया है । अब विचार करना चाहिये कि जिस को पद पदमें झूठ बोलने का, उलटे रास्ते चलने का, झूठे अर्थकरने का और झूठे अर्थ लिखने का, भय नहीं उस के चलाए पंथ को दया धर्म कहना और उस धर्म को सच्चा मानना यह बिना भारी कर्मी जीवों के अन्य किसी का काम है ? ।

जो ढूंढक पंथ की उत्पत्ति जेठमल्ल ने लिखी है सो सर्व झूठी मिथ्या बुद्धि के प्रभाव से लिखी है । और भोले भव्य जीवों को फंसाने वास्ते बिना प्रयोजन, उस में सूत्र की गाथा लिख मारी है । परंतु इस ढूंढक पंथ की खरी उत्पत्ति **श्रीहीरकलश मुनि** विरचित **कुमति विध्वंसन चौपाई** तथा अमरसिंह ढूंढक के पडदादे अमोलक चंद के हाथ की लिखी हुई **ढूंढक पट्टावली के** अनुसार नीचे मूताबिक है ।

ढूंढकमत की पट्टावली :

गुजरात देश के अहमदावाद नगर में एक लुंका नामक लिखारी ज्ञानजी यति के उपाश्रय में पुस्तक लिख के आजीविका करता था । एक दिन उस के मन में बेईमानी आने से एक पुस्तक के सात पत्रे बीचमें से लिखने छोड दिये । जब पुस्तक के मालिक ने पुस्तक अधूरा देखा, तब लुंके लिखारी की बहुत भंडी कर के उपाश्रय में से निकाल दिया । और सब को कह दिया कि इस बेईमान से कोई भी पुस्तक न लिखवावें । इस तरह लुंका आजीविका भंग होने से बहुत दुःखी हो गया और इस से वह जैनमत का द्वेषी बन गया । जब अहमदावाद में लुंके का जोर न चला तब वह वहां से चल के लींबडी गांव में गया । वहाँ लुंके का संबंधी लखमशी वाणीया राज्य का कारभारी था, उस को जा के कहा, भगवंत का धर्म लुप्त हो गया है । मैंने अहमदावाद में सच्चा उपदेश किया । परंतु मेरा कहना न मान के उलटा मुझ को मारपीट के वहां से निकाल दिया । तब मैं तेरे तरफ से सहायता मिलेगी ऐसा धार के यहां आया हूं । इस वास्ते यदि तू मुझ को सहायता करे तो मैं सच्चे दया धर्म की प्ररूपणा करूं । इस तरह हलाहल विषप्रायः असत्य भाषण कर के बिचारे कलेजा विना के मूढमति लखमशी को समझाया, तब उसने उसकी बात सच्ची मान के लुंके को कहा कि तू लींबडी के राज्य में बेधडक प्ररूपणा कर । मैं तेरे खानपान की खबर रखूंगा, इस तरह सहायता मिलने से लुंके ने संवत १५०८ में जैन मार्ग की निन्दा करनी शुरू की । परंतु अनुमान छब्बीस वर्ष तक तो उसका उन्मार्ग किसी ने अंगीकार नहीं किया । संवत १५३४ में एक अकल का अंधा भूणा नामक वाणीया लुंके को मिला । उसने महा मिथ्यात्व के उदय से लुंके का मृषा उपदेश माना । और लुंके के कहने से विना गुरु के वेष पहन के मूढ अज्ञानी जीवों को जैन मार्ग से भ्रष्ट करना शुरू किया ।

लुंके ने इकतीस सूत्र सच्चे माने और व्यवहारसूत्र सच्चा नहीं माना और जहां जहां मूल सूत्र का पाठ जिन प्रतिमा के अधिकार का था, वहां वहां मनःकल्पित अर्थ लगा के लोगों को समझाने लगा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूणे (भाणजी) का शिष्य रूपजी संवत १५६८ में हुआ । उस का शिष्य संवत १५७८ महा सुदि पंचमी के दिन जीवाजी नामक हुआ । उस का शिष्य संवत् १५८७ चैत्रवदि चौथ को वृद्धवरसिंहजी हुआ । उस का शिष्य संवत १६०६ में वरसिंहजी हुआ । उस का शिष्य संवत १६४९ में जसवंत हुआ । इस के पीछे संवत १७०९ में बजरंगजी नामक लुंपकाचार्य हुआ । उस बजरंगजी के पास सूरत के वासी वोहरा वीरजी की बेटी फूलां बाई के गोद लिये बेटे लवजी नामक ने दीक्षा ली । दीक्षा लिये पीछे जब दो वर्ष हुए तब दशवैकालिक सूत्र का टबा पढा । पढ कर गुरु को कहने लगा कि तुम तो साधु के आचार से भ्रष्ट हो । इस तरह कहने से जब गुरु के साथ लडाई हुई तब लवजी ने लुंपकमत और गुरु को त्याग के थोभणरिख[१] वगैरह को साथ लेकर स्वयमेव दीक्षा ली । और मुंह के पाटी बांधी । उस लवजी का शिष्य सोमजी तथा कानजी हुआ । कानजी के पास गुजरात का रहने वाला धर्मदास छींबा दीक्षा लेने को आया । परंतु वह कानजी को आचारभ्रष्ट जानकर स्वयमेंव साधु बन गया । और मुंह के पाटी बांध ली । इनके (ढूंढको के) रहने का मकान ढूंढ अर्थात् फूटा हुआ था । इस वास्ते लोगों ने ढूंढक नाम दिया, और लुंपकमति कुंवरजी के चेले धर्मसी, श्रीपाल और अमीपाल ने भी गुरु को छोड के स्वयमेव दीक्षा ली उन में धर्मसीने आठ कोटी पच्चक्खाण का पंथ चलाया । सो गुजरात देश में प्रसिद्ध है ।

धर्मदास छींपी का चेला धनाजी हुआ । उस का चेला भुदरजी हुआ और उस के चेले रघुनाथ, जैमलजी और गुमानजी हुए । इन का परिवार मारवाड देश में विचरता है तथा गुजरात मालवे में भी है ।

रघुनाथ के चेले भीखम ने तेरापंथी मुंह बंधो का पंथ चलाया ।

लवजी ढूंढकमत का आदि गुरु (१) उस का चेला सोमजी (२) उस का हरिदास (३) उस का वृंदावन (४) उस का भुवानीदास (५) उस का मलूकचंद (६) उस का महासिंह (७) उस का खुशालराय (८) उस का छजमल्ल (९) उस का रामलाल (१०) उस का चेला अमरसिंह (११)वीं पीढी में हुआ । अमरसिंह के चेले पंजाब देश में मुंहबांधे फिरते हैं । कानजी के चेले मालवा और गुजरात देश में है ।

समकितसार जिसके जवाब में यह पुस्तक लिखी जाती है उस का कर्ता जेठमल्ल धर्मदास छींबे के चेलों में से था और वह ढूंढक के आचरण से भी भ्रष्ट था । इस वास्ते उस के चेले देवीचंद और मोतीचंद दोनों उस को छोडके दिल्ली में जोगराज के चेले हजारीमल्ल के पास आ रहे थे । दिल्ली के श्रावक केसरमल्ल जो कि हजारीमल्ल का सेवक था । उस के मुंह से हमने देवीचंद मोतीचंद के कथनानुसार सुना है कि जेठमल्ल को झूठ बोलने का विचार नहीं था । इतना ही नहीं किंतु उस के ब्रह्मचर्य का भी ठिकाना नहीं था । इस वास्ते जेठमल्ल ने जो लुंपकमत

१ इस का दूसरा नाम भूणा है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की उत्पत्ति लिखी है बिलकुल झूठी और स्वकपोलकल्पित है । और हमने जो उत्पत्ति लिखी वह पूर्वोक्त ग्रन्थानुसार लिखी हैं इस में जो किसी ढूंढक या लुंपक को असत् मालूम हो तो उस को हमारे पास से पूर्वोक्त ग्रंथ देख लेना चाहिये[१]

११में पृष्ट में जेठमल्ल ने ५२ प्रश्न लिखे हैं उनके उत्तर :

पहिले और दूसरे प्रश्न में लिखा है कि चेला मोल लेते हो (१), छोटे लडकों को बिना आचार व्यवहार सिखाए दीक्षा देते हो (२), जवाब-हमारे जैन शास्त्रों में यह दोनों काम करने की मनाई लिखी है और हम करते भी नहीं हैं । पूज्य (डेरेदारयति) करते हैं तो वे अपने आप में साधुता का अभिमान भी नहीं रखाते हैं । परंतु ढूंढक के गुरु लुंकागच्छ में तो प्रायः हर एक पाट मोल के चेले से ही चला आया है । और ढूंढक भी यह दोनों काम करते हैं । उनके दृष्टांत - जेठमल्ल के टोले के रामचन्द्र ने तीन लडके इस रीति से लिये । (१) मनोहरदास के टोले के चतुर्भुज ने भर्तानामा लड़का लिया है (२) धनीराम ने गोरधन नामक लड़का लिया है (३) मंगलसेन ने दो लड़के लिये हैं (४) अमरसिंह के चेले ने अमीचंद नामक लड़का लिया है (५). रूपाढूंढकणी ने पांच वर्ष की दुर्गी नामक लडकी ली है (६) राजां ढूंढणी ने तीन वर्ष की जीया नामक लडकी (७) यशोदा ढूंढणी ने मोहनी और सुंदरी लडकी सात वर्ष की (८) हीरां ढूंढणी ने छः वर्ष की पार्वती नामक लडकी (९) अमरसिंह के साधु ने रामचंद नामक लड़का फिरोजपुर में लिया जिस के बदले में उस के बाप को २५०) रुपये दिये (१०) बालकराम ने आठ वर्ष का लालचंद नामक लड़का (११) बलदेव ने पांच वर्ष का लड़का (१२) रूपचंद ने आठ वर्ष का पालीनामा डकौंत का लडका १३. भावनगर में भीमजी रिख के शिष्य चूनीलाल उस के शिष्य उमेदचंद ने एक दरजी का लडका लिया था । जिस की माता ने श्रीजिनमंदिर में आ के अपना दुःख जाहिर किया था । आखीर में अदालत की मारफत वह लडका उस की माता को सुपूर्द किया गया था १४. इत्यादि सैंकडो ढूंढियों ने ऐसे काम किये हैं और सैंकडों करते हैं[२] । इस वास्ते संवेगी जैन मुनियों को कलंक देने वास्ते जेठमल्ल ने जो असत्य लेख लिखा है, सो अपने हाथ से अपना मुख स्याही से उज्ज्वल किया है !

तीसरे प्रश्न का उत्तर - **पंचवस्तुक** नामा शास्त्र में लिखा हैं कि दीक्षा वक्त मूल

---

१ इस ढूंढक मत की पट्टावली का विस्तारपूर्वक वर्णन ग्रंथकर्ताने **श्रीजैनतत्त्वादर्श** में किया है इस वास्ते यहां संक्षेप से मतलब जितना ही लिखा है ।

२ संवत् १९५१ चैत्रवदि ११ बृहस्पतिवार के रोज जब सोहनलाल को युवराज पदवी दी तब संवत् १९५२ चैत्रसूदि १ के रोज लुधियाना नगर में ढूंढियों ने ६२ बोल बनाये हैं उनमें ३५ में बोल में लिखा है कि : आज्ञा बिना चेला चेली करना नहीं वारसों को खबर कर देनी बिना खबर मूंडना नहीं तथा दाम दिवा के तथा बेपरतीते को करना नहीं दीक्षा महोत्सव में सलाह देनी नहीं दीक्षा वाले को ऊठ, बैठ, खाना दाना, देना, दिवाना शास्त्री हरफ सिखाने नहीं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम बदलकर दूसरा अच्छा नाम रखना[१]

(४) चौथे प्रश्न में लिखा है कि "कान पड़वाते हो" उत्तर यह लेख मिथ्या है क्योंकि हम कान पडवाते नहीं हैं कान तो कान फटे योगी पड़वाते हैं ।

(५) खमासमणे वहोरते हो (६) घोडा रथ बैहली डोली में बैठते हो (७) गृहस्थ के घर में बैठ के वहोरते हो (८) घरों में जाके **कल्पसूत्र** बांचते हो (९) नित्यप्रति उस ही घर वहोरते हो (१०) अंघोल करते हो (११) ज्योतिष निमित्त प्रयुंजते हो (१२) कलवाणी कर के देते हो (१३) मंत्र, यंत्र, झाडा, दवाई, करते हो । इन नव प्रश्नों के उत्तर में लिख ने का कि जैन मुनियों को यह सर्व प्रश्न कलंक रूप हैं । क्योंकि जैन संवेगी साधु ऐसे करते नहीं हैं, परंतु अंत के प्रश्न में लिखे मुताबिक मंत्र, यंत्र झाडा, दवाई वगैरह ढूंढक साधु करते हैं, यथा १. भावनगर में भीमजी रिख तथा चूनीलाल २. बरवाला में रामजी रिख ३. बोटादमें अमरसी रिख ४. ध्रांगध्रा में शामजी रिख वगैरह मंत्र यंत्र करते है । यंत्र लिख के धुलाके पिलाते हैं । कच्चे पानीकी गडवियां मंत्र कर देते हैं । अपने तरफ से दवाई की पुडियां देते हैं । बच्चों के शिर पर रजोहरण फिराते है वगैरह सब काम करते हैं । इस वास्ते यह कलंक तो ढूंढकों के ही मस्तकों पर है (१४) में प्रश्न में जो लिखा है, सो सत्य है क्योंकि **व्यवहारभाष्य श्राद्धविधिकौमुदि** आदि ग्रंथो में गुरु को समेला कर के लाना लिखा है और ढूंढक लोग भी लाने वक्त और पहुंचाने वक्त वाजिंत्र बजवाते हैं । भावनगर में गोबर रिख के पधारने में और रामजी ऋष के विहार में वाजिंत्र बजवाये थे और इस तरह अन्यत्र भी होता है [२] ।

(१५) में प्रश्न में " लड्डूप्रतिष्ठा ते हो" लिखा है सो असत्य है ।

(१६) सात क्षेत्रों निमित्त धन कढाते हो (१७) पुस्तक पूजाते हो (१८) संघ पूजा कराते हो और संघ कढाते हो (१९) मंदिर की प्रतिष्ठा कराते हो (२०) पर्यूषणा में पुस्तक दे के रात्रिजागा कराते हो यह पांच प्रश्न सत्य हैं क्योंकि हमारे शास्त्रों में इस रीति से करना लिखा है । जैसे ढूंढकदीक्षा ढूंढकमरण में तुम महोत्सव करते हो ऐसे ही हमारे श्रावक देवगुरु संघ श्रुत की भक्ति करते हैं । और इस करने से तीर्थंकर गोत्र बांधता है. यह कथन श्रीज्ञातासूत्र बगैरह शास्त्रों में है । इस को देख के तुम्हारे पेट में क्यों शूल उठता है ? इन कामों में मुनि का तो उपदेश है, आदेश नहीं ।

१ **श्रीउत्तराध्ययनसूत्र** के नव में अध्ययन में लिखा है कि नमिराजर्षि प्रत्येक बुद्ध की माता मदनरेखा ने जब दीक्षा धारण करी तब उस का नाम सुव्रता स्थापन किया सो पाठ यह है : **तीएवि तासिं साहुणीणं समीवे गहिया दिक्खा कयसुव्वयनामा तवसंजमं कुणमाणी विहरइ इत्यादि ।**

२ रावलपिंडी शहर में पार्वती ढूंढनी के चौमासे में दर्शनार्थ आए बाहरले भाइयों को महोत्सवपूर्वक नगर में शहर वाले लाये थे तथा हुशियारपुर में सोहनलाल ढूंढक के चौमासे में भोनी के परिवार में पुत्रोत्पत्ति के हर्ष में महोत्सवपूर्वक स्वामीजी के दर्शनार्थ आए थे पुत्र को चरणों पर लगा के लड्डू बांट के बडी खुशी मनाई थी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२१) में प्रश्न में लिखा है " पुस्तक पात्र बेचते हो" इस का उत्तर –

हमारा कोई भी साधु यह काम नहीं करता है, करे तो वह साधु नहीं, परंतु मुंह बंधे ढूंढक और ढूंढकनियां करती हैं, दृष्टांत १. अजमेर में ढूंढनियां रोटियां बेचती हैं २. जयपुर में चरखा कांतती हैं ३. बलदेव गुलाब नंदराम और उत्तमचंद प्रमुख रिख कपडे बेचते हैं ४. भियाणी में नवनिध ढूंढक दुकान करता है ५. दिल्ली में गोपाल ढूंढक हुक्के का तमाकु बना के बेचता है ६. बीकानेर और दिल्ली में ढूंढनियां अकार्य करती हैं ७. कनीराम के चेले राजमल ने कितने ही अकार्य किये सुने हैं । ८. कनीराम का चेला जयचंद दो ढूंढक श्राविकाओं को ले के भाग गया और कुकर्म करता रहा ९. बोटाद में केशवजी रिख पछम गाम की बनीयानी को ले के भाग गया ।[१] यह तुम्हारे (ढूंढक के) दया धर्म की उदित उदित पूजा हो रही है ?

(२२) माल उलटावते हो (२३) आधाकर्मी पोसाल में रहते हो (२४) मांडवी (विमान) कराते हो (२५) टीपणी (चंदा) करा के रूपये लेते हो (२६) गौतम पढघा कराते हो यह पांचों प्रश्न असत्य हैं, क्योंकि संवेगी मुनि ऐसे नहीं करते हैं, परंतु २३ में तथा २४ में प्रश्न मुजब ढूंढकों के रिख करते हैं ।

(२७) संसार तारण तेला कराते हो (२८) चंदन बाला का तप कराते हो, यह दोनों प्रश्न ठीक हैं; जैसे शास्त्रों में मुक्तावलि, कनकावलि, सिंहनिःक्रीडितादि तप लिखे है : वैसे यह भी तप है, और इस से कर्म का क्षय और आत्मा का कल्याण होता है । (२९) तपस्या करा के पैसा लेते हो (३०) सोना रूपा की निश्रेणी (सीढी) लेते हो (३१) लाखा पड़वा कराते हो, यह तीनों ही प्रश्न मिथ्या हैं ।

(३२) उजमणा कराते हो लिखा है, सो सत्य है, यह कार्य उत्तम है, क्योंकि यह श्रावक का धर्म है, और इस से शासन की उन्नति होती है, तथा **श्राद्धविधि, संदेहदोलावलि** वगैरह ग्रंथों में लिखा है ।

(३३) पूज ढोवराते हो-सो श्रावक की करणी है और श्रीजिन मंदिर की भक्ति निमित्त करते हैं ।

(३४) श्रावक के पास मुंडका दिला के डुंगर पर चढते हो । यह असत्य है, क्योंकि अद्यापि पर्यंत किसी भी जैनतीर्थ पर साधु का मुंडका नहीं लिया गया है ।

(३५) माला रोपण कराते हो । यह सत्य है मालारोपण कराना **श्रीमहानिशीथसूत्र** में कहा है ।

१ जगरांवा जिला लुधियाना में रूपचंद के दो साधु और अमरसिंह की साध्वी का संयोग हुआ और आधान रह गया सुना है, तथा बनूड में एक साधु ने अपना अकार्य गोपने के वास्ते छप्पर को आग लगा दी ऐसे सुना है और समाणें में एक ढूंढक साधु को अकार्य की शंका से श्रावको ने बारी में बैठने से रोक दिया पट्टी में एक परमानंद के चेले के अकार्य से ढूंढक श्रावक रात्रि के वक्त थानक को ताला लगाते थे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३६) अशोक वृक्ष बनाते हो, यह श्रावक का धर्म है ।

(३७) अष्टोत्तरी स्नात्र कराते हो । यह श्रावक की करणी है, और इस से अरिहंत पद का आराधन होता है, यावत् मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है, **श्रीरायपसेणीसूत्र** प्रमुख सिद्धांतों में सतरह भेद से यावत् अष्टोत्तरशत भेद तक पूजा करनी कही है ।

(३८) प्रतिमा के आगे नैवेद्य धराते हो यह उत्तम है, इस सें अनाहार पद की प्राप्ति होती है । श्रीहरिभद्रसूरि कृत **पूजापंचाशक** तथा **श्राद्ध-दिन-कृत्य** वगैरह ग्रंथों में यह कथन है ।

(३९) श्रावक और साधु के मस्तकोपरि वासक्षेप करते हो, यह सत्य है **कल्पसूत्रवृत्ति** वगैरेह शास्त्रों में कहा है परंतु तुम (ढूंढक) दीक्षा के समय में राख डालते हो सो ठीक नहीं है, क्योंकि जैन शास्त्रों मे राख डालनी नहीं कही है ।

(४०) नांद मंडाते हो लिखा है, सो ठीक है, नांद मांडनी शास्त्रों में लिखी है । **श्री अंगचूलियासूत्र** में कहा है कि व्रत तथा दीक्षा श्रीजिनमन्दिर में देनी - यतः

तिहि नखत्त मुहुत्त रविजोगाइय पसन्न दिवसे अप्पा वोसिरामि ।
जिणभवणइपहाणखित्ते गुरू वंदित्ता भणइ इच्छकारि तुम्हे
अम्हं पंचमहव्वयाइं राइभोयणवेरमणछट्ठाइं आरोवावणिया ।।

भावार्थ - तिथि, नक्षत्र, मुहूर्त, रविजोग आदि जोग, ऐसे प्रशस्त दिन में, आत्मा को पाप से वोसिरावे, सो जिनभवन आदि प्रधान क्षेत्र में गुरु को वंदना कर के कहे-प्रसाद कर के आप हम को पांच महा व्रत और छट्ठा रात्रि भोजन विरमण आरोपण करो (दो) ।

(४१) पदीकचाक बांधते हो लिखा है, सो मिथ्या है ।

(४२) वंदना करवाते हो, वंदना करनी सो श्रावकों का मुख्य धर्म है ।

(४३) लोगों के सिर पर रजोहरण फिराते हो, यह काम हमारे संवेगी मुनि नहीं करते हैं, परंतु तुम्हारे रिख यह काम करते हैं, सो प्रथम लिख आए हैं ।

(४४) गांठ में गरथ रखते हो अर्थात् धन रखते हो, यह महा असत्य है । इस तरह लिखने से जेठे ने तेरहवें पापस्थानक का बंधन किया है ।

(४५) दंडासन रखते हो लिखा, सो ठीक है, **श्रीमहानिशीथसूत्र** में कहा है[१]

(४६) स्त्री का संघट्टा करते हो लिखा है, सो मिथ्या है ।

(४७) पगों तक नीची पछेवडी ओढते हो लिखा है, सो मिथ्या है, क्योंकि संवेगी मुनि ऐसे नहीं औढते है, परन्तु तुम्हारे रिख पग की पानी (अड्डियों) तक लंबा घघरे जैसा चोलपट्टा पहिनते हैं ।

(४८) सूरिमंत्र लेते हो लिखा है, सो गणधर महाराज की परंपरा से है, इस वास्ते सत्य है ।

(४९) कपडे धुलवाते हो लिखा है, सो असत्य है ।

१ श्रीव्यवहारसूत्र भाष्यादिक में भी दंडासण रखना लिखा है ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

(५०) आंबिल की ओली कराते हो लिखा है, सो सत्य है, महा उत्तम है, **श्रीपालचरित्रादि** शास्त्रों में कहा है, और इस से नव पद का आराधन होता है, यावत् मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है ।

(५१) यति मरे बाद लड्डू लाहते हो लिखा है, सो असत्य है, हमने तो ऐसा सुना भी नहीं है, कदापि तुम्हारे ढूंढक करते हों, और इस से याद आ गया हो ऐसै भासता है [१]

(५२) यति के मरे बाद थूभ कराते हो - यह श्रावक की करणी हैं, गुरु भक्ति निमित्त करना यह श्रावक का धर्म है । **श्रीआवश्यक, आचारदिनकरादि** सूत्रोमें लिखा है और इसमें साधुका उपदेश है, आदेश नहीं।

ऊपर मुताबिक ५२. प्रश्न जेठमल ने लिखे हैं, सो महा मिथ्यात्व के उदयसे लिखे है, परंतु हमने इनके यथार्थ उत्तर शास्त्रानुसार दिये हैं, सो सुज्ञ पुरुषों ने ध्यान देकर पढ लेने ।

अब अज्ञानी ढूंढिये शास्त्रों के आधार बिना कितने कितनेक मिथ्या आचार सेवते हैं उनका वर्णन प्रश्नों की रीति से करते हैं :

१. सारा दिन मुंह बांधे फिरते हो, सो किस शास्त्रानुसार?
२. बैल की पूंछ जैसा लंबा रजोहरण लटका कर चलते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?
३. भीलों के समान गिलती बांधते हो, सो किस शा० ?
४. चेला चेली मोल का लेते हो, सो किस शा० ?
५. जूठे बरतनों का धोवण संमूर्च्छिम मनुष्योत्पत्ति युक्त लेते हो और पीते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?
६. पूज्य पदवी की चादर ओढते हो, सो किस शा० ? ।
७. पेशाब से गुदा धोते हो, सो किस शा० ?
८. लोच कर के पेशाब से शिर धोते हो, सो किस शा० ?
९. पेशाब से मुहपत्ती धोते हो, सो किस शा० ?
१०. भंगी चमार वगैरह को दीक्षा देते हो, सो किस शा० ?

दृष्टांत-हांसी गाम में लालचन्द रिख हुआ था, जो जाति का चमार था, जिसने अंबाले शहर में काल किया था, जिस की समाधि बनी हुई अब उस जगह विद्यमान है ।

११. छींबा, भरवाड (गडरिया), कहार (झींबर), कलाल, कुंभार, नाई वगैरह

१ सुनने में आया है कि अमृतसर में एक ढूंढनी के मरे बाद सेवकोंने पिंड भराये थे तथा पंजाब में जब किसी ढूंढीये या ढूंढनी के मरने पर लोक एकत्र होते हैं तो खूब मिठाईयों पर हाथ फेरते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को दीक्षा देते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

१२. कलाल, छींबा भरवाड, कुंभार वगैरह के घरका खाते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

१३. शय्यातर के घरका आहार पानी जाते आते लेते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

१४. विहार करते हुए ईरियावहि पडिक्कमते हो सो किस० ?

१५. काउसग्ग को ध्यान कहते हो, सो किस शा० ?

१६. नदी में आप तो उतरना परंतु आहार पानी नहीं ले जाना सो किस शास्त्रानुसार ?

१७. प्रतिक्रमण कर चुके पीछे खमाते हो, सो किस शा० ?

१८. दो साधुओं के बीच सात[1] पात्र रखते हो, सो किस शा० ?

१९. जिस के घर की एक चीज असूझती हो जावे उसका घर सारा दिन असूझता गिणना, सो किस शास्त्रानुसार ?

दृष्टांत-काठियावाड़ के गोंडल नामा शहर में संघाणी फलीये (महल्ले) में एक ढूंढिया साधु गौचरी जाता था, उस को एक ढूंढिये की खिड़की में प्रवेश करते हुए कुत्ता भौंका, ढूंढक ने साधु को बुलाया तब साधु ने कहा कि नहीं ! नही ! आज तेरी खिडकी असूझती हो गई, हम नहीं आवेंगे यह सुन के ढूंढिये ने कहा कि स्वामीजी ! क्या कारण ? ढूंढिये साधु ने कहा "कुत्ता खुले मुंह से भौका" ढूंढिये श्रावक ने कहा स्वामीजी ! स्वामी बेचरजी तो कुत्ता भौंकता है तो भी आते है, साधु ने जवाब दिया "वह तो ऐसा ही है, हम आने वाले नहीं" ऐसे कह के साधु चलता हुआ उस वक्त एक मश्करा पास खडा हुआ पूर्वोक्त वार्तालाप सुन के बोला कि स्वामीजी ! किसी गाम में प्रवेश करते हुए आपका वेष देख कर कुत्ता भौंके तो आप को वह सारा गांव ही असूझता हो जाता होगा !

२०. वस्त्र लेके बदले का पच्चक्खाण कराते हो, सो किस० ?

२१. जो वंदना करे उसको "दया पालो जी" कहते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

२२. एक अंक से अर्थात् नव रुपैये की किमत से उपरांत के वस्त्र नहीं लेने, सो किस शास्त्रानुसार ?

२३. धारणा मुताबिक त्याग कराते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

२४. बारह पहर का गरम पानी लेते हो, सो किस शा० ?

१ मतलब एक एक साधु के तीन तीन पात्रे और एक दोनों का इक्कठा जिस में पेशाब करते हो और जिसको मातरीया कहते हो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. जब दीक्षा देते हो तब पहिले ईरियावहि पडिक्कमा के सब श्रावकों के पास वंदना करा के पीछे दीक्षा देते हो, सो किस० ?

२६. चादर सफेद तो चोलपट्टा मलिन और चोलपट्टा सफेद तो चादर मलिन, सो किस शास्त्रानुसार ?

२७. किसी साधु के काल किये की खबर आवे अथवा कोई ढूंढिया साधु काल कर जावे तो चार लोगस्स का काउसग्ग करते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

२८. खडे हो कर काउसग्ग करते हो तब दो हाथ लंबे कर के और बैठ के करते हो तो दोनों हाथ इकट्ठे कर के, करते हो, सो किस० ?

२९. पोतीया बन्ध बनाना और उस का ओधा बिना कपडे रखना, साधु के वेषमें फिरना और मांग कर खाना, सो किस० ?

२०. पूज्यजी महाराज जी कहना, किस शास्त्रानुसार ?

३१. पूज्य पदवी के वक्त चादर देनी, किस शास्त्रानुसार ?

३२. चोलपट्टे के दोनों लड़ (किनारे) घघरे की तरह सी कर अगले पासे चिन कर, पहिरते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

३३. बडी दीक्षा देनी तब दशवैकालिक का छज्जिवणिया अध्ययन सुनाना, किस शास्त्रानुसार ?

३४. जब पूज्य पदवी देते हो तब चादर के किनारे पकड़ने वाले चारों जनों को एक एक विगय का या चीज का त्याग कराते हो, सो किस० ?

३५. जंगल जाते हुए जिस में पात्रा रखते हो, सो पल्ला रखना, किस शास्त्रानुसार ?

३६. रात्रि को शिर ढक के बाहिर निकलना और दिन में प्रभात से ही खुले शिर फिरना, सो किस शास्त्रानुसार ?

३७. धोवण वगैरह पानीमें से पूरे वगैरह जीव निकलें, तो उस को कूपवगैरह के नजदीक गिल्ली मिट्टी में डालते हो कि जहां कच्ची मिट्टी तथा निगोद वगैरह का भी संभव होता है, सो किस० ?

३८. जब गृहस्थी के घर गौचरी जाना तो चोर की तरह घर में प्रवेश करना और निकलना तब शाहुकार की तरह निकलना कहते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

३९. आठ पहर का पोसह करे तो २५. व्रत का फल कहते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

४०. दया पाले तो दश व्रत का फल बताते हो, सो किस० ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. सम्यक्त्व देते हो तब २५. व्रत कराते हो, सो किस० ?

४२. बड़ी सम्यक्त्व देते हो तब (१०८) व्रत कराते हो, सो कि० ?

४३. व्रत बेला इत्यादि के पारणे पोरसी करे तो दूना फल कहते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

४४. बेले से ले कर आगे पांच गुने व्रत फल की संख्या कहते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?[१]

४४. चार चार महिने आलोयणा करते हो, सो किस० ?

४६. पोसह करे तो ११ ग्यारवाँ बडा ब्रत कहते उच्चराते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

४७. ११ ग्यारवाँ छोटा ब्रत कहते पोसह पारना कहते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

४८. सामायिक करे तो नवमा व्रत कह के उच्चारना कहते हो, सो किस शास्त्रानुसार [२]

४९. सामायिक करते वक्त एक दो मुहूर्त तथा दो चार घडियां ऐसे कहना, सो किस शास्त्रानुसार ?

५०. सामायिक पारने वक्त नवमा सामायिक व्रत कह के पारना, सो किस शास्त्रानुसार ?

५१. व्रत कर के पानी पीना हो तो पोसह न करे, संवर करे, कहते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

५२. जब कोई दीक्षा लेने वाला हो तब उस के नाम से पुस्तक तथा वस्त्र पात्र लेते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

५३. जब आहार करते हो तब पात्रों के नीचे कपड़ा बिछाते हो, जिस का नाम मांडला कहते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

५४. सामायिक जिस विधि से करते हो, सो किस० ?

५५. सामायिक पारने का विधि किस शास्त्रानुसार ?

५६. पोसह करने का विधि किस शास्त्रानुसार ?

५७. पोसह पारने का विधि किस शास्त्रानुसार ?

१ इस प्रश्नका मतलब यह है कि लगातार दो व्रत करे तो पांचव्रत का फल होवे, तीन करे तो पच्चीस, चार करे तो सवासौ, पांच करे तो सवाछैसो, छै व्रत करे तो सवा इकतीस सौ ३१२५ व्रतका फल होवे इत्यादि ।

२ गुजरात मारवाड़ के कितनेक ढूंढियों में यह रिवाज है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८. दीक्षा देने का विधि किस शास्त्रानुसार ?

५९. संथारा करने का विधि किस शास्त्रानुसार ?

६०. श्रावक को व्रत देने का विधि किस शास्त्रानुसार ?

६१. देवसी पड़िकमणे का विधि किस शास्त्रानुसार ?

६२. राई पड़िकमणे का विधि किस शास्त्रानुसार ?

६३. पक्खी पड़िकमणे का विधि किस शास्त्रानुसार ?

६४. चौमासी पड़िकमणे का विधि किस शास्त्रानुसार ?

६५. संवच्छरी पड़िकमणे का विधि किस शास्त्रानुसार ?

६६. चौमासे पहिले एक महिना आगे आना कहते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

६७. सांझ को पंचमी लगने बाद संवच्छरी करनी, सो किस शास्त्रानुसार ?

६८. पूज्य पदवी देने का विधि किस शास्त्रानुसार ?

६९. अनन्त चौबीसी पड़िकमणे में पढनी किस शास्त्रानुसार ?

७०. ढालां तथा चौपइयां बांचनीयां और थेइया २ मानना, सो किस शास्त्रानुसार ?

७१. श्रावण दो होवें तो दूसरे श्रावण में पर्यूषण करने किस० ?

७२. भादों दो होवें तो पहिले भादों में पर्यूषण करने किस० ?

७३. नावों में बैठ के उतरे तेले का दण्ड कहते हो, सो किस० ?

७४. लस्सी (छास) और शरबत (मीठा पानी) पी कर एक दो मास तक रहना और कहना कि महिने दो महिने के व्रत किये है, सो किस शास्त्रानुसार ?

७५. एक साधु को महिने से ज्यादा तपस्या करा के सब साधु एक ठिकाने कल्प से ज्यादा रहते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

७६. जब लोच करते हो, तब गृहस्थी को व्रत वगैरह करा के चढ़ावा लेते हो, सो लोच आप करना और दंड गृहस्थी को देना, सो किस शास्त्रानुसार ?

७७. रजोहरण की डंडी पर कपडा लपेटना सो जीवरक्षा के निमित्त कहते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

७८. सफेद नवीन कपड़े पहने किस शास्त्रानुसार ?

७९. हमेशां सूर्य उदय हो तब आज्ञा लेते हो, और पच्चक्खाण कराते हो सो किस शास्त्रानुसार ?

८०. बूढे को डंडा रखना, और को नहीं रखना कहते हो, सो किस० ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८१. मुहपत्ती बांधने से वायुकाय की रक्षा होती है ऐसे कहते हो सो किस शास्त्रानुसार ?

८२. हाथ में लटका के गौचरी लाते हो, सो किस शा० ?

८३. अन्य तीर्थों के वास्ते भोजन करा हो उस को कहना कि तुम को शंका न हो तो दे दो, सो किस शास्त्रानुसार ?

८४. रात्रि को सूई रखे तो एक व्रतका दंड कहते हो, सो शा० ?

८५. सूई टूट जावे तो बेले (दो व्रत)का दंड कहते हो, सो किस० ?

८६. सूई खोई जावे तो तेले (३ व्रत)का दंड कहते हो, सो किस० ?

८७. पांच पद की तथा आठ पद की खमावणा कहते हो सो किस शास्त्रानुसार ?

८८. शास्त्रों में साधुओं के समूह को कुल गण संघ कहे हैं और तुम टोला कहते हो सो किस शास्त्रानुसार ?

८९. मुहपत्ती में डोरा डालना और मुंह के साथ बांधना सो किस शास्त्रानुसार ?

९०. ओधे की डण्डी मर्यादा बिना की लंबी रखनी सो किस० ?

९१. बडे बारह व्रत बैठ के बोलने सो किस शास्त्रानुसार ?

९२. छोटे बारह व्रत खडे हो के बोलने सो किस शास्त्रानुसार ?

९३. जब नमुत्थुणं कहना तब पहिले थइ थूई तथा नमस्कार नमुत्थुणं कहना सो किस शास्त्रानुसार ?

९४. नदी उतर के बेले तेले का दंड लेना सो किस शास्त्रानुसार ?

९५. रास्ते में नदी आती हो तो दो चार कोस के फेर में जाना । परंतु नदी नहीं उतरनी सो किस शास्त्रानुसार ?

९६. जंगल जाना तब खंडिये (कपडे के टुकडे) से गुदा पोछनी सो किस शास्त्रानुसार ?

९७. सामायिक में सोहागण स्त्री पंचरंगी मुहपत्ती बांधे, और विधवा एकरंगी बांधे, सो किस शास्त्रानुसार ?

९८. दीवाली के दिनोंमें उत्तराध्ययन सुनाना सो किस शास्त्रानुसार ?

९९. भगवान् महावीर स्वामीने दीवाली के दिन उत्तराध्ययन कहा कहते हो सो किस शास्त्रानुसार ?

१००. ओघेके ऊपर डोरे के तीन बंधन देने सो किस० ?

१०१. ओघेकी दशियों में जंजीरी पावना सो किस० ?

१०२. रजोहरण मोंढे(कंधे)पर डाल के विहार करना सो किस० ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०३. प्रथम बड़ा साधु पांचपद की क्षमापना करे पीछे छोटे साधु करे सो किस शास्त्रानुसार ?

१०४. कंडरीक ने एक हजार वर्ष तक बेले बेले पारणा किया कहते हो सो किस शास्त्रानुसार ?

१०५. गोशाले के ११ लाख श्रावक कहते हो सो किस० ?

१०६. साधु चोली समान और गृहस्थी दामन समान सो किस० ?

१०७. पडिकमणा आया पीछे बडी दीक्षा देनी सो किस० ?

१०८. सोलह दिन की अथवा तेरह दिन की पाखी नहीं करनी सो किस शास्त्रानुसार ?

१०९. पांचवें आरे के अंत में चार अध्ययन दशवैकालिक के रहेंगे ऐसे कहते हो सो किस शास्त्रानुसार ?

११०. पूनीया श्रावक की सामायिक कहते हो सो किस० ?

१११. बेले से उपरांत पारिट्ठावनीया आहार नहीं देना सो किस शास्त्रानुसार ?

११२. सूत्रों का त्याग कर देना, अपनी निश्राय नहीं रखने, सो किस शास्त्रानुसार ?

११३. छोटी पूंजणी रखनी सो किस शास्त्रानुसार ?

११४. पोथी पर रंगदार डोरा नहीं रखना कहते हो सो किस० ?

११५. आप चिट्ठी नहीं लिखनी, गृहस्थी से लिखाना सो किस शास्त्रानुसार ?

११६. कपडे सज्जी से नहीं धोने, पानी से धोने सो किस० ?

११७. ध्यान पार कर मन चला, वचन चला, काया चली, कहते हो सो किस शास्त्रानुसार ?

११८. पशम का कपड़ा नहीं लेना सो किस शास्त्रानुसार [१]?

११९. कई जगह श्रावक पडिकमणें में श्रमणसूत्र कहते हैं सो किस शास्त्रानुसार, क्योंकि श्रमणसूत्र में तो साधु के पांच महाव्रत और गौचरी वगैरह की आलोयणा है ।

१२०. कई जगह ढूंढक श्रावक सामायिक बांधूँ ऐसे कहते हैं सो किस शास्त्रानुसार ?

१२१. विहार करने के बदले उठे कहते हो सो किस० ?

१२२. एक जना लोगस्स पढ लेवे और सब का काउसग्ग हो जावे सो किस शास्त्रानुसार ?

१२३. पर्युषणापर्व में अंतगडदशांगसूत्र पढना किस० ?

१ लुधियाना नगर में निकाले ढूंढियों के नूतन दर बोलों में लिखा है कि : पशम का कपडा दिन में नहीं ओढना रातकी बात न्यारीः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२४. कई जगह कल्पसूत्र पढते हो और मानते नहीं हो सो किस शास्त्रानुसार ?

१२५. कई जगह पर्यूषणा में गोशाले का अध्ययन पढते हो सो किस शास्त्रानुसार ?

१२६. कोई रिख मर जावे तो पुस्तक वगैरह गृहस्थ की तरह हिस्से कर के बांट लेते हो सो किस शास्त्रानुसार ? दृष्टान्त-लींबडी में देवजी रिख के बहुत झगडे के बाद बारह हिस्से में बांटा गया है ।

१२७. धोलेरा तथा लींबडी वगैरह में पैसा वगैरह डालने के भंडारे बनाये हैं सो किस शास्त्रानुसार ?[१]

१२८. धोलेरा में वाड़ी बनाई है सो० ?

ऊपर के प्रश्न ढूंढकों के आचार वगैरह के संबंध में लिखे हैं इन पर विचार करने से प्रगटपणे मालूम होगा कि इन का आचार व्यवहार जैन शास्त्रोंसें विरुद्ध है ।

सुज्ञजनों ! संवेगी जैन मुनि देश विदेश में विचरते हैं, उन के उपकरण और क्रिया वगैरह प्रायः एक सदृश ही होती है; और ढूंढकों के मारवाड़, मेवाड़, पंजाब, मालवा, गुजरात, तथा काठियावाड़ वगैरह देशों में रहने वाले रिखों (ढूंढक साधुओं) के उपकरण, पोसह, प्रतिक्रमण वगैरह का विधि और क्रिया वगैरह प्रायः पृथक् पृथक् ही होते हैं, इससे सिद्ध होता है कि इन की क्रिया: वगैरह स्वकपोलकल्पित है, परन्तु शास्त्रानुसार नहीं है ।

ढूंढक लोक मिथ्यात्व के उदय से बत्तीस ही सूत्र मान के शेष सूत्र पंचांगी तथा धर्मधुरंधर पूर्वधारी पूर्वोचार्यों के बनाये ग्रन्थ प्रकरण वगैरह मानते नहीं हैं तो हम उन (ढूंढकों) को पूछते हैं कि नीचे लिखे अधिकारों को तुम मानते हो, और तुम्हारे माने बत्तीस सूत्रों के मूल पाठ में तो किसी भी ठिकाने नहीं है तो तुम किस के आधार से यह अधिकार मानते हो ?

बत्तीस सूत्रों के बाहिर के जो जो बोल ढूंढिये मानते हैं वे बोल यह हैं :

१. जंबू स्वामी की आठ स्त्री ।

२. पांचसौ सत्ताईस की दीक्षा ।

३. महावीर स्वामी के सत्ताईस भव ।

४. चंदनबाला ने उड़द के बाकुले वहोराए ।

१ पंजाब देश शहर हुशियारपुरमें संवत् १९४८ के माहि महिने में पुस्तकों के भंडारे के नाम से रुपैये एकत्र किये थे जिस में कितनेक बाहिर नगर के लोग पीछे से भेजने को कह गये थे, कितनेकने उसी वक्त दे दिये थे, अब सुनते हैं कि दे जाने वाले पश्चात्ताप करते हैं, और भेजने वाले मौनकर बेठे हैं और लेने वाले नाई और भाई दोनों को हजम कर गये हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. चंदनबाला दधिवाहन राजा की बेटी ।
६. चंदनबाला धन्ना शेठ के घर रही ।
७. चंदनबालाने छै महीने का पारणा कराया ।
८. संगम देवता का उपसर्ग ।
९. श्रीमहावीरस्वामी के कान में कीले ठोके ।
१०. श्रीमहावीरस्वामी ने१४. चौमासे नालंदे के पाड़े किये ।
११. श्रीमहावीरस्वामी को पूरण शेठने उड़द के बाकुले दिये ।
१२. श्रीमहावीरस्वामी से गौतम ने वाद किया ।
१३. श्रीमहावीरस्वामी ने चंडकोसीया को समझाया ।
१४. श्रीमहावीरस्वामी ने मेरुपर्वत कंपाया ।
१५. चेड़ा राजा की सातों बेटी सती ।
१६. अभयकुमार ने महिल जलाए ।
१७. श्रेणिक राजा चार बोल करे तो नरक में न जावे ।
१८. श्रेणिक के समझा ने को अगड़बंब बनाया ।
१९. प्रसन्नचंद्र राजा का अधिकार ।
२०. दीवाली के दिन अठारह देश के राजाओं ने पोसह किया ।
२१. श्रीमहावीरस्वामी का कुल तप ।
२२. श्रीमहावीरस्वामी का जमाली भाणजा ।
२३. श्रीमहावीरस्वामीका जमाली जमाई ।
२४. त्रिशला रानी चेडा राजा की बहिन ।
२५. करकंडु पद्मावती का बेटा ।
२६. नमिराजा मदनरेखा और युगबाहू का चरित्र ।
२७. ब्रह्मदत्त चक्रवर्त्ती की कथा ।
२८. सगर चक्रवर्त्ती की कथा ।
२९. सुभूम चक्रवर्त्ती सातवां खंड साधने गया ।
२०. मेघरथ राजा ने पारेवडा (कबूतर) बचाया ।
३१. श्रीनेमिनाथ राजीमती के नव भव ।
३२. राजीमती के बाप का नाम उग्रसेन ।
३३. श्रीपार्श्वनाथस्वामी ने नाग नागन बचाये ।
३४. श्रीपार्श्वनाथस्वामी को कमठ ने उपसर्ग किया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५. श्रीपार्श्वनाथस्वामी के दश भव ।
३६. श्रीऋषभदेव के जीव ने धन्नाशेठ के भव में घृत का दान दिया ।
३७. श्रीढंढण मुनि का अधिकार ।
३८. श्रीबलभद्र मुनि ने वन में मृग को प्रतिबोध किया ।
३९. श्रीमेतारज मुनि का अधिकार ।
४०. सुभद्रा सती का अधिकार ।
४१. सोलह सतियों के नाम ।
४२. श्रीधन्ना शालिभद्र का अधिकार ।
४३. श्रीथूलभद्र का अधिकार ।
४४. निरमोही राजा का अधिकार ।
४४. गुणठाणा द्वार ।
४६. उदयाधिकार १२२ प्रकृति का ।
४७. बंधाधिकार १२० प्रकृति का ।
४८. सत्ताधिकार १४८ प्रकृति का ।
४९. दश प्राण ।
५०. जीव के ५६३ भेद की बडी गतागती ।
५१. बासठिये की रचना ।
५२. भृगुपुरोहितादि के पूर्वजन्म का वृत्तान्त ।
५३. भृगुपुरोहित ने अपने बेटों को बहकाया ।
५४. रामायण कॉ अधिकार ।
५५. श्रीगौतमस्वामी देव शर्मा को प्रतिबोध ने वास्ते गये ।
५६. पैंतीस वाणी न्यारी न्यारी ।
५७. अरिहंत के बारह गुण ।
५८. आचार्य के छत्तीस गुण ।
५९. उपाध्याय के पच्चीस गुण ।
६०. सामायिक के ३२ दोष ।
६१. काउसग्ग के १९ दोष ।
६२. श्रावक के २१ गुण ।
६३. लोक १४ रज्जू प्रमाण ।
६४. पहली नरक १ रज्जू की ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६५. दूसरी नरक से एक एक रज्जू की वृद्धि ।
६६. सम्यक्त्व के ६७ बोल ।
६७. पाखी पडिकमणे में बारह लोगस्स का काउसग्ग करना ।
६८. चौमासी पडिकमणे में बीस लोगस्स का काउसग्ग करना ।
६९. संवच्छरी को ४० लोगस्स का काउसग्ग करना ।
७०. संवच्छरी को पैंठ का तेला ।
७१. पातरे लाल काले सफेद रंग ने ।
७२. रोज पडिकमणेमें चार लोगस्स का काउसग्ग करना ।
७३. मरुदेवी माता हाथी के हौदे पर मोक्ष गई ।
७४. ब्राह्मीसुंदरी कुमारी रही ।
७५. भरत बाहुबल का युद्ध ।
७६. दश चक्रवर्त्ती मोक्ष गये ।
७७. नंदिषेण का अधिकार ।
७८. सनतकुमार चक्रवर्त्ती का रूप देखने को देवता आये ।
७९. छट्ठे महिने लोच करना ।
८०. भरतजी के दश लाख मण लूण नित्य लगे ।
८१. बाहुबलि को ब्राह्मीसुंदरी ने कहा "वीरा मोरा गज थकी उतरो"
८२. बाहुबलि १ वर्ष काउसग्ग रहा ।
८३. सगर चक्रवर्त्ती के साठ हजार बेटो ।
८४. भगीरथ गंगा लाया ।
८५. बारह चक्रवर्त्ती की स्थिति ।
८६. बारह चक्रवर्त्ती की अवगाहना ।
८७. नव वासुदेव बलदेवों की स्थिति ।
८८. नव बासुदेव बलदेवों की अवगाहना ।
८९. नव प्रतिवासुदेवों की स्थिति ।
९०. नव प्रतिवासुदेवों की अवगाहना ।
९१. नव नारद के नाम ।
९२. चौवीस तीर्थंकर के अंतरे ।
९३. एकादश रुद्र ।
९४. स्कंदक मुनि की खाल उतारी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९५. स्कंदक मुनि के ४९९ चेले घाणी में पीडे ।
९६. अरणिक मुनि का अधिकार ।
९७. आषाढभूति मुनि का अधिकार ।
९८. आषाढभूति नटनी वाले का अधिकार ।
९९. सुदर्शन शेठ अभया रानी का अधिकार ।
१००. आठ दिन के पर्यूषणा करने ।
१०१. चेलणा रानी छल करके श्रेणिक ने व्याही ।
१०२. छप्पनकोड़ यादव ।
१०३. द्वारका में ७२ कोड घर ।
१०४. द्वारका के बाहिर ६० कोड़ घर ।
१०५. रेवती ने कोलापाक बोहराया ।
१०६. श्रीपार्श्वनाथ की स्त्री का नाम प्रभावती ।
१०७. श्रीमहावीरस्वामी की बेटी को ढंक नामा श्रावक ने समझाया ।
१०८. भगवान की जन्मराशि ऊपर दो हजार वर्ष का भस्मग्रह ।
१०९. भगवान के निर्वाण से दीवाली चली ।
११०. हस्तपाल राजा वीनती करे चरम चौमासा यहां करो ।
१११. शालिभद्र ने पूर्व जन्म में खीर का दान दिया ।
११२. कयवन्ना कुमार की कथा ।
११३. अभयकुमार की कथा ।
११४. जंबूस्वामी की आठ स्त्रियों के नाम ।
११५. जंबूकुमार का पूर्वभव में भवदेव नाम और स्त्री का नागीला नाम ।
११६. जंबूकुमार के मातापिता का नाम धारणी तथा ऋषभदत्त ।
११७. अठारह नाते एक भव में हुए उस की कथा ।
११८. जंबूकुमार की स्त्रियों ने आठ कथा कहीं ।
११९. जंबूकुमार ने आठ कथा कहीं।
१२०. प्रभव पांचसौ चोरों सहित आया ।
१२१. जंबूकुमार के दायजे में ९९ क्रोड़ सोनैये आये ।
१२२. सीता सती को रावण हरके ले गया ।
१२३. रावण के भाईयों का नाम कुंभकरण विभीषण था ।
१२४. रावण की बहिन का नाम सूर्पनखा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२५. रावण का बहनोई खरदूषण ।
१२६. रावण की रानी का नाम मंदोदरी ।
१२७. रावण के पुत्र का नाम इंद्रजित ।
१२८. रावण की लंका सोने की ।
१२९. पवनंजय तथा अंजना सती का पुत्र हनुमान और इन का चरित्र ।
१३०. लक्ष्मणजी की माता का नाम सुमित्रा ।
१३१. सीता ने धीज की ।
१३२. जरासंघ की बेटी जीवजसा ।
१३३. जराविद्या नेमिनाथ के चर्ण जल से (स्नात्रजल) भाग गई ।
१३४. कुंती का बेटा कर्ण ।
१३५. पांडवों ने जूए में द्रौपदी हारी ।
१३६. वसुदेव की ७२००० स्त्री ।
१३७. वसुदेव पूर्वभव में नंदिषेण था और उसने साधु की वैयावच्च की ।
१३८. हरकेशी मुनि का पूर्वभव ।
१३९. पांचवें आरे में सौ सौ वर्षे ६ महिने आयु घटे ।
१४०. पांचवें आरे का जव (जौ)का आकार ।
१४१. पांचवें आरे लगते १२० वर्ष का आयु ।
१४२. संपूर्ण पदवी द्वार ।
१४३. भरतजी की आरी से भवन में अंगूठी गिरी ।
१४४. भरतजी को देवता ने साधु का वेष दिया ।
१४५. साधु का भेष देख कर रानियां हँसने लगी ।
१४६. श्रीऋषभदेवजी ने पारणे में १०८ घड़े इक्षु रस के पीए ।
१४७ मरुदेवी माता ने ६५००० पीढियां देखीं।
१४८. मरुदेवी माता को रोते रोते आंखों में पडल आ गये ।
१४९. श्रीऋषभदेव तथा श्रेयांस कुमार का पूर्वभव ।
१५०. भरतजी ने पूर्वभव में पांच सौ मुनियों को आहार ला कर दिया ।
१५१. बाहुबली ने पूर्वभव में पांचसौ मुनियों की वैयावच्च की
१५२. श्रीऋषभदेवजी ने पूर्वभव में बैलों को अंतराय दिया । इस वास्ते एक. वर्ष तक भूखे रहे ।
१५३. प्रद्युम्न कुमार हरा गया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५४. शांबकुमार का चरित्र ।
१५५. जरासंध के काली कुमारादि पांचसौ बेटे यादवों के पीछे आये ।
१५६. यादवों की कुलदेवी ने काली कुमार छला ।
१५७. रावण चौथी नरक में गया ।
१५८. कुंभकर्ण तथा इंद्रजित मोक्ष गये ।
१५९. कौरवपांडवों का युद्ध ।
१६०. रहनेमिने ५०स्त्रियां त्यागी[१] ।
१६१. चेडाराजा की पुत्री चेलणा ने जोगियों को जूत्तियां कतर के खिलाईं ।
१६२. शालिभद्र की ३२ स्त्रियां ।
१६३. शालिभद्र की माता का नाम भद्रा ।
१६४. शालिभद्र के पिता का नाम गोभद्र ।
१६५. शालिभद्र की बहिन सुभद्रा ।
१६६. शालिभद्र का बहनोई धन्ना ।
१६७. शालिभद्र रोज एक एक स्त्री छोडता था ।
१६८. धन्नाजी की आठ स्त्रियां ।
१६९. धन्नाजी ने एक ही दिन में आठ स्त्रियां त्यागी ।
१७०. धन्ना और शालिभद्र ने संथारा किया ।
१७१. संथारे की जगह पर शालिभद्र की माता गई ।
१७२. धन्नाजी ने आंख नहीं टमकाई सो मोक्ष गया ।
१७३. शालिभद्रने आंख टमकाई सो मोक्ष नहीं गया ।
१७४. अवंती सुकुमाल का चरित्र ।
१७५. विजय शेठ और विजया शेठानी का अधिकार ।
१७६. प्रभु के निर्वाण बाद ९८० वर्ष सूत्र लिखे गये ।
१७७. बारह वरसी काल पडा ।
१७८. चंद्रगुप्तराज को सोलह स्वप्न आए ।
१७९. पांचवें आरे के अंत में दुप्पसह साधु ।
१८०. पांचवें आरे के अंत में फल्गुश्री साध्वी ।
१८१. पांचवें आरे के अंत में नागील श्रावक ।
१८२. पांचवें आरे के अंत में सत्यश्री श्राविका ।

१ कितनेक ५०० भी कहते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८३. एक आर्या (साध्वी) महाविदेह से मुहपत्ती ले आई ।
१८४. थूलिभद्र वेश्या के घर रहा ।
१८५. सिंह गुफावासी साधु नैपाल देश से रत्नकंबल लाया ।
१८६. दिगंबर मत निकला ।
१८७. विष्णु कुमार का संबंध ।
१८८. सलाका, प्रतिसलाका, महासलाका और अनवस्थित इन चार प्यालों का अधिकार ।
१८९. वीस विहरमान का अधिकार ।
१९०. दश प्रकार का कल्प ।
१९१. जंबूस्वामी के निर्वाण पीछे दश बोल व्यवच्छेद हुए ।
१९२. गौतमस्वामी तथा अन्य गणधरों का परिवार ।
१९३. अठावीस लब्धियों के नाम तथा गुण ।
१९४. असझाइयों का काल प्रमाण ।
१९५. बारह चक्री, नव बलदेव, नव वासुदेव, नव प्रतिवसुदेव, किस किस. प्रभु के वक्त में और किस किस प्रभु के अंतर में हुए ।
१९६. सर्व नारकियों के पाथडे, अंतरे, अवगाहना तथा स्थिति ।
१९७. सीझना द्वार बडा ।
१९८. नरक की ९९ पडतला (प्रतर) ।
१९९. जंबूस्वामी की आयु ।
२००. देवलोक की ६२ पडतलां ।
२०१. पक्खी को पैंठका व्रत ।
२०२. लोच करा के सर्व-साधुको वन्दना करनी ।
२०३. दीक्षा देते चोटी उखाडना ।
२०४. अधिक मास होवे तो पांच महिने का चौमासा करना अब बत्तीस सूत्रों में जो जो बोल कहे हैं और ढूंढक मानतें नहीं हैं, उन में से थोडे बोल निष्पक्षपाती, न्यायवान, भगवान की वाणी सत्य मानने वाले और सुगति में जाने वाले भव्य जीवों के ज्ञान के वास्ते लिखते हैं ।

१. **श्रीप्रश्नव्याकरण** सूत्र के पांचवें संवरद्वार में साधु के उपकरण भगवान् ने कहे हैं जिस का मूल पाठ अर्थसहित प्रथम लिख चुके हैं, अब विचारना चाहिये कि यदि ढूंढक स्वलिंगी हैं, तो पूर्वोक्त भगवत्प्रणीत उपकरण क्यों नहीं रखते हैं ? यदि अन्यलिंगी हैं तो गेरु के रंगे कपडे रखने चाहिये, जिससे भोले लोग फंदे में फंसे नहीं और यदि गृहस्थ हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो टोपी पगडी आदि रखनी चाहिये ।

२. **श्रीनिशीथसूत्र** के पांचवें उद्देश में कहा है कि विना प्रमाण रजोहरण रखे, अथवा रखने वाले को सहायता देवे, तो प्रायश्चित्त आवे, और ढूंढियों का रजोहरण शास्त्रोक्त प्रमाण सहित नहीं है ।

श्रीनिशीथसूत्र का पाठ यह है

जे भिक्खु अइरेग पमाणरयहरणं धरेइ धरंतं वा साइज्जइतं सेवमाणे आवज्जइ मासिय परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।।

३. **श्रीनिशीथसूत्र** के १८ वें उद्देश में नये कपडे को तीन पसली रंग देना कहा है, ढूंढक नहीं देते हैं ।

पाठो यथा

जे भिक्खु णवएमेवत्थे लड्वे त्तिकट्टु बहुदिव सिपणं लोघेण वा कक्केण वा ण्हाणवापउम चुणेण्ण वा वणेण्ण वा उल्लो लेज्ज वा उवट्टेज्ज वा उल्लोलंतं वा उवट्टंतं वा साईज्जइ

४. **श्रीउत्तराध्ययनसूत्र** के २६ वें अध्ययन में पडिलेहणा का विधि कहा है उस मुताबिक ढूंढक नहीं कहते हैं,

श्रीभगवती, आचारांग, दश वैकालिक आदि सूत्रों में डंडा रखना कहा है, ढूंढक रखते नहीं हैं ।

श्रीभगवतीसूत्र शतक ८ उद्देश ६ में कहा है – ५. यतः

एवं गोच्छग रयहरणं चोलपट्टग कंबल लट्ठी संथारग वत्तव्वा भाणियव्वा ।

६. श्रीआवश्यक प्रमुख सूत्रों में पच्चक्खाण के आगार कहे हैं, ढूंढिये आगार सहित पच्चखाण नहीं कराते हैं[१]

७. श्रीभगवतीसूत्र में निर्विशेष मानना कहा है, ढूंढक नहीं मानते हैं ।

८. श्रीभगवतीसूत्र में निर्युक्ति माननी कही है, ढूंढक नहीं मानते हैं ।

९. सूत्रों में साधु के रहने के मकानका नाम उपाश्रय कहा है, और ढूंढकों ने मनःकल्पित थानक नाम रख लिया है ।

१०. **श्रीअनुयोगद्वारसूत्र** में उज्ज्वल वस्त्र पहन ने वाले को भ्रष्टाचारी द्रव्य आवश्यक करने वाला कहा है, और ढूंढक उज्ज्वल वस्त्र पहनते हैं ।

११. सूत्र में गृहस्थ को आहार दिखाना मना किया है और ढूंढक घर घर में दिखाते फिरते हैं ।

१२. **श्रीआवश्यकसूत्र** में अभ्भुट्ठिउमिकी पट्टी पढनी कही हैं, ढूंढक नहीं पढते हैं ।

---

१ **श्रीठाणांत्रसूत्र** के दशवें ठाणे में भी आगार सहित पच्चक्खाण लिखा है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. **श्रीसमवायांगसूत्र** में २५. बोल वंदना में करने कहे हैं, ढूंढक नहीं करते हैं।

१४. **श्रीनंदीसूत्र** में १४००० सूत्र कहे हैं, ढूंढिये नहीं मानते हैं, ऊपर लिखे मुताबिक अधिकार सूत्रों में कहे हैं, इन की भी ढूंढकों को खबर नहीं मालूम देती है, तो फिर इनको शास्त्रों के जाणकार कैसे मानीए ?

अब कितनेक अज्ञानी ढूंढक ऐसे कहते हैं, कि हम तो सूत्र मानते हैं निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका नहीं मानते हैं।

इसका उत्तर :

१. सूत्र में कहा है कि- "अत्थं भासेइ अरहा सुत्तं गुंथंति गणहरा निउणा"।

अर्थ- सूत्र तो गणधरों के रचे हैं और अर्थ अरिहंत के कहे हैं तो सूत्र मानना, और अर्थ बताने वाली निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका नहीं माननी यह प्रत्यक्ष जिनाज्ञा विरुद्ध नहीं हैं ? जरूर है।

२. **श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्र** में कहा है कि व्याकरण पढे बिना सूत्र वांचे उसको मृषा बोलने वाला जानना सो पाठ यह है,

नामक्खाय निवाय उवसग्ग तद्धिय समास संधि पय हेउ जोगिय उणाइ किरिया विहाण धाउसर विभित्तिवन्नजुत्तं तिकालं दसविहं पि सच्चंजह भणियं तह कम्मुणा होइ दुवालस विहाय होइ भासा वयणंपिय होइ सोलसविहं एवं अरिहंत मणुन्नायं समिक्खियं संजएणं कालंमिय वत्तव्वं ।।

अर्थ- नाम, आख्यात, निपात, उपसर्ग, तद्धित, समास, संधि, पद, हेतु, यौगिक, उणादि, क्रिया विधान, धातु, स्वर, विभक्ति, वर्ण युक्त, तीन काल, दश प्रकार का सत्य, बारह प्रकार की भाषा, सोलह प्रकार का वचन जानना, इस प्रकार अरिहंत ने आज्ञा की है, ऐसे सम्यक् प्रकार से जानके, बुद्धि द्वारा विचार के साधु को अवसर अनुसार बोलना चाहिये।

इस प्रकार सूत्र में कहा है, तो भी ढूंढ़िये व्याकरण पढ़े बिना सूत्र पढ़ते हैं, तो अब विचारना चाहिये, कि पूर्वोक्त वस्तुओं का ज्ञान विना व्याकरण के पढे कदापि नहीं हो सकता है, और व्याकरण का पढन ढूंढ़िये अच्छा नहीं समझते हैं, तो पूर्वोक्त पाठ का अनादर करने से जिनाज्ञाके उत्थापक इनको समझना चाहिये कि नहीं जरूर समझना चाहिये।

३. **श्रीसमवायांगसूत्र** तथा **नंदिसूत्र** में कहा है कि-

आयारेणं परित्ता वायणा संक्खिज्जा अणुओगदारा संक्खिज्जा वेढा संक्खिज्जा सिलोगा संक्खिज्जाओ निज्जुत्तिओ संक्खिज्जाओ पडिवत्तिओ संक्खिज्जाओ संघयणीओ इत्यादि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्यपि सूत्रों में कहा है तो भी ढूंढक निर्युक्ति प्रमुख को नहीं मानते हैं, इस वास्ते ये सूत्रों के विराधक हैं ।

४. **श्रीठाणांगसूत्र** के तीसरे ठाणे के चौथे उद्देश में सूत्र प्रत्यनीक, अर्थ प्रत्यनीक और तदुभय प्रत्यनीक एवं तीन प्रकार के प्रत्यनीक कहे हैं-यत -

सुयं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता सुत्त पडिणीए अत्थपडिणीए तदुभयपडिणीए ।।

ढूंढक इस प्रकार नहीं मानते हैं इस वास्ते ये जिन शासन के प्रत्यनीक हैं ।

५. **श्रीभगवतीसूत्र** में कहा है कि जो निर्युक्ति न माने, उसको अर्थ प्रत्यनीक जानना ढूंढक नहीं मानते हैं, इस वास्ते ये अर्थ प्रत्यनीक हैं ।

६. **श्रीअनुयोगद्वारसूत्र** में दो प्रकार का अनुगम कहा है - यत -

सुत्ताणुगमे निज्जुत्ति अणुगमेय-तथा-निज्जुत्ति अणुगमे तिविहे पण्णत्ते उवधायनिज्जुत्ति अणुगमे इत्यादि-तथा-उद्देसे निद्देसेनिग्गमेखित्तकाल पूरिसेय । इत्यादि दो गाथा हैं ।

ढूंढिये पंचांगी को नहीं मानते हैं तो इस सूत्र पाठ का अर्थ क्या करेंगे ?

७. **श्रीभगवतीसूत्र** के २५ में शतक के तीसरे उद्देश में कहा है-कि-

सुत्तत्थो खलु पढमो बीओ निज्जुत्ति मिस्सिओ भणिओ ।

तइओय निरविसेसो । एस विही होइ अणु ओगो [१] ।।१।।

अर्थ- प्रथम निश्चय सूत्रार्थ देना, दूसरा निर्युक्त सहित देना और तीसरा निर्विशेष (संपूर्ण) देना यह विधि अनुयोग अर्थात् अर्थ कथन की है-इस सूत्र पाठ सें तीसरे प्रकार की व्याख्या में भाष्य चूर्णि और टीका इनका समावेश होता है और ढूंढिये नहीं मानते हैं तो पूर्वोक्त पाठ को कैसे सत्य कर दिखावेंगे ?

८. **श्रीसूयगडांगसूत्र** के २१ में अध्ययन में कहा है- कि-

अहागडाइं भुंजंति अण्ण मण्णे सकम्मुणा

उवलित्ते वियाणिज्जा अणुवलित्तेतिवा ।।१।।

पुणो एएहिं दोहिंठाणेहिं ववहारो न विज्जइ

एएहिं दोहिं ठाणेहिं अणायारं तु जाणए ।।२।।

ढूंढिये टीकाको नहीं मानते हैं तो इन दोनों गाथाओं का अर्थ क्या करेंगे ?

कितनेक कहते हैं कि टीका में परस्पर विरोध है । इस वास्ते हम नहीं मानते हैं । इसका उत्तर-यदि शुद्ध परंपरागत गुरु की सेवा कर के उनके समीप अध्ययन करें तो कोई भी विरोध न पडे, और यदि विरोध के कारण से ही नहीं मानना कहते हो, तो बत्तीस सूत्रों के मूल पाठमें भी परस्पर बहुत विरोध पडते हैं-जैसे किः-

१ **श्रीनंदिसूत्र** में भी यह पाठ है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. **श्रीजंबूद्वीप पन्नत्ति** सूत्र में ऋषभ कूट का विस्तार मूल में आठ योजन, मध्यमें छे योजन, और ऊपर चार योजन कहा है । फिर उसी में ही कहा है कि ऋषभ कूट का विस्तार मूल में बारह योजन, मध्य में आठ योजन, और ऊपर चार योजन है । बताइये एक ही सूत्र में दो बातें क्यों ?

२. **श्रीसमवायांगसूत्र** में श्रीमल्लिनाथ प्रभु के (५७००) मन पर्यवज्ञानी कहे हैं, और **श्रीज्ञातासूत्र** में (८००) कहे हैं, यह क्या ?

३. **श्रीसमवायांगसूत्र** में श्रीमल्लीनाथजी के (५९००) अवधि ज्ञानी कहे हैं और **श्रीज्ञातासूत्र** में (२०००) कहे हैं सो क्या ?

४. **श्रीज्ञातासूत्र** में श्रीमल्लिनाथजी की दीक्षा के पीछे ६ मित्रों की दीक्षा लिखी है, और **श्रीठाणांगसूत्र** में श्रीमल्लिनाथजी के साथ ही लिखी है सो क्या ?

५. **श्रीउत्तराध्ययन** सूत्र के ३३ में अध्ययनमें वेदनीय कर्मकी जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त की कही है, और **श्रीपन्नवणासूत्र** के ३३ में पद में बारह मुहूर्त की कही हैं, सो क्या ?

इस तरह अनेक फरक हैं, जिनमें से अनुमान ९०. श्रीमद्यशोविजयजी कृत **वीरस्तुतिरूप हुंडी के स्तवन के बालावबोध** में पंडित श्रीपदमविजयजी ने दिखलाए हैं, परंतु यह फरक तो अल्प बुद्धि वाले जीवों के वास्ते है । क्योंकि कोई पाठांतर, कोई अपेक्षा, कोई उत्सर्ग, कोई अपवाद, कोई नयवाद, कोई विधिवाद, कोई चरितानुवाद, और कोई वाचनाभेद है, सो गीतार्थ ही जानते हैं, जिनमें से बहुत से फरक तो निर्युक्ति, टीका प्रमुख से मिट जाते हैं । क्योंकि निर्युक्ति के कर्ता चतुर्दश पूर्वधर समुद्र सरिखी बुद्धि के धनी थे, ढूंढकों जैसे मूढमति नहीं थे ।

ऐसे पूर्वोक्त प्रकार के अनाचारी, भ्रष्ट, दुराचारी, कुलिंगियों को, जैनमत के, चतुर्विध संघ के तथा देव गुरु शास्त्र के निंदकों को, तथा दैत्य सरिखे रूप धारने वाले स्वच्छंदमतियों को, साधु मानने और इनके धर्म की उदय उदय पूजा कहनी तथा लिखनी महामिथ्या दृष्टियों का काम है ।

और जो **सूयगडांगसूत्र** की गाथा लिख के जेठे ने अपनी परंपराय बांधी है सो असत्य है, क्योंकि इन गाथाओं में सिद्धांतकार ने ऐसा नहीं लिखा है कि पंचम काल में मुहबंधे ढूंढक मेरी पंरपरा में होंगे । इस वास्ते इन गाथाओं के लिखने से ढूंढक पंथ सच्चा नहीं सिद्ध होता है । परंतु ढूंढक पंथ वेश्यापुत्र तुल्य है यह तो इस ग्रंथमें प्रथम ही साबित कर चुके है ।

।। इति प्रथम प्रश्नोत्तर खंडनम् ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. आर्यक्षेत्र की मर्यादा विषय :

दूसरे प्रश्नोत्तर में जेठा रिख लिखता है कि "तारातंबोल में जैनी जैनमत के मंदिर मानते हैं" उस पर **श्रीबृहत्कल्पसूत्र** का पाठ लिख के आर्यक्षेत्र की मर्यादा बता के पूर्वोक्त कथन का खंडन किया है । परन्तु जेठे का यह पूर्वोक्त लिखना महा मिथ्या है, क्योंकि जैनशास्त्रों में तारातंबोल में जैनमत, वा जैनमन्दिर लिखे नहीं है, और हम इस तरह मानते भी नहीं है । यह तो जेठे के शिर में बिना ही प्रयोजन खुजली उत्पन्न हुई है । इस वास्ते यह प्रश्नोत्तर ही झूठा है । और **श्रीबृहत्कल्पसूत्र** का पाठ तथा अर्थ लिखा है सो भी झूठा है । क्योंकि प्रथम तो जो पाठ लिखा है सो खोटों से भरा हुआ है, और उसका जो अर्थ लिख्या है सो महा भ्रष्ट स्वकपोलकल्पित झूठा लिखा है । उसने लिखा है कि " दक्षिण में कोसंबी नगरी तक सो तो दक्षिण दिशा में समुद्र नजदीक है । आगे समुद्र जगती तक है तो समुद्र का क्या कारण रहा," अब देखिये जेठे की मूर्खता ! कि कोसंबी नगरी प्रयागके पास थी, जिस जगह अब कोसम ग्राम बसता है और **आवश्यकसूत्र** में लिखा है कि कोसंबी नगरी यमुना नदी के किनारे पर है । जेठा मूढमति लिखता है कि कोशांबी दक्षिण देश में समुद्र के किनारे पर है । यह कोसंबी कौन से ढूंढक ने वसाई है ? इस से तो अंग्रेज सरकार की ही समझ ठीक है कि जिन्हों ने भी कोसंबी प्रयाग के पास ही लिखी है । इस वास्ते जेठे का लिखना सर्व झूठ है; शेष अर्थ भी इसी तरह झूठे हैं ।

।। इति ।।

३. प्रतिमा की स्थिति का अधिकार :

तीसरे प्रश्नोत्तर में जेठे ने "प्रतिमा असंख्याते काल तक नहीं रह सकती है ।" उस पर **श्रीभगवतीसूत्र** का पाठ लिखा है, परन्तु उस पाठ तथा अर्थ में बहुत भूल हैं ; तथा इस लेख सें मालूम होता है कि जेठा महा अज्ञानी था, और दही के भुलावे कपास खाता था । क्योंकि हम तो प्रतिमा का असंख्याते काल तक रहना देव साहाय्य से मानते हैं । और **श्रीभगवतीसूत्र** में जो स्थिति लिखी है सो देव साहाय्य बिना स्वाभाविक स्थिति कही है । और देवशक्ति तो अगाध है ।

और ढूंढिये भी कहते हैं कि चक्रवर्त्ती छे खंड साध के अहंकार युक्त हो के ऋषभकूट पर्वत उपर नाम लिखने के वास्ते जाता है, वहां उस पर्वत पर बहुत से नाम दृष्टिगोचर होने सें अपना अहंकार उतर जाता है । पीछे एक नाम मिटा के अपना नाम लिखता है । अब विचार करो, कि भरत चक्री हुआ तब अठारह कोटाकोटि सागरोंपम का तो भरतक्षेत्र में धर्म विरह था । तो इतने असंख्याते काल पहिले हुए चक्रवर्त्तीयों के कृत्रिम नाम असंख्याते काल तक रहे तो देव सांनिध्य से श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथ की प्रतिमा तथा श्री अष्टापद तीर्थ वगैरह रहे इसमें कुछ भी असंभव नहीं है, तथा **श्री जंबूद्वीप पन्नत्तिसूत्र** में प्रथम आरे भरतक्षेत्र का वर्णन नीचे मुताबिक है, -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीसेणं समए भारहेवासे तत्थ तत्थ बहवे बणराइओ पण्णत्ताओ किहाओ किण्हाभासाओ जावमणोहराओ यमत्तछप्पय कोरग भिंगारग कोडलग जीव जीवगणंदिमुहकविल पिंगल लखग कारंडक चक्कवाय कलहंस सारस अणेग सउणगण मिहुण विरियाओ सद्दुणणत्तिए महुर सरणादिताउ संपिंडिय णाणाविहा गूच्छवावी पुरकरिणी दीहियासु इत्यादि ।।

अर्थ - उस समय भरतक्षेत्र में वहां वहां बहुत बनराज हैं, कृष्ण कृष्णवर्णशोभावत् यावत् मनोहर है । मद कर के रक्त ऐसे भ्रमर, कोरक भींगारक, कोडलक, जीव जीवक, नंदिमुख, कपिल, पिंगल, लखग, कारंडक, चक्रवाक, कलहंस, सारस अनेक पक्षियों के मिथुन (जोडे) उनसे सहित है । वृक्ष मधुर स्वर कर के इकट्ठे हुए हैं । नानाप्रकार के गुच्छे वौडियां पुष्कारिणी, दीर्धिका वगैरह में पक्षी विचरते हैं ।

ऊपर लिखे सूत्रपाठ में प्रथम आरे भरतक्षेत्र में बौडी, पुष्करिणी आदि का वर्णन किया हे । तो विचारो कि वौडी किसने कराई ? शाश्वती तो है नहीं, क्योंकि सूत्रों में वे वौडियां शाश्वती कही नहीं हैं ।

और उस काल में तो युगलिये नव कोटाकोटि सागरोपम से भरतक्षेत्र में थें । उनको तो यह बौडी आदि का करना है नहीं । तो उससें पहिले की अर्थात् नव कोटाकोटी सागरोपम जितने असंख्यातेकाल की वे वौडियां रही । तो श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथ की प्रतिमा तथा अष्टापद तीर्थोपरि श्रीजिनमंदिर देव सांनिध्यसे असंख्यात काल तक रहे इसमें क्या आश्चर्य है ?

प्रश्न के अंतमें जेठा लिखता है कि "पृथिवीकाय की स्थिति तो बाईस हजार (२२०००)वर्ष की उत्कृष्टी है, और देवताओं की शक्ति कोई आयुष्य बधाने की नहीं"। इस तरह लिखने से लिखने वाले ने निःकेवल अपनी मूर्खता दिखलाई है । क्योंकि प्रतिमा कोई पृथिवीकाय के जीवयुक्त नहीं है । किंतु पृथ्वीकाय का दल है । तथा जेठा लिखता है कि "पहाड तो पृथ्वी के साथ लगे रहते हैं । इस वास्ते अधिक वर्ष रहते हैं । परंतु उसमें से पत्थर का टुकडा अलग किया हो तो बाइस हजार वर्ष उपरांत रहे नहीं" इस लेख से तो वह पत्थर नाश हो जावे अर्थात् पुद्गल भी रहे नहीं ऐसा सिद्ध होता है, और इससे जेठे की श्रद्धा ऐसी मालूम होती है कि किसी ढूंढकका सौ (१००)वर्ष का आयुष्य हो तो वह पूर्ण होए । उस का पुदगल भी स्वयं ही नाश हो जाता है । उस को अग्निदाह करना ही नहीं पडता ! ऐसे अज्ञानी के लेख पर भरोसा रखना यह संसारभ्रमणका ही हेतु है

।। इति तृतीय प्रश्नोत्तर खंडनम् ।।

४. आधाकर्मी आहार विषयक :

चौथै प्रश्नोत्तर में लिखा है कि "देवगुरु धर्म के वास्ते आधाकर्मी आहार देने में लाभ है" जेठे ढूंढक का यह लिखना निःकेवल झूठ है, क्योंकि हमारे जैनशास्त्रों में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा एकांत किसी भी ठिकाने लिखा नहीं है, और न हम इस तरह मानते हैं ।

और जेठे ने लिखा है कि "**श्रीभगवतीसूत्र** के पांचवें शतक के छठे उद्देश में कहा है कि जीव हने, झूठ बोले, साधु को अनेषणीय आहार देवे, तो अल्प आयुष्य बांधे" यह पाठ सत्य है, परंतु इस पाठ में जीव हने, झूठ बोले, यह लिखा है । सो आहार निमित्त समझना । अर्थात् साधु निमित्त आहार बनाते जो हिंसा होवे सो हिंसा और साधु निमित्त बना के अपने निमित्त कहना सो असत्य समझना । तथा इस ही उद्देश के इस से अगले आलवे में लिखा है कि जीवदया पाले, असत्य न बोले, साधु को शुद्ध आहार देवे, तो दीर्घ आयुष्य बांधे । इस आलावे की अपेक्षा अल्प आयुष्य भी शुभ बांधे, अशुभ नही, क्योंकि इस ही सूत्र के आठवें शतक के छठे उद्देश में लिखा है कि-

समणोवासगस्स णं भंते तहारूवं समणं वा माहण वा अफासुण्णं अणेसणिज्जेणं असणं पाणं जावपडिलाभेमाणे किं कज्जइ ?

गोयमा ! बहुतरिया से निज्जरा कज्जइ अप्पतराए से पावे कम्मे कज्जइ

अर्थ - हे भगवन् ! तथारूप श्रमण माहन को अप्राशूक अनेषणीय अशन पान वगैरह देने से श्रमणोपासकको क्या होवे ?

हे गौतम ! पूर्वोक्त काम करने से उसका बहुतर निर्जरा हो, और अल्पतर पापकर्म होगा, अब विचारो कि साधु को अप्राशूक अनेषणीय आहारादि देने से अल्पतर अर्थात् बहुत ही थोडा पाप, और बहुतर अर्थात् बहुत ज्यादा निर्जरा हो तो बहुनिर्जरा वाला ऐसा अशुभ आयुष्य जीव कैसे बांधे ? कदापि न बांधे । परंतु ज्ञानावरणीय कर्म के प्रभावसे यह पाठ जेठे को दिखाई दिया मालूम नहीं होता है । क्योंकि उत्सूत्र प्ररूपक शिरोमणि, कुमतिसरदार जेठा इस प्रश्नोत्तर के अंतमें "मांस के भोगी और मांस के दाता, दोनों की नरकगामी होते हैं, वैसे ही आधाकर्मीका भी जान लेना" इस तरह लिखता है । परंतु पूर्वोक्त पाठ में तो अप्राशूक अनेषणीय दाता को बहुत निर्जरा करनेवाला लिखा है, पृष्ट १८. पंक्ति १३. में जेठे ने अप्राशूक अनेषणीय का अर्थ आधाकर्मी लिखा है, परंतु आधाकर्मी तो अनेषणीय आहार के ४२. दूषणों में से एक दूषण है । क्या करे ? अकल ठिकाने न होने से यह बात जेठे की समझ में आई नहीं मालूम होती है ।

तथा ढूंढिये पाट, पातरे, थानक वगैरह प्रायः हमेशा आधाकर्मी ही वरतते हैं; क्योंकि इनके थानक प्रायः रिखों के वास्ते ही होते हैं । श्रावक उन में रहते नही है, पाट भी रिखों के वास्ते ही होते है । श्रावक उन पर सोते नहीं है और पातरे भी रिखों के वास्ते ही बनाने में आते हैं । क्योंकि श्रावक उनमें खाते नहीं है, तथा ढूंढिये अहीर, छींबे, कलाल, कुंभार, नाई, वगैरह जातियोंका प्रायः आहार ला के खाते हैं । सो भी दोषयुक्त आहार का ही भक्षण करते हैं, क्योंकि श्रावक लोग तो प्रसंग से दूषणों के जानकार प्रायः होते हैं । परंतु वे अज्ञानी तो इस बात को प्रायः स्वप्न में भी नहीं जानते हैं । इसवास्ते जेठे के दिये मांसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टांत मुजिब ढूंढियों के रिखों को और उन को आहार पानी वगैरह देने वालों को अनंता संसार परिभ्रमण करना पडेगा हाय ! अफसोस ! बिचारे अनजान लोक तुम्हारे जैसे कुपात्र को आहार पानी वगैरह दे, और उसमें पुण्य समझें, उनकी स्थिति तो उलटी अनंत संसार परिभ्रमण की होती है । तो उससे तो बेहतर है कि उन रिखों को अपने घर में आने ही न दे कि जिससे अनंत संसार परिभ्रमण करना न पडे ।

और **श्रीसूयगडांगसूत्र** के अध्ययन २१. में तथा **श्रीभगवतीसूत्र** के शतक ८. में रोगादि कारण में आधाकर्मी आहार की आज्ञा है, कारण विना नहीं, सो पाठ प्रथम लिख आए हैं । जेठे ढूंढक ने यह पाठ क्यों नहीं देखा ? भाव नेत्र तो नहीं थे, परंतु क्या द्रव्य भी नहीं थे ?

तथा **श्रीभगवतीसूत्र** में कहा है कि रेवती श्राविका ने प्रभु का दाहज्वर मिटाने निमित्त बीजोरापाक कराया, और घोडे के वास्ते कोलापाक कराया, प्रभु केवलज्ञान के धनी थे तो अपने वास्ते बनाया बीजोरापाक लेना निषेध किया और कोलापाक लाने की सिंह अणगार को आज्ञा करी, वो ले आया । और प्रभु ने रागद्वेष रहित अंगीकार कर लिया । परंतु बीजोरापाक प्रभु निमित्त बना के रेवती श्राविका भावे तो "करेमाणे करे" की अपेक्षा विहराय चुकी थी । तो उस ने कोई अल्प आयुष्य बांधा मालूम नहीं होता है, किंतु तीर्थंकर गोत्र बांधा मालूम होता है[१]

इस वास्ते श्रीजैनधर्मकी स्याद्वादशैली समझे विना एकांत पक्ष खेंचना यह सम्यग्दृष्टि जीवका लक्षण नहीं है ।

।। इति ।।

५. मुहपत्ती बांधने से संमूर्च्छिम जीव की हिंसा होती है इस बाबत :

पांचवें प्रश्नोत्तर में जेठेने "वायुकाय के जीव की रक्षा वास्ते मुहपत्ती मुंह को बांधनी" ऐसे लिखा है, परंतु यह लिखना ठीक नहीं है । क्योंकि मुंह से निकलते भाषा के पुद्गल से तो वायुकाय के जीव हने नहीं जाते हैं, और यदि मुख से निकले पवन से वे हने जाते हैं, तो तुम ढूंढिये काष्ठकी, पाषाण की, या लोहे की, चाहे कैसी मुंहपत्ती बांधों, तो भी वायुकायके जीव हने बिना रहेंगे नहीं । क्योंकि मुख का पवन बाहिर निकले विना रहता नहीं है । यदि मुख का पवन बाहिर न निकले, पीछा मुख में ही जावे तो आदमी मर जावे । इस वास्ते यह निश्चय समझना, कि मुंहपत्ती जो है सो त्रस जीव की यत्ना वास्ते है । सो जब काम पडे तब मुखवस्त्रि का मुख आगे दे के बोलना । **श्रीओघनिर्युक्ति** में कहा है यत -

संपाइमरयरेणुपमज्जणट्ठावयंति मुहपोत्तिं इत्यादि

अर्थ - संपातिम अर्थात् मांखी मछरादित्रस जीवों की रक्षा वास्ते जब बोले, तब

१ देखो **ठाणांगसूत्र** तथा **समवायांग** सूत्र ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुखवस्त्रिका मुख आगे दे कर बोले इत्यादि ।

तथा जेठे ने पूर्वोक्त अपने लेखको सिद्ध करने के वास्ते **श्रीभगवतीसूत्र** का पाठ तथा टीका लिखी है, सो निःकेवल झूठ है । क्योंकि **श्रीभगवतीसूत्र** के पाठ तथा टीका में वायुकाय का नाम भी नहीं है, तो फिर जेठमल मृषावादी ने वायुकाय का नाम कहां से निकाला ? तथा यह अधिकार तो शक्रेंद्र का है । और तुम ढूंढिये तो देवता को अधर्मी मानते हो, तो फिर उसकी निरवद्यभाषा धर्मरूप क्यों कर मानी ? जब देवता को तुमने धर्म करने वाला समझा, तो श्रीजिन प्रतिमा पूजने से देवता को मोक्षफल जो **श्रीरायपसेणीसूत्र** में कहा है, सो क्यों नहीं मानते ?

तथा ढूंढकों की तरह मुहपत्ती सारा दिन मुंह को बांध छोडनी किसी भी जैनशास्त्र में लिखी नहीं है । प्रथम तो सारा दिन मुहपाटी बांधनी कुलिंग है । देखने में दैत्य का रूप दीखता है, गौयां, भैसां, बालक, स्त्रियां प्रायः देख के डरते हैं, कुत्ते भौंकते है, लोग मश्करी करते हैं, ऐसा बेढंगा भेष देख के कई हिंदु, मुसलमान, फिरंगी, बडे बडे बुद्धिमान हैरान होते, और सोचते हैं कि यह क्या स्वांग है ? तात्पर्य जितनी जैनधर्म की निंदा जगत् में लोग प्रायः आजकल करते हैं, सो ढूंढकों ने मुखपाटी बांध के ही कराई है, तथा ढूंढकों ने मुंह के तो पाटी बांधी, परंतु नाक, कान, गुदा, इनके ऊपर पाटी क्यों नहीं बांधी ? इन द्वारा भी तो वायुकाय के जीव भाव से मरते होंगे ? तथा शास्त्र में लिखा है कि जो स्त्री हिंसा करती हो, उस के हाथ से साधु भिक्षा लेवे नहीं । तब तो ढूंढकों की जिन श्राविका ने मुख, नाक, कान गुदा के पाटी बांधी हो, उन के ही हाथ से ढूंढियों को भिक्षा लेनी चाहिये, क्योंकि ना बांधने से ढूंढिये हिंसा मानते है और मुख से निकले थूक के स्पर्श से दो घडी बाद सन्मूर्च्छिम जीव की उत्पत्तिशास्त्र में कही है । तब तो महा अज्ञानी ढूंढक मुंहपत्ती बांध के असंख्यात सन्मूर्च्छिम जीवों की हिंसा करते है; सो प्रत्यक्ष है ।

तथा **श्रीआचारांगसूत्र** के दूसरे श्रुतस्कंधके दूसरे अध्ययनके तीसरे उद्देशमें कहा है यतः

से भिक्खु वा भिक्खुणी वा ऊसासमाणे वा निसासमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जंभायमाणे वा उड्डए वा वायणिसग्गे वा करेमाणे वा पुव्वामेव आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ता ततो संजयामेव औसासेज्ञा जाव वायणिसग्गे वा करेज्ञा ।।

भावार्थ - उच्छ्वास निश्वास लेते, खांसी लेते, छींक लेते, उवासी लेते, डकार लेते, हुए साधुने हस्त से मुंह ढांकना । अब विचारो कि मुंह बांधा हुआ हो तो ढांकना क्या ? तथा जेठे ने लिखा है, कि "नाक ढांकना किसी भी जगह कहा नहीं है" तो मुख बांधना भी कहां कहा है, सो बताओ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा शास्त्र में मुंहपत्ती और रजोहरण त्रस जीव की यत्ना वास्ते कहे हैं, और तुम तो मुँहपत्ती वायुकाय की रक्षा वास्ते कहते हो तो क्या रजोहरण वायुकाय की हिंसा वास्ते रखते हो ? क्योंकि रजोहरण तो प्रायः सारा दिन वारंवार फिराना ही पडता है । प्रश्न के अंत में जेठा लिखता है कि "पुस्तक की आशातना टालने वास्ते मुंहपती कहते है, वे झुठ कहते हैं "जेठे का यह पूर्वोक्त लिखना असत्य है, क्योंकि खुले मुंह बोलने से पुस्तकों पर थूक पडने से आशातना होती है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है[१] । तथा जेठेने लिखा है कि "पुस्तक तो महावीर स्वामी के निर्वाण बाद लिखी गयी हैं तो पहिले तो कुछ पुस्तक की आशातना होती नहीं थी" यह लिखना भी जेठेका अज्ञानयुक्त है, क्योंकि अठारह लिपि तो श्रीऋषभदेव के समय से प्रगट हुई है तथा तुम्हारे किस शास्त्र में लिखा है कि महावीर के निर्वाण बाद अमुक संवत में पुस्तक लिखे गए हैं । और इससे पहिले कोई भी पुस्तक लिखी हुई नहीं थे ? और यदि इससे पहिले बिलकुल लिखत ही नहीं थी, तो **श्रीठाणांगसूत्र** में पांच प्रकार की पुस्तक लेने की साधु को मना की है, सो क्या बात है ? जरा आंखें मीट के सोच करो ।

॥ इति ॥

६. यात्रातीर्थ कहे हैं तद्विषयिक :

छट्ठे प्रश्नोत्तर में जेठे ने **भगवतीसूत्र** में से साधु की यात्रा जो लिखी है, सो ठीक है; क्योंकि साधु जब शत्रुंजय गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा करता है, तब तीर्थभूमि के देखने से तप, नियम, संयम, स्वाध्याय, ध्यानादि अधिक वृद्धिमान् होते हैं । **श्रीज्ञातासूत्र** तथा **अंतगडदशांगसूत्र** में कहा है कि-जाव सित्तुंजे सिद्धा-इस पाठ से सिद्ध है कि तीर्थभूमि का शुभ धर्म का निमित्त है । नहीं तो क्या अन्य जगह मुनियों को अनशन करने के वास्ते नहीं मिलती थी ?

तथा **श्रीआचारांगसूत्र** की निर्युक्ति में अनेक तीर्थों की यात्रा करना लिखा है[२] और निर्युक्ति माननी **श्रीसमवायांगसूत्र** तथा **श्रीनंदिसूत्र** के मूलपाठ में कही है, परंतु ढूंढिये निर्युक्ति मानते नहीं है, इस वास्ते यह महा मिथ्यादृष्टि अनंत संसारी हैं ।

१ पार्वती ढूंढकनी भी अपनी बनाई **ज्ञानदीपिका** में लिखती है कि पाठक लोगों को विदित हो कि इस परमोपकारी ग्रंथ को मुख के आगे वस्त्र रख कर अर्थात् मुख ढांक कर पढना चाहिये क्योंकि खुले मुख से बोलने में सूक्ष्म जीवों की हिंसा हो जाती है, और शास्त्र पर (पुस्तक पर) थूक पड जाती है ।

२ **श्रीआचारांगसूत्र** की निर्युक्ति का पाठ यह है यतः

दंसण णाण चरिते तव वेरग्गेय होइ पसत्था ।
जाय जहा ताय तहा लक्खण वोच्छं सलक्खणओ ॥४६॥
तित्थगराण भगवओ पवयण पावयणि अइसढ्ढीणं
अहिगमण णमण दरिसण कित्तणओ पूयणा थुणणा ॥४७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो प्रकार के तीर्थ शास्त्र में कहे हैं १. जंगमतीर्थ और २. स्थावरतीर्थ । जंगमतीर्थ साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका चतुर्विध संघ को कहते हैं और स्थावरतीर्थ

जम्माभिसेय णिक्खमण चरण णाणुप्पत्तीय णिव्वाणे ।
दियलोय भवणमंदर णंदीसर भोम णगरेसुं ।।४८।।
अट्ठावय मुज्जंते गयग्गपएय धम्मचक्केय ।
पास रहावत्तणयं चमइरुप्पायं च वंदामि ।।४९।।
गणियं णिमित्त जुत्ती संदिट्ठी अवितहं इमं णाणं ।
इय एगंत मुवगया गुणपञ्चइया इमे अत्था ।।५०।।
गुणमाहप्पं इसिणाम कित्तणं सुरणरिंद पूयाय ।
पोराण चेइयाणियइइ एसा दंसणे होइ ।।५१।।

भावार्थ-भावना दो प्रकार की है, प्रशस्त भावना और अप्रशस्त भावना; उनमें प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह तथा क्रोध, मान, माया और लोभ में अप्रशस्त भावना जाननी ।

यदुक्तं - "पाणवह मुसावाए अदत्तमेहुण परिग्गहे चेव ।
कोहेमाणे माया लोभेय हवंति अपसत्था ।।"

और दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, वैराग्यादिक मे प्रशस्तभावना जाननी उनमें प्रथम दर्शनभावना जिससे दर्शन (सम्यक्त्व)की शुद्धि होती है, उसका वर्णन शास्त्रकार करते हैं ।

तित्थगराण भगवओ इत्यादि -

तीर्थंकर भगवंत, प्रवचन, आचार्यादि युगप्रधान, अतिशय ऋद्धिमंत-केवलज्ञानी मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चौदहपूर्वधारी, तथा आमर्षौषध्यादि ऋद्धि वाले, इन के सन्मुख जाना, नमस्कार करना, दर्शन करना, गुणोत्कीर्त्तन करना, गंधादिक से पूजन करना, स्तोत्रादिक से स्तवन करना इत्यादि दर्शनभावना जाननी; निरंतर इस दर्शनभावना के भावनेसे दर्शनशुद्धि होती है, तथा तीर्थंकरों की जन्मभूमि में तथा निःक्रमण, दीक्षा, ज्ञानोत्पत्ति और निर्वाण भूमि में तथा देवलोक भवनों में मंदिर (मेरु पर्वत) ऊपर, तथा नंदीश्वर आदि द्वीपो में पाताल भवनों में जो शाश्वत चैत्य है, उनको मैं वंदना करता हूं तथा इसी तरह अष्टापद उज्जयंतगिरि (शत्रुंजय तथा गिरनार) जाग्रपद (दशार्णकूट) धर्मचक्र तक्षशिला नगरी में, तथा अहिच्छत्रा नगरी जहां धरणेन्द्रने श्रीपार्श्वनाथ स्वामी की महिमा की थी, रथावर्त्त पर्वत जहां श्रीवज्रस्वामीने पादपोपगमन अनशन किया था, और जहां श्रीमहावीरस्वामी की शरण लेकर चमरेन्द्रने उत्पतन किया था, इत्यादि स्थानों में यथा संभव अभिगमन, वंदन, पूजन, गुणोत्कीर्त्तनादि क्रिया करने से दर्शनशुद्धि होती है, तथा यह गणित विषय में बीजगणितादि (गणितानुयोग) का पारगामी है, अष्टांग निमित्त का पारगामी है, दृष्टिपातो नानाविध युक्ति द्रव्य संयोग का जानकार है, तथा इसको सम्यक्त्वसे देवता भी चलायमान नहीं कर सकते है । इसका ज्ञान यथार्थ हे जैसे कथन करे हैं वैसे ही होता है इत्यादि प्रकार प्रावचनिक यर्थात् आचार्यादिक की प्रशंसा करने से दर्शनशुद्धि होती है । इस तरह और भी आचार्यादि के गुण महात्म्य के वर्णन करने से, तथा पूर्व महर्षियों के नामोत्कीर्तन करने से, तथा सुरनरेन्द्रादिकी का उनकी पूजा का वर्णन करने से, तथा चिरंतन चैत्यों की पूजा करने से इत्यादि पूर्वोक्त क्रिया करने वाले जीव की तथा पूर्वोक्त क्रिया की वासना से वासित है अंतःकरण जिसका उस प्राणी की सम्यक्त्व शुद्धि होती है यह प्रशस्त दर्शन (सम्यक्त्व) सबंधी भावना जाननी, इति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीशत्रुंजय, गिरनार, आबु, अष्टापद, सम्मेतशिखर, मेरु पर्वत, मानुषोत्तर पर्वत, नंदीश्वरद्वीप, रुचकद्वीप वगैरह हैं । और उनकी यात्रा जंघाचारण विद्याचारणमुनि भी करते है, और तीर्थयात्रा का फल श्रीमहाकल्पादि शास्त्रों में लिखा है । परंतु जिसके हृदय की आंख न हो उसको कहां से दिखे और कौन दिखलावे ? जेठा लिखता है कि "पर्वत तो हट्टीसमान है । वहां हुंडी स्वीकारने वाला कोई नहीं है" वाह ! इस लेख से तो मालूम होता है कि अन्य मतावलंबी मिथ्यादृष्टियों की तरह जेठा भी अपने माने भगवान को फल प्रदाता मानता होगा ! अन्यथा ऐसा लेख कदापि न लिखता, जैनशास्त्र में तो लिखा है कि जहां जहां तीर्थंकरो के जन्मादि कल्पाणक हुए हैं सो सो भूमि श्रावक को परिणामशुद्धि का कारण होने से स्पर्शनी चाहिये-यदुक्तं ।

निक्खमण नाण निव्वाण जम्मभूमीओ वंदइ जिणाणं ।
न य वसई साहुजणविरहियम्मि देसे बहुगुणेवि ।।२३५।।

अर्थ - श्रावक जिनेश्वर संबंधी दीक्षा, ज्ञान, निर्वाण और जन्म कल्याणक की भूमि को वंदन करे; तथा साधु के विहार रहित देश में अन्य बहुत गुणों के होए भी वसे नहीं । यह गाथा श्रीमहावीरस्वामी के हस्त दीक्षित शिष्य श्रीधर्मदास गणि की कही हुई है ।

और जेठा लिखता है कि "संघ काढने में कुछ लाभ नहीं है, और संघ काढना किसी जगह कहा नहीं है"। इसके उत्तर में लिखते हैं, कि जैनशास्त्रों में तो संघ निकालना बहुत ठिकाने कहा है । पूर्वकाल में श्रीभरतचक्रवर्ती, दंडवीर्यराजा, सगर-चक्रवर्ती श्रीशांति जिनपुत्र चक्रायुध, रामचन्द्र तथा पांडवों वगैरहने और पांचवें आरे में भी जावडशाह, कुमारपाल, वस्तुपाल, तेजपाल, बाहडमंत्रि वगैरहने बडे आडंबर से संघ निकाल के तीर्थयात्रा की हैं । और सो कल्याणकारिणी शुद्ध परंपरा अब तक प्रवर्तती है । तीर्थयात्रा निमित्त संघ निकलते है, श्रीजैनशासन की प्रभावना होती है, शीशा आंखों वाले को उपयोगी होता है, आंधे को नहीं । पालणपुर और पाली में दही, छाछ, खा पी के तपस्वी नाम धारन करन हारे, ऋखों की यात्रा करने वास्ते हजारों आदमी चौमासे के दिनों में हरि सबजी निगोद वगैरह के अनंत जीवों की हानि करते गये थे । और अद्यापि पर्यंत बहुत ठिकाने लोग ढूंढिये और ढूंढनियों के दर्शनार्थ जाते हैं । तथा लींबडी में देवजी रिख को वंदना करने वास्ते कच्छ मांडवी से जानकीबाई संघ निकाल के आई थी । उस वक्त उसको छैणे बजाते हुए, गुलाल उडाते हुए, बडी धूमधाम से सामेला कर के नगर में ले आये थे । इस तरह कितने ही ढूंढिये श्रावक संघ निकाल निकाल के जाते है । इसमें तो तुम पुण्य मानते हो कि जिसकी गतिका भी कुछ ठिकाना नहीं (प्रायः तो दुर्गति ही होनी चाहिये) और श्रीवीतराग भगवान् तो निश्चय मोक्ष ही गये हैं । जिनका अधिकार शास्त्रों में ठिकाने ठिकाने है, उनका संघ वगैरह निकाल के यात्रा करने में पाप कहते हो सो तुम्हारा पाप कर्म का ही उदय मालूम होता है ।

।। इति ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. श्रीशत्रुंजय शाश्वता है :

सातवें प्रश्नोत्तर में जेठेने लिखा है कि "**जम्बूद्वीपपन्नत्ति सूत्र** में कहा है कि भरतखंड में वैताढ्य पर्वत और गंगासिन्धु नदी वर्जके सर्व छट्ठे आरे में विरला जायेंगे, तो शत्रुंजय तीर्थ शाश्वता किस तरह रहेगा" इस का उत्तर - यह पाठ तो उपलक्षण मात्र है क्योंकि गंगासिन्धु के कुंड, ऋषभकूट पर्वत (७२) बिल, गंगासिंधु की वेदिका प्रमुख रहेंगे वैसे शत्रुंजय भी रहेगा !

जेठा लिखता है कि "कि पर्वत नहीं रहेगा, ऋषभकूट रहेगा । वाह रे दिन में आंधे जेठे ! सूत्र में तो लिखा है **उसभकूड पव्वय** अर्थात् ऋषभकूट पर्वत ! और जेठा लिखता है, ऋषभकूट पर्वत नही ! वाह ! धन्य है ढूंढियो, तुम्हारी बुद्धि को !

और जो जेठे ने लिखा है "शाश्वती वस्तु घटती बढती नहीं है सो भी झूठ है । क्योंकि गंगासिंधु का पाट, भरतखंड की भूमिका, गंगासिंधु की वेदिका, लवण समुद्र का जल वगैरह बढते घटते हैं । परन्तु शाश्वते हैं । वैसे शत्रुंजय भी शाश्वता है । जरा मिथ्यात्व की नींद छोड के जागो और देखो ।

फिर जेठा लिखता है "सब जगह सिद्ध हुए हैं तो शत्रुंजय की क्या विशेषता है" इसका उत्तर -

तुम गुरु के चरणों की रज मस्तक को लगाते हो और सर्व जगत् की घूल (राख) तुम्हारे गुरु के चरणों से रज हो के लग चुकी है । इस वास्ते तुम्हारे मानने मुताबिक सर्व धूल खाक टोकरी भर भर के तुम को अपने सिर में डालनी चाहिये । क्यों नहीं डालते हो ? हम तो जिस जगह सिद्ध हुए हैं, और जिन के नामठाम जानते हैं, उनको तीर्थ रूप मानते हैं । और श्रीशत्रुंजय ऊपर सिद्ध होने के अधिकार **श्रीज्ञातासूत्र** तथा **अन्तगड दशांगसूत्रादि** अनेक जैनशास्त्रो में हैं ।

तथा **श्रीज्ञातासूत्र** में गिरनार और सम्मेतशिखर ऊपर सिद्ध होने के अधिकार हैं । इस चौबीस के बीस तीर्थंकर सम्मेतशिखर ऊपर मोक्ष पद को प्राप्त हुए हैं । श्री **जम्बूद्वीपपन्नत्ति** में श्रीऋषभदेवजी का अष्टापद ऊपर सिद्ध होने का अधिकार है । श्री वासुपूज्य स्वामी चंपानगरी में और श्रीमहावीर स्वामी पावापुरी में मोक्ष पधारे हैं इत्यादि सर्व भूमिका को हम तीर्थ रूप मानते हैं ।

तथा तुम भी जिस जगह जो मुनि सिद्ध हुअे हो उनके नाम वगैरह का कथन बताओ[१] हम उस जगह को तीर्थ रूप मानेंगे क्योंकि हम तो तीर्थ मानते हैं, नहीं मानने वाले को मिथ्यात्व लगता है ।

१ बिचारे कहां से बतावें जिन चौबीस तीर्थंकरो को मानते हैं, उनका ही सारा वर्णन इनके मानें बत्तीस शास्त्रो में नहीं है तो अन्य का तो क्या ही कहना ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. कयबलिकम्मा शब्दका अर्थ :

आठवें प्रश्नोत्तर में जेठेमूढमति ने '**कयबलिकम्मा**' शब्द जो देवपूजा का वाचक है, उसका अर्थ फिराने के वास्ते जैसे कोई आदमी समुद्र में गिरे बाद निकल ने को हाथपैर मारता है वैसे निष्फल हाथपैर मारे हैं और अनजान जीवों को अपने फंदे में फंसाने के वास्ते बिना प्रयोजन सूत्रों के पाठ लिख लिख कर कागज काले किये है । तथापि इससे इस की कुछ भी सिद्धि होती नहीं है, क्योंकि उस के लिखे ११. प्रश्नों के उत्तर नीचे मूताबिक हैं ।

प्रथम प्रश्न में लिखा है कि "भद्रा सार्थवाही ने बौडी में किस की प्रतिमा पूजी" इसका उत्तर-बौडी में ताक आला गोख वगैरह में अन्य देव की मूर्त्तियां होंगी । उस की पूजा की है, और बाहिर निकल के नाग भूतादि की पूजा की है; इस में कुछ भी विरोध नहीं है । आजकल भी अनेक बौडियों में ताक वगैरह में अन्य देवों की मूर्तियां वगैरह होती हैं । तथा वैष्णव ब्राह्मण वगैरह अन्यमतावलंबी स्नान कर के उसी ठिकाने खडे हो के अंजलि कर के देव को जल अर्पण करते हैं, सो बात प्रसिद्ध है, और यह भी बलि कर्म है ।

दूसरे तीसरे प्रश्न में लिखा है कि "अरिहंत ने किस की प्रतिमा पूजी" अरे मूढ ढूंढको ! नेत्र खोल के देखोगे, तो दिखेगा, कि सूत्रों में अरिहंत ने सिद्ध को नमस्कार किये का अधिकार है, और गृहस्थावस्था में तीर्थंकर सिद्ध की प्रतिमा पूजते है । इसी तरह यहां भी श्रीमल्लिनाथ स्वामी ने **कयबलिकम्मा** शब्द से सिद्ध की प्रतिमा की पूजा की है ।

४ - ५ - ६ - ७ में प्रश्न के अधिकार में लिखा है कि "मज्जन घर में किस की पूजा करी" इसका उत्तर - जहां मज्जन घर है वहां ही देव गृह है, और उस में रही देव की प्रतिमा पूजी है । देहरासर (मंदिर) दो प्रकार के होते हैं । घर देहरासर (घर चैत्यालय) और बडा मंदिर, उनमें द्रौपदी ने प्रथम घर चैत्यालय की पूजा कर के पीछे बडे मन्दिर में विशेष रीति से सत्रह प्रकार की पूजा की है । आजकल भी यही रीति प्रचलित है । बहुत श्रावक आपने घर देहरासर में पूजा कर के पीछे बडे मंदिर में वन्दना पूजा करने को जाते हैं । द्रौपदी के अधिकार में वस्त्र पहिनने की बाबत तो पीछे से लिखा है सो बडे मंदिर में जाने योग्य विशेष सुन्दर वस्त्र पहिने हैं । परन्तु " प्रथम वस्त्र पहिने ही नहीं थे, नग्न ही स्नान करने को बैठी थी" ऐसा जेठे ने कल्पना कर के सिद्ध किया है । सो ऐसी महा विवेकवती राजपुत्री को संभवे ही नहीं है । यह रूढि तो प्रायः आजकल की निर्विवेकिनी स्त्रियों में विशेषतः है[१] ।

१ कई विवेकवती स्त्रियां आजकल भी नग्नपणें स्नान नहीं करती हैं, विशेष कर के पूजा करन वाली स्त्रियों को तो इस बात का प्रायः जरूर ही ख्याल रखना पडता है; और **श्राद्ध विधि विवेक विलासादि** शास्त्रो में नग्नपणे स्नान करने की मनाई भी लिखी है । दक्षिणी लोकों की औरतें प्रायः कपडे सहित ही स्नान करती है, अधिक बेपडद होना तो प्रायः पंजाब देश में ही मालूम होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८ वें प्रश्न में लिखा है कि "लकडहारे ने किस की पूजा की" इस का उत्तर साफ है कि बन में अपना माननीय जो देव होगा उस की उस ने पूजा की ।

९ में प्रश्न में लिखा है कि "केशी गणधर ने परदेशी राजा को स्नान कर के बलिकर्म्म कर के देवपूजा करने को जावे, इस तरह कहा, तो वहां प्रथम किस की पूजा की" । इसका उत्तर - प्रथम अपने घर में (जैसे बहुते वैष्णव लोग अब भी देवसेवा रखते हैं वैसे) रखे हुए देव की पूजा कर के पीछे बाहिर निकल कर बडे देवस्थान में पूजा कर ने का कहा है ।

१०-११ में प्रश्न में "कोणिक राजा और भरत चक्रवर्त्ती के अधिकार में कयबलिकम्मा शब्द नहीं है तो उन्हों ने देवपूजा क्यों नहीं की"। इस का उत्तर-अरे देवानां प्रियो ! इतना तो समझो कि वन्दना निमित्त जाने की अति उत्सुकता के लिये उन्हों ने देवपूजा उस वक्त न की हो तो उस में क्या आश्चर्य है ? तथा इस तुम्हारे कथन से ही कयबलिकम्मा शब्द का अर्थ देवपूजा सिद्ध होता है । क्योंकि कयबलिकम्मा शब्द का अर्थ तुम ढूंढिये "पाणी की कुरलिंया करी" अैसा करते हो तो क्या स्नान करते हुए उन्हों ने कुरलिया न की होगी ? नहीं कुरलियां तो जरूर की होंगी, परन्तु पूर्वोक्त कारण से देवपूजा न की होगी । इसी वास्ते पूर्वोक्त अधिकार में कयबलिकम्मा शब्द शास्त्रकार ने नही लिखा है । इस तरह हर एक प्रश्न में कयबलिकम्मा शब्द का अर्थ देवपूजा ऐसा सिद्ध होता है । तथा टीका में और प्राचीन लिखत के टव्वे में भी कयबलिकम्मा शब्द का अर्थ देवपूजा ही लिखा है । तथा अन्य दृष्टान्तों से भी यही अर्थ सिद्ध होता है - यथा -

१. **श्रीरायपसेणी सूत्र में** सूर्याभ के अधिकार में जब सूर्याभ देवता पूजा कर के पीछे हटा तब बचा हुआ पूजा का सामान उस ने बलिपीठ ऊपर रक्खा । ऐसा सूत्र- पाठ है, उस जगह भी पूजोपहार की पीठिका, ऐसा अर्थ होता है ।

२. **यति प्रति-कमणसूत्र** (पगाम सिज्झाय)में **मंडि पाहुडियाए बलि पाहुडियाए** यह पाठ है, इस का अर्थ भिखारियों के वास्ते चप्पणी वगैरह में रखा हुआ अन्न साधु को नहीं लेना । तथा देव के आगे धराया नैवेद्य, अथवा उस के निमित्त निकला अन्न साधु को नहीं लेना ऐसे होता है ।

३. नाममाला वगैरह कोश ग्रन्थो में भी बलि शब्द का अर्थ पूजा कहा है - यत :

पूजार्हणा सपर्यार्चा उपहार बली समौ ।

४. **निशीथ चूर्णि** तथा **आवश्यक निर्युक्ति** में भी बलि शब्द से देव के आगे धरने का नैवैद्य कहा है ।

५. **वास्तुक शास्त्र** में तथा **ज्योतिः शास्त्र** में भी घर देवता की पूजा कर के भूतबलि दे के घर में प्रवेश करना कहा है - यत :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गृह-प्रवेशं सुविनीत-वेषः, सौम्यायने वासर-पूर्व-भागे ।
कुर्याद् विधायालय देवतार्चां, कल्याणधी र्भूतबलिक्रियां च ।।१।।

इस पाठ में भी बलि शब्द से नैवेद्य पूजा होती है ।

उपर लिखे दृष्टान्तों से 'कयबलिकम्मा' (कृत बलि कर्म्मा) शब्द का अर्थ देवपूजा सिद्ध होता है । परन्तु मूर्ख शिरोमणि जेठे ने कय बलिकम्मा अर्थात् `पाणी की कुरलियां करी' ऐसा अर्थ किया है सो महा मिथ्या है । तथा कय को उय मंगल अर्थात् "कौतुकमंगलिक पाणी की अंजलि भर के कुरलियां करी" ऐसा अर्थ किया है । सो भी महा मिथ्या है । किसी भी कोष में ऐसा अर्थ किया नहीं है और न कोई पंडित ऐसा अर्थ करता भी है । परन्तु महा मिथ्यादृष्टि ढूंढिये व्याकरण, कोष, काव्य, अलंकार, न्याय, आदि के ज्ञान बिना अर्थ का अनर्थ कर के उत्सूत्र प्ररूप के अनन्त संसारी होते हैं ।

तथा नाममाला में कौए को बलिभूक् कहा है, तो क्या ढूंढियों के कहने मुताबिक कौए पानी की कुरलियां खाते हैं ? या पीठी खाते हैं ? नहीं, ऐसे नहीं है, किन्तु वे देव के आगे धरी हुई वस्तु के खाने वाले है । इस वास्ते इसका नाम बलिभुक् है । और इस से भी बलिकम्मा शब्द का अर्थ देवपूजा सिद्ध होता है ।

तथा जेठे ने द्रौपदी के अधिकार में लिखा है कि "स्नान कर के पीछे बटणा मला" देखो कितनी मूर्खता ! स्नान कर के वटणा मलना, यह तो उचित ही नहीं, ऐसी कल्पना तो अज्ञ बालक भी नहीं कर सकता है; परन्तु जैसे कोई आदमी एक बार झूठ बोलता है, उसको उस झूठ के लोपने वास्ते बारंबार झूठ बोलना पडता है । वैसे केवल एक अर्थ के फिराने वास्ते जैसे मन में आया वैसे लिखते हुए जेठे ने संसार बंधनका जरा सा भी डर नहीं रखा ।

तथा जेठे ने लिखा है कि "सम्यग्दृष्टि अन्य देव को पूजते हैं" सो मिथ्या है, क्योंकि अन्य देव को श्रावक पूजते नहीं है, मिथ्यादृष्टि पूजते हैं । और जिस श्रावक ने गुरुमहाराज के मुखसे षट् आगार सम्यक्त्व उच्चारण करा हो, सो शासन देवता प्रमुख सम्यग्दृष्टि की भक्ति करता है, वह साधर्मी के संबंध कर के करता है; और वह अन्य देव नहीं कहाता है, और जो कोई सम्यग्दृष्टि किसी अन्य देव को मानेगा तो वह या तो सम्यग्दृष्टि ही देवता होगा या कोई उपद्रव करने वाला देवता होगा । और उस उपद्रव करने वाले देवता निमित्त श्रावककों **देवाभिओगेणं** यह आगार है । परंतु तुंगीया नगरी के श्रावकों को क्या कष्ट आ पडा था, जो उन्होंने अन्य देव की पूजा की ? जेठा कहता है "गोत्र देवता की पूजा की" सो यह किस पाठ का अर्थ है ? गोत्र देवता की किसी भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रावक ने पूजा की हो, तो सूत्रपाठ दिखाओ, मतलब यह कि जेठे ने तुंगीया नगरी के श्रावक ने घर के देव की पूजा की, इस विषय में जो कुतर्क किया हैं, सो सर्व उसकी मूढता की निशानी है । तुंगीया नगरी के श्रावक ने अपने घर में रहे जिनभवन में अरिहंतदेव की पूजा की । यह तो निःसंदेह है, **श्री उपासक दशांगसूत्र में** आनंद श्रावक के अधिकार में जैसा पाठ है, वैसा सर्व श्रावकों के वास्ते जानलेना । इस वास्ते मूढमति जेठे ने जो गोत्रदेवता की पूजा तो श्रावक के वास्ते सिद्ध की, और जिन-प्रतिमा की पूजा निषेध की, सो उसका महा मिथ्यादृष्टित्व का चिह्न है ।

।। इति ।।

९. सिद्धायतन शब्द का अर्थ :

नव में प्रश्नोत्तर में जेठे मूढमति ने `सिद्धायतन' शब्द के अर्थ को फिरा ने वास्ते अनेक युक्तियां की हैं, परंतु वे सर्व झूठी हैं क्योंकि `सिद्धायतन' यह गुण निष्पन्न नाम है । सिद्ध कहिये शाश्वती अरिहंत की प्रतिमा, उसका आयतन कहिये घर, सो सिद्धायतन । यह इसका यथार्थ अर्थ है । जेठे ने सिद्धायतन नामगुण निष्पन्न नहीं है, इसकी सिद्धि के वास्ते ऋषभदत्त और संजति राजा प्रमुख का दृष्टांत दिया है, कि जैसे यह नामगुण निष्पन्न मालूम नहीं होते हैं, वैसे सिद्धायतन भी गुण निष्पन्न नाम नहीं है । यह उसका लिखना असत्य है, क्योंकि शास्त्रकारो ने सिद्धांतो में वस्तु निरूपण जो नाम कहे हैं वे सर्व नाम गुण निष्पन्न ही हैं, यथा -

१. अरिहंत २. सिद्ध, ३. आचार्य, ४. उपाध्याय, ५. साधु, ६. सामायिक चारित्र, ७. छेदोपस्थापनीय चारित्र, ८. परिहार विशुद्धि चारित्र, ९. सूक्ष्मसंपराय चारित्र, १०. यथाख्यात चारित्र, ११. जंबूद्वीप, १२. लवणसमुद्र, १३. धातकीखंड, १४. कालोदधिसमुद्र, १५. धृतवरसमुद्र, १६. दधिवरसमुद्र, १७. क्षीरवरसमुद्र, १८. वारुणीसमुद्र, १९. श्रावक के बारह व्रत, ३१. श्रावक की एकादश पडिमा, ४२. एकादश अंग के नाम, ५३. बारह उपांग के नाम, ६५. चुल्लहिमवान् पर्वत, ६६. महाहिमवान् पर्वत, ६७. रूपीपर्वत, ६८. निषधपर्वत, ६९. नीलवंतपर्वत, ७०. नम्मुक्कार सहितं इत्यादि दश पच्चक्खाण, ८०. छैलेश्या, ८६. आठ कर्म इत्यादि वस्तुओंके नाम जैसे गुणनिष्पन्न है, वैसे सिद्धायतन भी गुणनिष्पन्न ही नाम है ।

दूसरे लौकिक नाम कथा निरूपणमें ऋषभदत्त, संजतिराजा आदि कहे हैं, वे गुणनिष्पन्न होवे भी और ना भी होवे, क्योंकि वे नाम तो उन के मातापिताके स्थापन किये हुए होते है ।

महापुरुष बाबत लिखा है सो वे महा पाप के करने वाले थे, इस वास्ते महापुरुष कहे हैं । उस में कुछ बाधा नहीं है, परंतु इस बात का ज्ञान जो जैनशैली के जानकार हो और अपेक्षा को समझने वाले हो, उनको होता है । जेठमल सरिखे मृषावादी और स्वमति कल्पना से लिखने वाले को नहीं होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुत्तर विमान के नाम गुण निष्पन्न ही हैं । और उनका द्वीप समुद्र के नामों साथ संबंध होने का कोई कारण नहीं है ।

श्रीअनुयोगद्वारसूत्र में कहे गुणनिष्पन्न नाम के भेद में सिद्धायतन नाम का समावेश होता है ।

भरतादि विजयों में मागध १ वरदाम २ और प्रभास ३ यह तीर्थ कहे हैं, सो तो लौकिक तीर्थ है । इनको मानने का सम्यग् दृष्टि को क्या कारण है ? अरे मूढ ढूंढियो ! कुछ तो विचार करो कि जैसे अन्यदर्शनियों में आचार्य, उपाध्याय, साधु, ब्रह्मचारी आदि कहते हैं; और शास्त्रकार भी उनको साधु कह कर बुलाता है, तो क्या इस से वे जैन दर्शन के साधु कहावेंगे ? और वे वंदना करने योग्य होंगे ? नहीं, वैसे ही मागधादि तीर्थ जान लेने ।

श्रीऋषभानन, १. चंद्रानन, २. वारिषेण, और ३. वर्द्धमान ४. यह चार ही नाम शाश्वती जिन प्रतिमा के हैं, क्योंकि प्रत्येक चौवीसी में पंद्रह क्षेत्रों में मिला के यह चार नाम जरूर ही पाये जाते हैं, इस वास्ते इस बाबत का जेठे का कथन जूठा है ।

तथा जेठा लिखता है कि "द्रौपदी के मंदिर में प्रतिमा थी तो उसको सिद्धायतन न कहा और जिन घर क्यों कहा"। उत्तर-अरे मूढ ! जिनगृह तो अरिहंत आश्रित नाम है, और सिद्धायतन सिद्ध आश्रित नाम है;[१] इसमें बाधा क्या है ?

फिर जेठा लिखता है "धर्मास्ति-अधर्मास्ति वगैरह अनादि सिद्ध के नाम कह कर उनको सिद्ध ठहरा के तुम वंदना क्यों नहीं करते हो" उत्तर-सिद्धायतन शब्द के अर्थ के साथ इनका कुछ भी संबंध नहीं है । तो उनको वंदना क्यों कर होगी ? कदापि ना होगी; परंतु तुम ढूंढिये **`नमो सिद्धाणं'** कहते हो तबतो तुम धर्मास्ति-अधर्मास्ति को ही नमस्कार करते होगे ! ऐसा तुम्हारे मत मुताबिक सिद्ध होता है ।

फिर जेठे ने लिखा है कि "अनंते काल की स्थिति है, और स्वयं सिद्ध, विना करे हुए, इस वास्ते सिद्धायतन कहिये" उत्तर - अनादिकाल की स्थितिवाली और स्वयंसिद्ध ऐसी तो अनेक वस्तु यथा विमान, नरकावास, पर्वत, द्वीप, समुद्र, क्षेत्र, इनको तो किसी जगह भी सिद्धायतन नहीं कहा है; इस वास्ते जेठे का लिखा अर्थ सर्वथा ही झूठा है । यदि ढूंढिये हृदय चक्षु को खोल के देखेंगे, तो मालूम हो जावेगा, कि केवल शाश्वती जिन प्रतिमा के भुवन को ही शास्त्रों में सिद्धायतन कहा हुआ है, और इसी वास्ते सिद्धायतन शब्द का जो अर्थ टीकाकारों ने किया है, सो सत्य है; और जेठे का किया अर्थ सत्य नहीं है ।

और जेठे ने लिखा है कि "वैताढ्य पर्वत के ऊपर के नव कूटों में से एक को ही सिद्धायतन कहा है, शेष आठ को नहीं; उसका कारण यह है कि शेष कूट देवदेवी

१ शाश्वती अशाश्वती जिन प्रतिमा आश्रित नामांतर भेद है परंतु प्रयोजन एक ही है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिष्ठित हैं, इस लिये इनके नाम और और कहे हैं; और इस कूट ऊपर कुछ नहीं है । इस वास्ते इसको सिद्धायतन कूट कहा है; "इसका उत्तर-अरे कुमतिओ ! बताओ तो सही, कहाँ कहा है कि दूसरे कूटों पर देवदेवियां हैं । और इस कूट ऊपर नहीं है, मनःकल्पित बाते बना के असत्य स्थापन करना चाहते हो; सो तो कभी भी होना नहीं है, परंतु ऊपर के लेख से तो सिद्धायतन नाम को पुष्टि मिलती है । क्योंकि जिस कूट के ऊपर सिद्धायतन होता है, उसी कूट को शास्त्रकार ने सिद्धायतन कूट कहा है ।

तथा **श्रीजीवाभिगमसूत्र** में सिद्धायतन को विस्तारपूर्वक अधिकार है, सो जरा ध्यान लगा कि पढोगे तो स्पष्ट मालूम हो जावेगा कि उसमें .१०८. शाश्वत जिनबिंब है, और अन्य भी छत्रधार चामरधार वगैरह बहुत देवताओं की मूर्तियां हैं । इस से यही निश्चित होता है कि सिद्ध प्रतिमा के भुवन को ही सिद्धायतन कहा है ।

तथा कई ढूंढिये सिद्धायतन में शाश्वती जिन प्रतिमा मानते हैं, और उस को सिद्धायतन ही कहते है । परंतु जेठे ने तो इस बात का भी सर्वथा निषेध किया है । इस से यही मालूम होता है कि बेशक जेठमल्ल महा भारी कर्मी था । इति ।

१०. गौतम स्वामी अष्टापद पर चढे. :

दशवें प्रश्न में जेठा कुमति लिखता है कि "भगवंत ने गौतमस्वामी को कहा कि तुम अष्टापद की यात्रा करो तो तुमको केवलज्ञान होगा" यह लिखना महा असत्य है शास्त्रों में तो ऐसे लिखा है कि "एकदा श्रीगौतमस्वामी भगवंत से जुदा किसी स्थान में गये थे, वहां से जब भगवंत के पास आए तब देवता परस्पर बातें करते थे कि भगवंत ने आज व्याख्यानावसर पर ऐसे कहा है 'कि जो भूचर अपनी लब्धि से श्रीअष्टापद पर्वत की यात्रा करे सो उसी भव में मुक्तिगामी होगा' यह बात सुन कर श्रीगौतमस्वामी ने अष्टापद जाने की भगवंत के पास आज्ञा मांगी । तब भगवंतने बहुत लाभका कारण जान कर आज्ञा दी । जब यात्रा कर के तापसों को प्रतिबोध के भगवंत के समीप आए तब (१५००) तापसों को केवलज्ञान प्राप्त हुआ जान कर श्रीगौतमस्वामी उदास हुए कि मुझे केवलज्ञान कब होगा ? तब श्रीभगवंत ने **द्रूमपत्रिका अध्ययन** तथा **श्रीभगवतीसूत्र** में **चिरसंसिट्ठोसि में गोयमा** इत्यादि पाठोक्त कह के गौतम को स्वस्थ किया" । यह अधिकार **श्रीआवश्यक, उत्तराध्ययन निर्युक्ति,** तथा **भगवतीवृत्ति** में कहा है । परंतु भाग्यहीन जेठे को कैसे दिखे ? कौए का स्वभाव ही होता है कि द्राक्षा को छोड कर गंदगी में चोंच देना । जेठा लिखता है कि "भगवंत ने पांच महाव्रत और पंचवीस भावनारूप धर्म श्रेणिक, कोणिक, शालिभद्र, आदि के आगे कहा है परंतु जिनमंदिर बनवाने का उपदेश दिया नहीं है"। यह लिखना मूर्खता का है । क्या इनके पास से मंदिर बनवाने का इनको ही उपदेश देना भगवंत का कोई जरूरी काम था ? तथापि उन के बनाये जिनमंदिरों का अधिकार सूत्रों में बहुत जगह है तथा हि -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीआवश्यकसूत्र तथा **योगशास्त्र** में श्रेणिकराजा के बनाये जिनमंदिरों का अधिकार है ।

श्रीमहानिशीथसूत्र में कहा है कि जिनमंदिर बनवाने वाला बारहवें देवलोक तक जाता है, यतः -

काउंपि जिणाययणेहिं, मंडियं सव्वमेयणीवट्टं ।
दाणाइचउक्केण, सद्ढो गच्छेज्ज अच्चुयं जाव न परं ।।

भावार्थ - जिनमंदिरों से पृथिवी पट्टको मंडित कर के और दानादिक चारों (दान, शील, तप, भावना) से श्रावक अच्युत (बारहवें) देवलोक तक जावे, इससे उपरांत न जावे ।

श्रीआवश्यकसूत्र में वग्गुर श्रावकने श्रीपुरिमतालनगर में श्रीमल्लिनाथजी का जिनमंदिर बनवा के बहुत परिवार सहित जिनपूजा की ऐसा अधिकार है, यतः -

तत्तीयपुरिमताले, वग्गुरइसाणअच्चएपडिमं ।
मल्लिजिणाययणपडिमा, अन्नाएवंसिबहुगोट्ठी ।

श्रीआवश्यक में भरतचक्रवर्त्ती के बनवाये जिनमंदिर का अधिकार है, यतः -

थुभसयभाउगाणं, चउवीसं चेव जिणघरे कासि ।
सव्वजिणाणं पडिमा, वण्ण-पमाणेहिं नियएहिं ।

भावार्थ - एकसौ भाई के एकसौ स्तूप और चौवीस तीर्थंकर के जिनमंदिर उस में सर्व तीर्थंकर की प्रतिमा अपने अपने वर्ण तथा शरीर के प्रमाणसहित भरतचक्रवर्त्ती ने श्रीअष्टापदपर्वत ऊपर बनाई ।

इसी सूत्र में उदायनराजा की प्रभावती रानी ने जिनमंदिर बनवाया और नाटकादि जिनपूजा की ऐसा अधिकार है, यत -

अंतेउरचेइयहरं कारियं प्रभावतिए ण्हाता तिसंझं अच्चेइ अन्नयादेवीणच्चइ राया वीणं वायेइ

भावार्थ - प्रभावती रानी ने अंतेपुर (अपने रहने के महल) में चैत्यघर अर्थात् जिनमंदिर कराया । प्रभावती रानी स्नान कर के प्रभात मध्याह्न सायंकाल तीन वक्त उस मंदिर में अर्चा (पूजा) करती है । एकदा रानी नृत्य करती है और राजा आप वीणा वजाता है ।

प्रथमानुयोग में अनेक श्रावक श्राविकाओं का जिनमंदिर बनाने का तथा पूजा करने का अधिकार है ।

इसी सूत्र में द्वारिका नगरी में श्रीजिनप्रतिमा पूजने का भी अधिकार है ।

शालिभद्र के घर में जिनमंदिर तथा रत्नों की प्रतिमा थीं और वह मंदिर शालिभद्र के पिता ने अनेक द्वारो से सुशोभित देव विमान कर के सदृश्य बनाया था ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"यतः **शालिभद्र चरित्रेः**

प्रधानानेकधारत्न-मयार्हद्बिम्बहेतवे ।

देवालयं च चक्रेऽसौ निजचैत्य-गृहोपमम् ।।५०।।

उपर मुताबिक कथन है तो क्या जेठे मूढमति ने शालिभद्र का चरित्र नहीं देखा होगा ? कदापि ढूंढिये कहें कि हम शालिभद्र का चरित्र नहीं मानते हैं[१] तो बत्तीससूत्र में शालिभद्र का अधिकार किसी जगह नहीं है । तथापि जेठे मूढमति ने शालिभद्र का अधिकार इस प्रश्न के चौथे प्रश्न में लिखा है तो क्या जेठे के बाप के पुस्तक में शालिभद्र का अधिकार है कि जिस में लिखा है कि शालिभद्र ने जिनमंदिर नहीं बनाया है ।

जेठा कुमति लिखता है कि "भगवंत ने श्रेणिक को कहा कि तू चार बोल करे तो नरक में न जावे । परंतु ऐसे नहीं कहा है कि जिनमंदिर बनाने, यात्रा करे तो नरक में न जावे" इस का उत्तर तीर्थंकरमहाराज की भक्ति बंदना कर, चौदह हजार साधुओं की भक्ति वंदना कर, जिससे तू नरक में न जावे, ऐसे भी तो भगवंत ने नहीं कहा है । अब विचारना चाहिये, कि भगवंत की तथा साधुओं की भक्ति वंदना नरक दूर करने समर्थ नहीं हुई, तो यात्रा करने से नरक दूर कैसे होगा ? इस वास्ते भगवंत ने यह कार्य नहीं कहा है ।

और जेठे मूढमति के लिखने मुताबिक तो भगवंत की तथा साधुओं की बंदना भक्ति से भी कुछ फल नहीं होता है, क्योंकि यह कार्य भी भगवंत ने श्रेणिक राजा को नहीं कहा है । तो अरे ढूंढियो ! मुंह बांध कर लोग्गस, नमुत्थुणं, नवकारमंत्र किस वास्ते पढते हो ? इस से कुछ तुम्हारे मत मुताबिक तुम्हारी (निश्चय हुई) नरकगति दूर होने वाली नहीं है ! तथा यह बात बत्तीससूत्रों में नहीं है, तथापि जेठे ने क्यों लिखी है ? क्योंकि अन्य सूत्रग्रंथ तथा प्रकरणादि को तो ढूंढिये मानते ही नहीं हैं ।

जेठमल ढूंढक लिखता है कि "सूर्यकिरण के पुद्गल हाथ में नहीं आते हैं तो उनको पकड कर गौतमस्वामी किस तरह चढे ? " उसको हम पूछते हैं कि जो जीव चलता है उसको धर्मास्तिकाय सहायता देते है, ऐसा जैनशास्त्रों में कहा है, तो क्या जीव धर्मास्तिकाय को पकड के चलता है ? नहीं, इसी तरह जंघाचारणादि लब्धि वाले सूर्यकिरणों की निश्राय अवलंबन कर के उत्पतते हैं, अर्थात् ऊर्ध्वगमन करते हैं । उसी तरह गौतमस्वामी भी अष्टापद पर्वत पर चढे हैं ।

और **श्रीभगवतीसूत्र** में तो जंघाचारण विद्याचारण दोनों का ही अधिकार है । परंतु उपलक्षण से अन्य भी बहुत से चारणमुनि जैनशास्त्रों में कहे हैं, उनके नाम-व्योमचारण, जलचारण, पुष्पचारण, श्रेणिचारण, अग्निशिखाचारण, धूम्रचारण,

१ बहुत से ढूंढिये शालिभद्र का अधिकार मानते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मर्कटतंतुचारण, चक्रमणज्योतिरश्मिचारण, वायुचारण, निहारचारण, मेघचारण, ओसचारण, फलचारण, इत्यादि इनमें तिर्यक् अथवा ऊर्ध्वगमन करने वास्ते धूम को आलंबन कर के जो अस्खलित गमन करे उन को धूमचारण कहते हैं ।

चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारादिक की तथा अन्य किसी भी ज्योतिः की किरणों का आश्रय करके गमनागमन करे उनको चक्रमण ज्योतिरश्मिचारण कहते हैं ।

सन्मुख अथवा पराङ्मुख जिस दिशा में वायु (पवन) जाता हो उस दिशा में उसी आकाश प्रदेश की श्रेणि को आश्रय कर के उस के साथ ही चले उन को वायुचारण कहते हैं ।

इसी तरह जंघाचारण सूर्य के किरणों की निश्राय कर के अवलंबन कर के उत्पतते हैं, **श्रीभगवतीसूत्र** के तीसरे शतक के पांचवें उद्देश में कहा है कि संघ के कार्य वास्ते साधुलब्धि फोरे तो प्रायश्चित्त नहीं लगता है, यत -

से जहा नामए केति पुरिसे असिचम्मपायग्गहाय गच्छेज्जा एवमेव अणगारोवि भाविअप्पा असिचम्मपाय हत्थकिच्चएणं अप्पाणेणं उढ्ढंवेहासं उप्पइज्जा ? हंता उप्पइज्जा ।।

अर्थ - जैसे कोई पुरुष असि (तलवार) और चर्मपात्र (ढाल) ग्रहण कर के जावे वैसे भावितात्मा अनगार असि चर्मपात्र हाथ में है जिसके ऐसा, संघादिक के कार्य वास्ते ऊर्ध्व आकाश में उत्पते जावे ? हां गौतम ! जावे ।

इस तरह भगवंत ने कहा है तथापि जेठा मतिहीन लिखता है कि लब्धि फोरने से सर्वत्र प्रायश्चित्त लगता है, इस वास्ते जेठे का लिखना सर्वथा झूठ है ।

इस प्रश्न के अंतमें १५०० तापसकेवली हुए हैं । इस बात को झूठी ठहराने वास्ते जेठमल लिखता है कि "महावीरस्वामी की तो सातसौ केवली की संपदा है और जो गौतमस्वामी के शिष्य कहोगे तो उसके भी सिद्धांत में जगह जगह पांचसौ शिष्य कहे हैं ।" उत्तर महावीरस्वामी के शिष्य सातसौ केवलीमोक्ष गये हैं सो सत्य है । परंतु गौतमस्वामी के शिष्य उनसे जुदा हैं, यह बात समझ में नहीं आई सो मिथ्यात्व का उदय है । और गौतमस्वामी के पांचसौ शिष्य सिद्धांत में जगह जगह कहे हैं ऐसे जेठमल ने लिखा है सो असत्य है । क्योंकि किसी भी सूत्र में गौतमस्वामी के पांचसौ शिष्य नहीं कहे हैं ।

और [१]**श्रीकल्पसूत्र** में गौतमस्वामी का जो पांचसौ शिष्य का परिवार कहा है सो तो दीक्षा समय का है परंतु ग्रंथो में ५०००० केवली की कुल संपदा गौतमस्वामी की वर्णन की है ।

१ कितनेक ढूंढिये कल्पसूत्र को वांचते हैं परंतु मानते नहीं है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. नमुत्थुणं के पिछले पाठ की बाबत :

जेठा मूढमति ११ वें प्रश्न में लिखता है कि, " नमुत्थुणं में अधिक पद डाले हैं " यह लिखना जेठमल का असत्य है, क्योंकि हमने नमुत्थुणं में कोई भी पद बढाया नहीं है, नमुत्थुणं तो भाव अरिहंत की स्तुति है, और जो अंत की गाथा है सो द्रव्य अरिहंत की स्तुति है । ढूंढिये द्रव्य अरिहंत को वंदना करनी निषेध करते हैं, क्योंकि ढूंढिये उन को असंजती समझते हैं । इस से मालूम होता है कि ढूंढियों की बुद्धि ही भ्रष्ट होई हुई है ।

श्रीनंदिसूत्र में २६ आचार्य जिनमें २४ स्वर्ग में देवता हुए हैं उनको नमस्कार किया है तो नमुत्थुणं के पिछले पाठ में क्या मिथ्या है ? यदि ढूंढिये इसी कारण से नंदिसूत्र को भी झूठा कहेंगे तो जरूर उन्होंने मिथ्यात्व रूप मदिरापान कर के झूठा बकवाद करना शुरू किया है ऐसे मालूम होवेगा । तथा अपने गुरु को जो मर गए हैं और जो जिनाज्ञा के उत्थापकनिन्हव होने से हमारी समझ मुताबिक तो नरक तिर्यंचादि गति में गये होगे । मूर्ख ढूंढिये उन को देवगति में गये समझ कर उनको वंदना क्यो करते हैं ? क्योंकि वह तो असंयती, अविरति, अपच्चक्खाणी हैं ! कदापि ढूंढिये कहें, कि हम तो गुरुपद को नमस्कार करते हैं, तो अरे मूढों, हमारी वंदना भी तो तीर्थंकर पद को ही है और सो सत्य है तथा इसीसे द्रव्य निक्षेपा भी बंदनीय सिद्ध होता है ।

श्रीआवश्यकसूत्र में नमुत्थुणं की पिछली गाथा सहित पाठ है, और उसी मुताबिक हम कहते हैं, इसवास्ते जेठेकुमति का लिखना बिलकुल मिथ्या है ।

प्रश्न के अंत में नमुत्थुणं इंद्रने कहा है, इस बाबत निःप्रयोजन लेख लिख कर जेठमल ने अपनी मूढता जाहिर की है ।

प्रश्न के अंतर्गत द्रव्य निक्षेपा वंदनीय नहीं है ऐसे जेठेने ठहराया है सो प्रत्यक्ष मिथ्या है क्योंकि **श्रीठाणांगसूत्र** के चौथे ठाणे में चार प्रकार के सत्य कहे हैं, यत -

चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते । नामसच्चे, ठवणा सच्चे, दव्वसच्चे, भावसच्चे ।।

अर्थ - चार प्रकार के सत्य कहे हैं: १. नामसत्य, २. स्थापनासत्य, ३. द्रव्यसत्य ४. भावसत्य । इस सूत्रपाठ में द्रव्यसत्य कहा है और इससे द्रव्य निक्षेपा सत्य है ऐसे सिद्ध होता है ।

जेठमल ने लिखा हे कि "आगामी काल के तीर्थंकर अब तक अविरति, अपच्चक्खाणों चारों गति में हो उनको वंदना कैसे हो ?" उत्तर - श्रीऋषभदेवजी के समय में आवश्यक में चउविसत्था था या नहीं ? यदि था, तो उसमें अन्य २३ तीर्थंकरोंको श्रीऋषभदेवजी के समय के साधु श्रावक नमस्कार करते थे कि नहीं ? ढूंढियों के कथनानुसार तो वह अन्य २३ तीर्थंकर वंदनीय नहीं है ऐसे ठहरता है और श्रीऋषभदेव भगवान के समय के साधु श्रावक तो चउविसत्था कहते थे और होने वाले २३ तीर्थंकरों को नमस्कार करते थे, यह प्रत्यक्ष है । इस वास्ते अरे मूढ ढूंढियो !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्रकार ने द्रव्य निक्षेपा वंदनीय कहा है इसमें कोई शक नहीं है । जरा अंतर्ध्यान हो कर विचार करो और कुमतजाल को तजो ।

१२. चारों निक्षेपसे अरिहंत वंदनीय है इस बाबत :

बारहवें प्रश्न की आदि में मूढ़मति जेठमल ने अरिहंत आचार्य और धर्म के ऊपर चार निक्षेपे उतारे हैं सो बिलकुल झूठे हैं, इस तरह शास्त्रों में किसी जगह भी नहीं उतारे हैं ।

और नाम अरिहंत की बाबत " ऋषभोशांतो नेमोवीरो" इत्यादि नाम लिख कर जेठे ने श्रीवीतराग भगवंत की महा अवज्ञा की है । सो उस की महा मूढ़ता की निशानी है और इसी वास्ते हमने उस को मूढ़मति का उपनाम दिया है ।

जेठमल ने लिखा है, कि " केवल भाव निक्षेपा ही वंदनीय है, अन्य तीन निक्षेप वंदनीय नहीं हैं" परंतु यह उस का लिखना सिद्धांतों से विपरीत है, क्योंकि सिद्धांतों में चारों निक्षेप वंदनीय कहा है ।

जेठे निन्हवने लिखा है कि " तीर्थंकरो के जो नाम हैं सो नाम संज्ञा हैं, नाम निक्षेपा नहीं, नाम निक्षेपा तो तीर्थंकरों के नाम जिस अन्य वस्तु में हो सो है ।" इस लेख से यही निश्चय होता है कि जेठे अज्ञानी को जैनशास्त्रो का किंचित मात्र भी बोध नहीं था । क्योंकि **श्रीअनुयोगद्धारसूत्र** में कहा है, यत -

जत्थ य जं जाणेज्जा, निक्खेवं निक्खिवे निरवसेसं ।

जत्थविय न जाणेज्जा, चउक्कयं निक्खिवे तत्थ ।।९।।

अर्थ - जहां जिस वस्तु में जितने निक्षेप जाने वहां उस वस्तु में उतने निक्षेप करे, और जिस वस्तु में अधिक निक्षेप नहीं जान सके तो उस वस्तु में चार निक्षेप तो अवश्य करे ।

अब विचारना चाहिये कि शास्त्रकार ने तो वस्तु में नाम निक्षेपा कहा है और जेठा मूढ़मति लिखता है कि जो वस्तु का नाम है सो नाम निक्षेपा नहीं, नाम संज्ञा है । तो इन मंदमति को इतनी भी समझ नहीं थी, कि नाम संज्ञा में और नाम निक्षेपे में कुछ फरक नहीं है ?

श्रीठाणांगसूत्र के चौथे ठाणे में नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव यह चार प्रकार की सत्यभाषा कही है जो प्रथम लिख आए है ।

श्रीठाणांगसूत्र के दश में ठाणे में दश प्रकार का सत्य कहा हैं तथा **श्रीपन्नवणाजीसूत्र** के भाषा पद में भी दश प्रकार के सत्य कहे हैं । उनमें स्थापना सच्च कहा है सो पाठ यह है ।

दसविहे सच्चे पण्णत्ते तंजहा । जणवय-सम्मय-ठवणा,-नामे-रूवे पडुच्चसच्चेय । ववहारभावजोए, दसमे उवम्मसच्चेय ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ - दश प्रकार के सत्य कहे हैं, तद्यथा । १. जनपदसत्य, २. सम्मतसत्य, ३. स्थापनासत्य, ४. नामसत्य, ५. रूपसत्य, ६. प्रतीतसत्य, ७. व्यवहारसत्य, ८. भावसत्य, ९. योगसत्य, और १०. दशवाँ उपमासत्य ।

इस सूत्र पाठ से स्थापना निक्षेपा सत्य और वंदनीय ठहरता है । तथा चौवीस जिन की स्तवना रूप लोगस्सका पाठ उच्चारण करते हुए ऋषभादि चौवीस प्रभु के नाम प्रकटपने कहते हैं और वंदना करते हैं सो वंदना नाम निक्षेप को है । तथा श्रीऋषभदेव भगवान् के समय में चौवीसत्था पढ़ते हुए अन्य २३ जिनको द्रव्य निक्षेप वंदना होती थी और काउसग्ग करने के आलावे में "**अरिहंत चेइयाणं करेमि काउसग्गं वंदणवत्तिआए**" इत्यादि पाठ पढते हुए स्थापना निक्षेपा वंदनीय सिद्ध होता है । और यह पाठ **श्रीआवश्यकसूत्र** में है । इस आलावे को ढूंढिये नहीं मानते है । इस वास्ते उन के मस्तक पर आज्ञाभंग रूप वज्रदंड का प्रहार होता है ।

श्रीभगवतीसूत्र की आदि में श्रीगणधरदेव ने ब्राह्मी लिपि को नमस्कार किया है सो जैसे ज्ञान का स्थापना निक्षेपा वंदनीय है वैसे ही श्रीतीर्थंकरदेव का स्थापना निक्षेपा भी वंदना करने योग्य है ।

तथा अरे ढूंढियो ! तुम जब '**लोगस्सउज्जोअगरे**' पढते हो तब "**अरिहंते कित्तइस्सं**" इस पाठ से चौवीस अरिहंत की कीर्तना करते हो, सो चौवीस अरिहंत तो इस वर्तमानकाल में नहीं है तो तुम वंदना किन को करते हो ? यदि तुम कहोगे कि जो चौवीस प्रभु मोक्ष में हैं उन की हम कीर्तना करते हैं तो वह अरिहंत तो अब सिद्ध हैं । इसवास्ते '**सिद्धे कित्तइस्सं**' कहना चाहिये । परंतु तुम ऐसे कहते नहीं हो ? कदापि कहोगे कि अतीत काल में जो चौवीस तीर्थंकर थे उन को वंदना करते हैं तो अतीत काल में जो वस्तु हो गई सो द्रव्य निक्षेपा है; और द्रव्यनिक्षेपे को तो तुम वंदनीय नहीं मानते हो । तो बतावो तुम वंदना किन को करते हो ? यदि ऐसे कहोगे कि अतीत कालमें जैसे अरिहंत थे वैसे अपने मन में कल्पना कर के वंदना करते हैं, तो वह स्थापना निक्षेपा है । और स्थापना निक्षेपा तो तुम मानते नहीं हो, तो बताओ तुम बंदना किन को करते हो ? अंत में इस बात का तात्पर्य इतना ही है कि ढूंढिये अज्ञान के उदय से और द्वेषबुद्धि से भाव निक्षेपे बिना अन्य निक्षेपे वंदनीय नहीं मानते हैं परंतु उन को वंदना जरूर करनी पड़ती हैं

और स्थापना अरिहंत को आनंद श्रावक, अंबड तापस, महासती द्रौपदी, वग्गुर श्रावक, तथा प्रभावती प्रमुख अनेक श्रावक श्राविकाओं ने और श्रीगौतमस्वामी, जंघाचारण, विद्याचारणादि अनेक मुनियों ने, तथा सूर्याभ, विजयादि अनेक देवताओं ने वंदना की है, उन के अधिकार सूत्रों में प्रसिद्ध हैं । **श्रीमहानिशीथसूत्र** में कहा है कि साधु प्रतिमा को वंदना न करे तो प्रायश्चित्त आवे । इस तरह नाम और स्थापना वंदनीय हैं, तो द्रव्य और भाव वंदनीय हैं इस में क्या आश्चर्य !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जेठमल लिखता है कि "कृष्ण तथा श्रेणिक को आगामी चौवीसी में तीर्थंकर होने का जब भगवंत ने कहा तब उन को द्रव्य जिन, जान कर किसी ने वंदना क्यों नहीं की ?" -यह लिखना बिलकुल विपरीत है । क्योंकि उस ठिकाने वंदना करने वा न करने का अधिकार नहीं है । तथापि जेठे ने स्वमति कल्पना से लिखा है, कि किसी ने वंदना नहीं की है तो बताओं ऐसे कहां लिखा है ?*

और मल्लिकुमारी स्त्री वेष में थी । इस वास्ते वंदनीय नहीं वैसे ही उसकी स्त्रीवेष की प्रतिमा भी वंदनीय नहीं तथा स्त्री तीर्थंकरी का होना आश्चर्य में गिना जाता है । इस वास्ते सो विध्यनुवाद में नहीं आ सकता है ।

* श्रीप्रथमानुयोगः शास्त्र जिसमें इतनी बातों का होना **श्रीसमवायांगसूत्र** तथा **श्रीनंदिसूत्र** में फरमाया है । तथा हि :-

से किं तं मूलढमाणुओगे एत्थणं अरहंताणं भगवंताणं पूव्वभवा देवलोगगमणाणि आउचवणाणि जम्मणाणिअ-अभिसेय-रायवरसिरीओ सीआओ पव्वज्जाओतवोयभत्ताकेवलणाणुप्पाओति-त्थपवत्तणाणिय संघयण संठाण उच्चत्त आउ वन्न विभागो सीसा गणा गणहरा अज्जा पवत्तणीओ संघस्स चउविहस्स जं वावि परिमाणं जिणामण पज्जव ओहिनाणि सम्मत्तसुयनाणिणोय वाई अणुत्तर गइय जत्तिया सिद्धा पावोवगओय जो जहिं जत्तियाइं भत्ताईं छेइत्ता अंतगडो मुणिवरुत्तमो तमरओघ विप्पमुक्का सिद्धि पह मणुत्तरं च पत्ता एए अन्नेय एवमाइया भावा मूल पढमाणुओगे कहिआ आद्य विज्जंति पण्णविज्जंति से तं मूलपढमाणुओगे

भावार्थ -

मूलपढमानुयोग में अरिहंत भगवंत के पूर्वभव देव लोक गमन आउखाच्यवन जन्म अभिषेक राज्य लक्ष्मी दीक्षा की पाल की दीक्षा तप केवलज्ञान तीर्थ की प्रवृत्ति संघयण संठाण ऊंचाई आउखा वर्ण शिष्य गच्छ गणधर आर्या बडी साध्वी चार प्रकार के संघ का आचारविचार केवली मनःपर्यंत ज्ञानी अवधि ज्ञानी मति ज्ञानि श्रुत ज्ञानी वादी अनुत्तर विमान में जाने वाले जितने साधु, जितने साधु कर्म्म क्षय कर के मोक्ष गये, पादपोपगमन अनशन का अधिकार जो जहां जितने भक्त कर के अन्तकृत् केवली हुए मुनिवर उत्तम अज्ञान रज रहित प्रधान मोक्षमार्ग को प्राप्त हुए इत्यादि और भी बहुत भाव मूल प्रथमानुयोगशास्त्र में कहे हैं । उसमें तथा **त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्रादि** शास्त्रों में लिखा है कि : "एकदा भरतचक्रवर्ती ने श्री ऋषभदेव को पूछा कि है भगवन् ! इस समवसरण में कोई ऐसा भी जीव है, जो कि इस अवसर्पिणी में तीर्थंकर होगा तब भगवन्त ने कहा कि हे भरत ! तेरे पुत्र मरिचि का जीव इस भरतक्षेत्र में त्रिपृष्ठ नामा प्रथम वासुदेव होगा । मूका राजधानी में चक्रवर्त्ती होगा, और इसी भरतक्षेत्र में इसी अवसर्पिणी में महावीर नामा चौवीसवाँ तीर्थंकर होगा । यह सुन कर भगवन्त को नमस्कार करके मरिचि के पास जा कर कहा कि हे मरिचि मैं तेरे वासुदेवपने को नमस्कर नहीं करता हूं, चक्रवर्त्तीपने को नमस्कार नहीं करता हूं, परन्तु तू इस अवसर्पिणी में महावीर नामा चौबीसवाँ तीर्थंकर होगा । में तेरी उस अवस्था को नमस्कार करता हूं । ऐसे कह कर मरिचि को तीन प्रदक्षिणापूर्वक भरत चक्री ने नमस्कार किया । अनेक ढूंढिये यह बात मानते हैं, और पर्षदा में सुनाते भी हैं । तथापि यदि ढूँढिये यह बात नहीं मानते हैं, तो हम उन से पूछते हैं कि बताओ श्रीमहावीरस्वामी के जीवने किस जगह किस समय किस कारण से ऐसा कर्म उपार्जन किया कि जिस के प्रभाव से श्रीमहावीरस्वामी के भव में ब्राह्मणी की कूख में पैदा होना पडा ? जब ऐसे २ प्रत्यक्ष पाठ हैं तो फिर मंद मति जेठे के लिखने से द्रव्य निक्षेपा वंदनीय नहीं है ऐसे मानने वालों को महा मिथ्या दृष्टि कहने में क्या कुछ अत्युक्ति है ? नहीं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा जेठे ने भद्रिक जीवों को भुलाने वास्ते लिखा है, कि " श्री समवायांगसूत्र में वर्तमान चौवीस जिन के नाम कहे हैं, वहां वंदे शब्द कहा है । क्योंकि वे भाव निक्षेपे वंदनीय हैं, और अनागत चौवीस जिन के नाम कहे हैं, वहां वंदे शब्द कहा नहीं है । क्योंकि वे द्रव्य निक्षेपे हैं । इस वास्ते वंदनीय नहीं है" यह लिखना बिलकुल झूठा है । क्योंकि **श्रीसमवायांगसूत्र** में वर्तमान तथा अनागत दोनों ही चौबीस जिन के नामों मे वंदे शब्द नहीं है । तथा जेठे मूढ़ने इतना भी विचार नहीं किया है कि कदापि वर्तमान चौबीस जिन के नाम में वंदे शब्द हो, तो भी उस से तो नाम निक्षेपे को वंदना है; परंतु भाव निक्षेपा तो वहां है ही कहां ?

तथा गांगेय अनगार की बाबत जेठेने जो लिखा है, सो भी उस की नय निक्षेपे की अज्ञता का सूचक है, क्योंकि गांगेय अनगार ने भाव अरिहंत की शंका होने से पहिले वंदना नहीं की और परीक्षा कर के शंका दूर हो गई तब वंदना की । इस से तुम्हारा पंथ क्या सिद्ध होता है ? क्योंकि वहां तो द्रव्य निक्षेपे को वंदना करने का कुछ कारण ही नहीं है ।

तथा जेठे ने लिखा है, कि " श्रीतीर्थंकर देव गृहवास में वंदनीय नहीं हैं" यह लिखना भी जेठे का जैनशास्त्रों की अनभिज्ञता का सूचक है । क्योंकि प्रभु को गर्भवास से ले के इंद्रने वारंवार नमस्कार किया । ऐसा अधिकारसूत्रों में ठिकाने ठिकाने आता है, और शास्त्रकारों ने देवताओं को महाविवेकी गिना है । **श्रीदशवैकालिकसूत्र** की प्रथम गाथा में ही लिखा है कि –

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो ।
देवावि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो ।।१।।

इस गाथा में ऐसे कहा है कि जिस का मन सदा धर्म में वर्तता है, उस को देवता भी नमस्कार करते हैं । अपि शब्द कर के यह सूचना की है, कि मनुष्य करे इस में तो कहना ही क्या ? इस लेख के अनुसार मनुष्य से अधिक विवेकी देवता ठहरते हैं । इस वास्ते देवताओं के स्वामी इंद्र ने गर्भवास से ले के नमस्कार किया है, तो मनुष्य को करने योग्य है इस में क्या आश्चर्य[१] ?

तथा जेठा लिखता है कि " जमाली को तथा गोशाला आदि को जिन मार्ग के प्रत्यनीक जान के उन के शिष्य उन को छोड के भगवंत के पास आए, परंतु किसी ने भी उन को द्रव्यगुरु जानके नमस्कार नहीं किया । इस वास्ते द्रव्य निक्षेपा वंदनीय नहीं है" उत्तर –

वाह रे अकल के दुश्मन ! तुम को इतना भी ज्ञान नहीं है, कि जिसका भाव

१ **प्रद्युम्नकुमारचरित्र** में नारदजी ने श्रीनेमनाथ भगवान को गृहवास में नमस्कार करने का अधिकार आता है, परंतु गृहवास में तीर्थंकर को कोई भी नमस्कार नहीं करता है यह पाठ किस ढूंढक पुराण का है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निक्षेपा शुद्ध है, उस का नाम, स्थापना, तथा द्रव्य वंदने पूजने योग्य हैं । परंतु जिस का भाव अशुद्ध है उस का नाम, स्थापना तथा द्रव्य निक्षेपा भी अशुद्ध है । इस वास्ते सो वंदने पूजने योग्य नहीं है । और इसी वास्ते जमाली गोशाला आदि वंदनीय नहीं है । क्योंकि उन का भाव निक्षेपा अशुद्ध है । जैसे तुम ढूंढिये जैन साधु का नाम धराते हो और थोडा सा जैन साधु के सदृश उपकरणादि वेष रखते हो, परंतु शुद्ध परंपरा वाले सम्यग्दृष्टि श्रावक तुमको मानते नहीं है । वैसे ही जमाली गोशाला आदि का भी जान लेना । तथा तुम्हारे कुपंथ में भी जो फंसे हुए है, जब उन को यथार्थ शुद्ध जैनधर्म का ज्ञान होता है, उसी समय जमाली के शिष्यों कि तरह तुम को छोड के शुद्ध जैन मार्ग को अंगीकार कर लेते हैं, और फिर वह तुम्हारे सन्मुख देखना भी पसंद नहीं करते हैं ।

फिर जेठा लिखता है, कि " जैसे मरे भरतार की प्रतिमा से स्त्री की कुछ भी गरज नहीं सरती है, वैसे जिन प्रतिमा से भी कुछ गरज नहीं सरती है । इस वास्ते स्थापना निक्षेपा वंदनीय नहीं है" इस का उत्तर - जिस स्त्री का भरतार मर गया हो, वह स्त्री यदि आसन बिछा कर अपने पति का नाम ले तो क्या उसकी भोग वा पुत्रोत्पत्ति आदि की गरज सरे ? कदापि नहीं, तब तो तुम ढूंढकों को चौबीस तीर्थंकरों का जाप भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस से तुम्हारे मत मुताबिक तुम्हारी कुछ भी गरज नहीं सरेगी । वाह रे जेठे मूढमते ! तूने तो अपने ही आप अपने पग में कुहाडा मारा इतना ही नहीं परंतु तेरा दिया दृष्टांत जिन प्रतिमा को लगता ही नहीं है ।

फिर जेठमलजी कहते हैं, कि " अजीव रूप स्थापना से क्या फायदा होवे ? " उत्तर - जैसे संयम के साधन वस्त्र पात्रादिक अजीव हैं, परंतु उस से चारित्र साधा जाता है । वैसे ही जिन प्रतिमा की स्थापना ज्ञानशुद्धि तथा दर्शनशुद्धि आदिका हेतु है । जिसका अनुभव सम्यग्दृष्टि जीवों को प्रत्यक्ष है, तथा जैनशास्त्रों में कहा है कि लड़के रास्ते में लकडी का घोडा बना के खेलते हो, वहाँ साधु जा निकलें तो "तेरा घोडा हटा ले" ऐसे उस को घोडा कहे, परंतु लकडी ना कहे । यदि लकडी कहे तो साधु को असत्य लगे, इस बात को प्रायः ढूंढिये भी मानते हैं तो विचारना चाहिये कि इस में घोडापन क्या है ? परन्तु घोडे की स्थापना की है; तो उसको घोडा ही कहना चाहिये, इस वास्ते स्थापना सत्य समझनी । तथा तुम ढूंढिये खंड के कुत्ते, गौ, भैंस, बैल, हाथी, घोडे, सुअर, आदमी, वगैरह खिलोने खाते नहीं हो, उनमें जीवपना तो कुछ भी नहीं है, परंतु जीवपने की स्थापना है, इस वास्ते खाने योग्य नहीं है । [१]क्योंकि इस से पंचेंद्री जीव की घात

१ कितनेक अज्ञानी ढूंढिये जिन प्रतिमा के द्वेष से आजकल इस बात को भी मानने से इनकारी होते हैं, यथा जिला लाहौर मुकाम माझा पट्टी में सिरीचंद नामा ढूंढक साधु को एक मुगल ने पूछा कि आप कुत्ते, गौ, भैंस, बैल, वगैरह खंड के खिलौने खाते हैं ? जवाब मिला कि बडी खुशी से वाह ! अफसोस. !!!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जितना पाप लगता है, ऐसे तुम कहते हो । तो इस कथनानुसार तुम्हारे मानने मुताबिक ही स्थापना निक्षेपा सिद्ध होता है । तथा **श्री समवायांगसूत्र, दशाश्रुतस्कंधसूत्र, दशवैकालिकादि** अनेक सूत्रों में तैंतीस आशातना में गुरु संबंधी पाट, पीठ, संथारा आदि को पैर लग जावे, तो गुरु की आशातना होवे, ऐसे कहा है । इस पाठ से भी स्थापना निक्षेपा वंदनीय सिद्ध होता है, क्योंकि यह वस्तु भी तो अजीव है । जैसे पूर्वोक्त वस्तुओं में गुरु की स्थापना होने से अविनय करने से शिष्य को आशातना लगती है, और विनय करने से शिष्य को शुभफल होता है । ऐसे ही श्रीजिन प्रतिमा की स्थापना से भी जान लेना । तथा देवताओं ने प्रभु की वंदना पूजा की उस को जीत आचार में गिन के उससे देवता को कुछ भी पुण्य बंध नहीं होता है ऐसा सिद्ध किया है, परंतु अरे मूर्ख शिरोमणि ढूंढको ! जीत आचार किस को कहते है ? सो भी तुम समझते नहीं हो, और कुछ भी न बन आवे तो इतना तो अवश्यमेव करना । उस का नाम " जीत आचार" जैसे श्रावकों का जीत आचार है कि मदिरा का पान नहीं करना, दो वक्त प्रतिक्रमण करना वगैरह अवश्यकरणीय है । तो उस से पुण्य बंध नहीं होता है, ऐसे किस शास्त्रामें है ? इस से तो अधिक पुण्य का बंध होता है । यह बात निःसंशय है । तथा **श्रीजंबूद्वीपपन्नत्ति** में तीर्थ कर के जन्ममहोत्सव करने को इंद्रादिक देवता आए हैं, वहां अकेला जीत शब्द नहीं है, किंतु वंदना, पूजना, भक्ति, धर्मादि को जानके आए लिखा है । और **उववाइसूत्र** में जब भगवान् चंपानगरी में पधारे थे वहां भी इसी तरह का पाठ है । परंतु जेठे मूढमति को दृष्टिदोष से यह पाठ दिखा मालूम नहीं होता है ।

तथा मूर्ख शिरोमणि जेठा लिखता है, कि " बनिये लोग अपना कुलाचार समझ के मांसभक्षण नहीं करते हैं । इस वास्ते उन को पुण्य बंध नहीं होता है ।" इस लेख से जेठे ने अपनी कैसी मूर्खता दिखलाई है सो थोडे से थोडी बुद्धि वाले को भी समझ में आ जावे ऐसी है । अरे ढूंढियों ! तुम्हारे मन से तुम को उस वस्तु के त्याग ने से पुण्य का बंध नहीं होता होगा, परंतु हम तो ऐसे समझते हैं कि जितने सुमार्ग और पुण्य के रास्ते है, वे सर्व धर्मशास्त्रानुसार ही हैं । इस वास्ते धर्मशास्त्रानुसार ही मांसमदिरा के भक्षण में पाप है, यह स्पष्ट मालूम होता है । और इस वास्ते सर्व श्रावक उनका त्याग करते हैं, और पूर्वोक्त अभक्ष्य वस्तु के त्यागने से महा पुण्य बांधते हैं ।

तथा **नमुत्थुणं** कहने से इंद्र तथा देवताओंने पुण्य का बंध किया है यह बात भी निःसंशय है-

तथा इंद्र ने भी थूभ करा के महा पुण्य उपार्जन किया है, और अन्य श्रावकों ने तथा राजाओं ने भी जिनमंदिर कराये हैं, और उस से सुगतिप्राप्त करी है; जिस का वर्णन प्रथम लिख चूके हैं । फिर जेठा लिखता है कि " जिन प्रतिमा देख के शुभ ध्यान पैदा होता है, तो मल्लिनाथजी को तथा उन की स्त्रीरूप की प्रतिमा को देख के राजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कामातुर क्यों हुए ? इस वास्ते स्थापना निक्षेपा वंदनीय नहीं" उत्तर - महासती रूपवंती साध्वी को देख के कितने ही दुष्ट पुरुषों के हृदय में कामविकार उत्पन्न होता है, तो इस से जेठे की श्रद्धा के अनुसार तो साध्वी भी वंदनीय न ठहरेगी ? तथा रूपवान् साधु को देख के कितनीक स्त्रियों का मन आसक्त हो जाता है बलभद्रादिमुनिवत्, तो फिर जेठे के माने मुताबिक तो साधु भी वंदनीय न ठहरेगा ? और भगवान् ने तो साधुसाध्वी को वंदना नमस्कार करना श्रावक श्राविकाओं को फरमाया है; इस वास्ते पूर्वोक्त लेख से जेठा जिनाज्ञा का उत्थापक सिद्ध होता है । परंतु इस बात में समझने का तो इतना ही है कि जिन दुष्ट पुरुषों को साध्वी को देख के तथा जिन दुष्ट स्त्रियों को साधु को देख के काम उत्पन्न होता है, सो उन को मोहनी कर्म का उदय और खोटी गति का बंधन है । परंतु इस से कुछ साधु, साध्वी अवंदनीय सिद्ध नहीं होते हैं, वैसे ही मल्लिनाथजी को तथा उन की स्त्रीरूप की प्रतिमा को देख के ६ राजा कामातुर हुए, सो उन को मोहनी कर्म का उदय है । परंतु इस से कुछ द्रव्य निक्षेपा तथा स्थापना निक्षेपा अवंदनीय सिद्ध नहीं होता है । तथा अनार्य लोगों को प्रतिमा देख के शुभ ध्यान क्यों नहीं होता है ? ऐसे जेठे ने लिखा है, परंतु उसका कारण तो यह है कि उसने प्रतिमा को अपने शुद्ध देवरूप से जानी नहीं है । यदि जान ले तो उनको शुभ ध्यान पैदा हो, और वे आशातना भी करे नहीं साधुवत् । तथा **श्रीउववाइसूत्रमें**[१] कहा है कि -

तं महाफलं खलु अरिहंताणं भगवंताणं नाम गोयस्सवि सवणयाए ।।

अर्थ - अरिहंत भगवंत के नाम गोत्र के भी सुनने से निश्चय महाफल होता है इत्यादि सूत्रपाठ से भी नाम निक्षेपा महाफलदायक सिद्ध होता है ।

अरे ढूंढको ! ऊपर लिखी बातों को ध्यान देकर पढोगे, और विचार करोगे तो स्पष्ट मालूम हो जावेगा कि चारों ही निक्षेपे वंदनीय है; इस वास्ते जेठमल जैसे कुमतियों के फंदेमें न फंस के शुद्ध मार्ग को पहचान के अंगीकार करो, जिससे तुम्हारी आत्मा का कल्याण होगा ।

।। इति ।।

१३. नमूना देख के नाम याद आता है :

जेठा मूढमति तेरहवें प्रश्नोत्तर में लिखता है कि " भगवंत की प्रतिमा को देख के भगवान् याद आते है । इस वास्ते तुम जिनप्रतिमा को पूजते हो तो करकंडु आदि बैल प्रमुख को देख के प्रतिबोध हुए है, तो उन बैल आदि को वंदनीय क्यों नहीं मानते हो ?" उसका उत्तर - अरे ढूंढको ! हम जिसके भाव निक्षेपे को वांदते पूजते हैं, उस के ही नामादि को पूजते है; और शास्त्रकारों ने भी ऐसे ही कहा है । हम भाव बैलादि को पूजते नहीं है; और न पूजने योग्य मानते हैं । इसी वास्ते उन के नामादि को भी नहीं

१ **श्री रायपसेणीसूत्र** तथा **श्रीभगवतीसूत्र** में भी ऐसे ही कहा है ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूजते हैं; परंतु तुम्हारे माने बत्तीस सूत्रों में तो करकंडु, दुमुख, नमिराजा, और नगई राजा, क्या क्या देख के प्रतिबोध हुआ; सो है नहीं और अन्य सूत्र तथा ग्रंथों को तो तुम मानते नहीं हो तो यह अधिकार कहां से ला के जेठे ने लिखा है सो दिखाओ ?

तथा जेठा लिखता है, कि " सूत्रों में चंपा प्रमुख नगरियों की सर्व वस्तुओं का वर्णन किया, परंतु जिनमंदिर का वर्णन क्यो नहीं किया ? यदि होता तो करते, इस वास्ते उस वक्त जिनमंदिर थे ही नहीं" उस का उत्तर-**श्रीउववाइसूत्र** में लिखा है कि चंपानगरीमें "**बहुला अरिहंत चेइआइं**" अर्थात् चंपानगरी में बहुत अरिहंत के मंदिर हैं । तथा **श्रीसमवायांगसूत्र** में आनंदादिक दशश्रावकों के जिनमंदिर कहे हैं, और आनंदादिने वांदे पूजे हैं इत्यादि अनेक सूत्रपाठ हैं । तथापि मिथ्यात्व के उदय से जेठे को दीखा नहीं है तो हम क्या करें ?

फिर जेठा लिखता है "आज कल प्रतिमा को वंदने वास्ते संघ निकालते हो तो साक्षात् भगवंत को वंदने वास्ते किसी श्रावक ने संघ क्यों नहीं निकाला" ? उस का उत्तर - भगवंत को वंदना करने पूजा करने को इकट्ठे हो कर जाना उस का नाम संघ है, सो जब भगवंत विचरते थे तब जहां जहां समवसरे थे, वहां वहां उस उस नगर के राजा, राजपुत्र, सेठ, सार्थवाह आदि बडे आंडबर से चतुरंगिणी सेना सज के प्रभु को वंदना करने वास्ते आये थे । सो भी संघ ही है जिनके अनेक दृष्टांत सिद्धांतों में प्रसिद्ध हैं तथा भगवंत श्रीमहावीरस्वामी पावापुरी में पधारे तब नव मलेच्छी जाति के और नवलेच्छी जाति के एवं अठारह देश के राजा इकट्ठे हो कर प्रभु को वंदना करने वास्ते आये हैं उन को भी संघ ही कहते हैं । परंतु जेठे को संघ शब्द के अर्थ की भी खबर नही मालूम देती है । तथा प्रभु जंगम तीर्थ थे, ग्रामानुग्राम विहार करते थे, एक ठिकाने स्थायी रहना नहीं था । इस से उन को दूर वंदना करने वास्ते विशेषतः न गये हो तो इस में क्या विरोध है ?

और चौथे आरे में भी स्थावरतीर्थ को वंदना करने वास्ते बडे २ संघ निकालके बडे आडंबर से भरत चक्रवर्त्ती आदि गये हैं । वैसे आजकल भी सम्यग्दृष्टि जीव संघ निकाल के यात्रा के वास्ते जाते हैं, सो प्रथम लिख आये हैं ।

फिर जेठमल लिखता है " सिद्धांतों में स्थविर भगवंत को वीतराग समान कहा है, परंतु प्रतिमाको वीतराग समान नहीं कहा है ।" उसका उत्तर - **श्रीरायपसेणीसूत्र** में सुरियाभ के अधिकार में जहां सुरियाभ ने जिनप्रतिमा के आगे धूप किया है, वहाँ सूत्रपाठ में कहा है कि "**धुवं दाउण जिणवराणं** । अर्थ-जिनेश्वर को धूप कर के" तो अरे कुमतियो ! विचार करो इस ठिकाने जिनप्रतिमा को जिनवर तुल्य गिनी है, तथा **श्रीउववाइसूत्र** में भी जिनप्रतिमा को जिनवर तुल्य कहा है । सो नेत्र खोल के देखोगे तो दीखेगा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर जेठा लिखता है " भगवंत के समवसरण में जब देवानंदा आई तब प्रभु ने कहा है कि "**मम अम्मा**" अर्थात् मेरी माता, परंतु कहीं भी मेरी प्रतिमा ऐसे नहीं कहा है ।" उत्तर-अरे मूर्ख ! प्रभु को कारण विना बोलने की क्या जरूरत थी ? देवानंदा तो अपने पास आई तब श्रीगोतमस्वामी के पूछने से मेरी माता ऐसे कहा है; वैसे ही भगवंत की प्रतिमा को प्रभु के पास कोई लाया होता तो प्रभु " मम पडिमा" ऐसे भी कहते इस में क्या आश्चर्य है ?

फिर जेठा लिखता है " नमूना तो बहुत वस्तुओं में से थोडी दिखानी उस का नाम है" परंतु मूढ जेठे ने विचार नहीं किया है कि उस को तो लोकभाषा में `बनगी' कहते हैं, और नमूना तो मूल वस्तु जैसी हो वैसी दिखानी उस को कहते हैं, जैसे वीतराग भगवंत शांतमुद्रा सहित पर्यंक आसने विराजते थे, वैसे शांतमुद्रा सहित जो प्रतिमा उस को नमूना कहते हैं; और सो शास्त्रोक्त विधि से वंदना पूजा करने योग्य है, और कहा भी है कि "**जिण-पडिमा-जिनं प्रतिमातीति जिनप्रतिमा**" अर्थात् जो जिनेश्वर देव के आकार को दिखलावे उस का नाम जिन प्रतिमा है । और प्रतिमा शब्द तुल्यवाची है, परंतु ढूंढकों को व्याकरण के ज्ञानरहित होने से उसकी खबर कैसे होवे ? तथा जेठे मूढने लिखा है कि " स्त्री का नमूना स्त्री, परंतु पूतली नहीं" उसका उत्तर - **श्रीदशवैकालिकसूत्र** में कहा है कि जिस मकान में स्त्री का चित्राम हो उस मकान में साधु नहीं रहे तो जेठमल के लिखने मुताबिक सो स्त्री का नमूना नहीं है । उस में कामादि गुण नहीं है तो फिर साधु को न रहने का क्या कारण है ? परंतु अरे ढूंढको ! चित्र की पूतली है सो स्त्री का नमूना ही है, और उस को देखने से कामादिक दोष उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते उस मकान में रहने की साधु को शास्त्रकार की आज्ञा नहीं है । इस वास्ते जेठमल का लिखना बिलकुल झूठ है

यदि नमूना देख के नाम याद न आता हो तो अपने पिता के विरह में उस की मूर्ति से वह याद क्यों आता है ? तथा तुम ढूंढिये लोग नरक के, देवलोकों के, जंबूद्वीप के, अढाईद्वीप के, लोक नालिका वगैरेह के चित्र लोगों को दिखाते हो, सो देख के देखने वाले को त्रास क्यों पैदा होता है ? सुख की इच्छा क्यों होती है ? जंबूद्वीपादि पदार्थों का ज्ञान क्यों होता है ? परंतु तुम्हारा लिखना स्वकपोलकल्पित है, और यह बात तो खरी है कि प्रभु की शांत मुद्रा वाली प्रतिमा को देख के भव्य जीवों के विषयकषाय उपशम भाव को प्राप्त हो जाते हैं; और उसको प्रणाम, नमस्कार, पूजादि करने से भारी सुकृत का संचय होता है ।

तथा जेठा लिखता है कि " वीतरागदेव का नमूना साधु, परंतु प्रतिमा नहीं ।" उत्तर-अरे मूढ़ ढूंढको ! वीतरागदेव का नमूना साधु नहीं हो सकता है, क्योंकि वीतराग देव रागद्वेषरहित है, और साधु रागद्वेषसहित है । साधु रजोहरण, मुहपत्ती, पात्रे, झोली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडले आदि उपकरण सहित है । और प्रभु के पास इनमें से कोई भी उपकरण नहीं है, तथा प्रभु को चामर होते हैं, मस्तकों पर छत्र होते हैं, पीछे भामंडल होता है, धर्मध्वज, धर्मचक्र प्रभु के आगे चलता है, रत्नजडित सिंहासनों पर प्रभु विराजते है, देव दुंदुभि बजती है, देवता जलथल के उत्पन्न हुए पांच वर्ण के पुष्पों की वर्षा करते हैं, ध्वनि पूरते हैं, अशोकवृक्ष से छाया करते हैं, चलने वक्त प्रभु के आगे नव कमल की रचना करते हैं, इत्यादि अनेक अतिशयों सहित तीर्थंकर भगवान् हैं । और साधुओं के पास तो इनमें से कुछ भी नहीं होता है । तो जेठमल ने साधु को वीतराग का नमूना कैसे ठहराया ? नहीं साधु वीतराग का नमूना कदापि नहीं हो सकता है । परंतु पद्मासनयुक्त जिनमुद्रा शांत दृष्टि सहित वीतराग सदृश जो अरिहंत की प्रतिमा है, सो तो उसका नमूना सिद्ध हो सकता है । और साधु का नमूना साधु, परंतु जमालिमती गोशालकमती आदि नहीं, यह बात तो सत्य है । जैसे वर्तमान समय में साधु का नमूना परंपरागत साधु होते हैं, सो तो खरा, परंतु जिनाज्ञा के उत्थापक, जमालि गोशालकमती सदृश ढूंढक कुलिंगी है, सो नहीं । तथा वीतराग की प्रतिमा आराधने से वीतराग आराध्य होता है, जैसे **अंतगडदशांगसूत्र** में सुलसा के अधिकार में कहा है कि हरिणैगमेषी की प्रतिमा की आराधना करने से हरिणैगमेषीदेव आराध्य हुआ, वैसे ही जिनप्रतिमा को वंदन पूजनादि से आराधने से सो भी सम्यग्दृष्टि जीवों को आराध्य होता है ।

तथा जेठमल लिखता है कि " प्रतिमा कों वंदना करने वास्ते संघ निकालना किसी जगह भी नहीं कहा है" उसका उत्तर तो हम प्रथम लिख चूके है; परंतु जब तुम्हारे साधु साध्वी आते हैं तब तुम इकट्ठे होके लेने को जाते हो और जब जाते हैं तब छोडने को जाते हो । तथा मरते हैं तब विमान वगैरह बना के अनेक आदमी इकठ्ठे होकर दुसाले डालते हो । जलाने जाते हो तथा कई जगह पूज्य की तिथि पर इकठ्ठे हो कर पोसह करते हो । इस तरह आनंद कामदेवादि श्रावकों ने सिद्धांतों में किसी जगह किया कहा हो तो बताओ ? और हमारे श्रावक जो करते हैं, सो तो सूत्रपंचांगी तथा सुविहिताचार्यकृत ग्रंथों के अनुसार करते हैं ।

॥ इति ॥

१४. नमो बंभीए लिवीए इस पाठ का अर्थ :

चौदह में प्रश्नोत्तर में जेठे मूढमति ने लिखा है कि " भगवती सूत्र की आदि में **(नमो बंभीए लिवीए)** इस पाठ से गणधरदेव ने ब्राह्मीलिपि के जानकार श्रीऋषभदेव को नमस्कार किया है, परंतु अक्षरों को नमस्कार नहीं किया है; इस बात ऊपर **अनुयोगद्वारसूत्र** की साख दी है कि जैसे अनुयोगद्वार में पाथेका जानने वाला पुरुष सो ही पाथा, ऐसे कहा है वैसे ही इस ठिकाने भी लिपि का जानकार पुरुष, सो लिपि कहिये, और उस को नमस्कार किया है ।" उत्तर-जो लिपि के जानकार को नमस्कार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया हो तब तो भंगी, चमार, फिरंगी, मुसलमानादिक सर्व ढूंढकों के वंदनीय ठहरेंगे, क्योंकि वह सर्व ब्राह्मीलिपि को जानते हैं । यदि नैगमनयकी अपेक्षा कहोगे कि ब्राह्मीलिपि के बनाने वालों को नमस्कार किया है तो शुद्ध नैगमनय के मत से सर्व लिखारी तुम को वंदनीय होंगे । यदि कहोगे इस अवसर्पिणी में ब्राह्मीलिपि के आदि कर्ता को नमस्कार किया है । तब तो जिस वक्त श्रीऋषभदेवजी ने ब्राह्मीलिपि बनाई थी, उस वक्त तो वह असंयती थे । और असंयतिपने में तो तुम वंदनीय मानते नहीं हो । तो फिर `नमो बंभीए लिवीए' इस पाठ का तुम क्या अर्थ करोगे सो बताओ ? और हम तो अक्षररुप ब्राह्मीलिपि को नमस्कार करते हैं जिस से कुछ भी हम को बाधक नहीं है, तथा तुम ब्राह्मीलिपि के आदि कर्ता को नमस्कार है ऐसे कहते हो सो तो मिथ्या ही है, क्योंकि `**बंभीए लिवीए** इस पद का ऐसा अर्थ नहीं है । यह तो उपचार कर के खींच के अर्थ निकालते हो, परंतु बिना प्रयोजन उपचार करने से सूत्रदोष होता है, तथा तुम्हारे कथनानुसार ब्राह्मीलिपि के कर्ता को इस ठिकाने नमस्कार किया हे तो प्रभु केवल एक ब्राह्मीलिपि के ही कर्ता नहीं है । किंतु कुल शिल्प के आदि कर्ता हैं । और यह अधिकार **श्रीसमवायांगसूत्र** में है तो वहां **नमो `सिप्पसयस्स'** अर्थात् शिल्प के कर्त्ता को नमस्कार हो ऐसा भ्रान्तिरहित पद गणधर महाराज ने क्यों न कहा ? इस वास्ते इस से यही निश्चय होता है कि तुम जो कहते हो, सो सूत्रविरुद्ध ही है । तथा `**नमो अरिहंताणं**' इस पद में क्या ऋषभदेव न आये जो फिर से `**बंभीए लीवीए** यह पद कह के पृथक् दिखलाए ? कदापि तुम कहोगे कि ब्राह्मीलिपि की क्रिया इन्हों ने ही दिखालाई है । इस वास्ते क्रिया गुण कर के वंदनीय है; तब तो ऋषभदेव जी को बंदना करने से ब्राह्मीलिपि को तो वंदना अवश्यमेव हो गई, क्योंकि क्रिया का कर्ता वंद्य तो क्रिया भी वंद्य हुई ।

फिर जेठा लिखता है कि "अक्षरस्थापना तो सुधर्मास्वामी के वक्त में नहीं था, सो तो श्रीवीर निर्वाण के नवसौ अस्सी (९८०) वर्ष पीछे पुस्तक लिखी गए तब हुआ है ।"

उत्तर-अरे मूढ ! सुधर्मास्वामी के वक्त में अक्षरस्थापना ही नहीं थी तो क्या श्री-ऋषभदेवजी ने अठारह लिपि दिखलाई थी उनका व्यवच्छेद ही हो गया था ? और वैसे था तो गृहस्थों का लैन, देन, हुण्डी, पत्री, उगात्री, पत्रलेखन, व्याज वगैरह लौकिक व्यवहार कैसे चलता होगा ? जरा विचार कर के बोलो ! परंतु इस से हम को तो ऐसे ही मालूम होता है कि जेठमल को और उस के ढूंढकों को सूत्रार्थ का ज्ञान ही नहीं है; क्योंकि **श्री अनुयोगद्वारसूत्र** में कहा है कि-**दव्वसुअं जं पत्तय-पोत्थय-लिहियं** अर्थ-द्रव्य श्रुत सो जो पत्र पुस्तक में लिखा हुआ हो तो अरे कुमतियो ! यदि उन दिनों में ज्ञान लिखा हुआ, और लिखा जाता न होता तो गणधर महाराज ऐसे क्यों कहते ? इस वास्ते मतलब यही समझने का है कि उन दिनों में पुस्तक थी अठारह लिपि थी;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परंतु फक्त समग्र सूत्र लिखे हुए नहीं थे, सो वीर निर्वाण के ९८० वर्ष पीछे लिखे गए। आखिर में हम तुम को इतना ही पूछते हैं कि तुम जो कहते हो कि श्री वीर निर्वाण के बाद (९८०) वर्ष सूत्र पुस्तकारूढ हुए हैं, सो किस आधार से कहते हो ? क्योंकि तुम्हारे माने बत्तीस सूत्रों में तो यह बात ही नहीं है।

तथा जेठमल लिखता है कि " अठारह लिपि अक्षर रूप वंदनीय मानोगे तो तुम को पुराण कुरान वगैरह सर्व शास्त्र वंदनीय होंगे।" उत्तर-**श्रीनंदिसूत्र** में अक्षर को श्रुतज्ञान कहा है, और ज्ञान नमस्कार करने योग्य है; परंतु उस में कहा भावार्थ - वंदनीय नहीं है। **श्रीनंदिसूत्र** में कहा है कि अन्य दर्शनियों के कुल शास्त्र जो मिथ्या श्रुत कहाते हैं, वे यदि सम्यग्दृष्टि के हाथ में हैं तो सम्यक्शास्त्रही हैं। और जैनदर्शन के शास्त्र यदि मिथ्यादृष्टि के हाथ में है तो वे मिथ्याश्रुत ही हैं। इस वास्ते अक्षरवंदना करने में कुछ भी बाधक नहीं है। और जेठमल ने लिखा है कि - " जिनवाणी भावश्रुत है।" परंतु यह लिखना मिथ्या है, क्योंकि जिनवाणी को **श्रीनंदिसूत्र** में द्रव्यश्रुत कहा है और **श्रीभगवती सूत्र** में " **नमो सुअदेवयाए**" इस पाठ कर के गणधरदेव ने जिनवाणी को नमस्कार किया है। वैसे ही ब्राह्मीलिपि नमस्कार करने योग्य है, जैसे जिनवाणी भाषा वर्गणा के पुद्गल रूप से द्रव्य है, वैसे ब्राह्मीलिपि भी अक्षररूप से द्रव्य है।

अरे ढूंढको ! जब तुम आदिकर्ता को नमस्कार करने की रीति स्वीकार करते हो, तो तीर्थंकरों के आदिकर्त्ता उनके मातापिता हैं, उन को नमस्कार क्यों नहीं करते हो ? अरे भाइयो ! जरा ध्यान दे कर देखो तो ऊपर कुल दृष्टांतों से "**नमो बंभीए लीवीए**" का अर्थ ब्राह्मीलिपि को नमस्कार हो ऐसा ही होता है। इस वास्ते जरा नेत्र खोल के देखो, जिस से तीर्थंकर गणधर की आज्ञा के लोपक न बनो। इति।

१५. जंघाचारण विद्याचारण साधुओं ने जिनप्रतिमा वांदी है :

पंदरहवें प्रश्नोत्तर में जेठमल लिखता है कि " जंघाचारण तथा विद्याचारण मुनियों ने जिनप्रतिमा नहीं वांदी है" यह लिखना सर्वथा असत्य है, क्योंकि **श्रीभगवतीसूत्र** शतक २० उद्देशे ९में जंघाचारण तथा विद्याचारणमुनियों का अधिकार है, उसमें उन्हों ने जिनप्रतिमा वांदी है। ऐसे प्रत्यक्ष रीति से कहा है उसमें से थोडासा सूत्रपाठ इस ठिकाने लिखते हैं, यत -

जंघाचारस्स णं भंते तिरियं केवइए गति विसए पन्नत्ता गोयमा से णं इत्तो एगेणं उप्पाएणं रुअगवरे दीवे समोसरणं करेइ करइत्ता तहिं चेइआइं वंदइ वंदइत्ता तओ पडिनियत्तमाणे बीइएणं उप्पएणं णंदीसरे दीवे समोसरणं करेइ तहिं चेइआइं वंदइ वंदइत्ता इहमागच्छइ इह चेइयाईं वंदइ जंघाचारस्स णं गोयमा तिरियं एवइए गतिविसए पन्नत्ता। जंघाचारस्स णं भंते उढ्ढं केवइए गइं विसए पन्नत्ता गोयमा से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णं इत्तो एगेणं उप्पाएणं पंडगवणे समोसरणं करेइ करइत्ता तहिं चेइआइं वंदइ वंदइत्ता तओ पडिनियत्तमाणे बितिएणं उप्पाएणं णंदणवणे समोसरणं करेइ करइत्ता तहिं चेइआइं वंदइ वंदइत्ता इहमागच्छइ इहमागच्छइता इह चेइआइं वंदइ जंघाचारस्स णं गोयमा उढ्ढं एवइ णगतिविसए पन्नत्ता ।

अर्थ - है भगवन् ! जंघाचारण मुनि का तिरछी गति का विषय कितना है ? गौतम ! सो एक डिगले रुचकवर जो तेरहवाँ द्वीप है उस में समवसरण करे, कर के वहां के चैत्य अर्थात् - शाश्वते जिनमंदिर (सिद्धायतन) में शाश्वती जिनप्रतिमा को वांदे; वांद के वहां से पीछे निवर्तता हुआ दूसरे डिगले नंदीश्वरद्वीप में समवसरण करे, कर के वहां के चैत्यों को वांदे; वांदके यहां अर्थात् भरतक्षेत्रमें आवे, आ कर के यहां के चैत्य अर्थात् अशाश्वती जिनप्रतिमा को वांदे; जंघाचारणका तिरछी गति का विषय इतना है । तो हे भगवन । जंघाचारण मुनि का ऊर्ध्व गति का विषय कितना है ? गौतम ! सो एक डिगले में पांडुक वन में समवसरण करे, कर के वहां के चैत्यों को वांदे; वांद के वहां से पीछे फिरता हुआ दूसरे डिगले में नंदन वन में समवसरण करे, कर के वहां के चैत्य वांदे; वांद के यहाँ आवे, आकर के यहां के चैत्य वांदे; हे गौतम ! जंधाचारण की ऊर्ध्वगति का विषय इतना है । जैसे जंघाचारण की गति का विषय पूर्वोक्त पाठ में कहा है वैसे विद्याचारण मुनि की गति का विषय भी इसी उद्देश में कहा है । विद्याचारण यहां से एक डिगले में मानुषोत्तर पर्वत पर जा के वहां के चैत्य वांदते है, और दूसरे डिगले में नंदीश्वर द्वीप में जा के वहां के चैत्य वांदते हैं; पीछे फिरते हुए एक ही डिगले में यहां आ कर के यहां के चैत्य वांदते हैं । इस मुताबिक विद्याचारण की तिरछी गतिका विषय है । ऊर्ध्वगति में एक डिगले में नंदनवन में जाके वहां के चैत्य वांदे हैं; और दूसरे कदम में पांडुकवन में जा के वहां के चैत्य वांदे हैं, पीछे फिरते हुए एक ही डिगले में यहां आकर के यहां के चैत्य वांदे हैं । इस मुताबिक विद्याचारण की ऊर्ध्वगति का विषय है, सो पाठ यह है

विज्ञाचारणस्स णं भन्ते तिरयं केवइए गइविसए पन्नत्ते गोयमा से णं इत्तो एगेण उप्पाएणं माणुसुत्तरे पव्वए समोसरणं करेइ करइत्ता तहिं चेइआइं वंदइ वंदइत्ता बीएणं उप्पाएणं णंदिसरवरदीवे समोसरणं करेइ करइत्ता तहिं चेइआइं वंदइ वंदइत्ता तओ पडिनियत्तइ इहमागच्छइ इहमागच्छइत्ता इह चेइआइं वंदइ विज्ञाचारणस्स णं गोयमा तिरियं एवइए गइविसए पन्नत्ते विज्जाचारणस्स णं भंते उढ्ढं केवइए गइविसए पन्नते । गोयमा सेणं इत्तो एगेणं उप्पाएणं णंदणवणे समोसरणं करेइ करइत्ता तहिं चेइआइं वंदइ वंदइत्ता बितिएणं उप्पाएणं पंडगवणे समोसरणं करेइ करइत्ता तहिं चेइआइं वंदई वंदइत्ता तओ पडिनियत्तइ इहमागच्छइ इहमागच्छइत्ता इह चेइआइं वंदइ विज्ञा- चारणस्स णं गोयमा उढ्ढं एवइए गइविसए पन्नत्ते ।

।। इति ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जेठमल लिखता है कि " जंघाचारण तथा विद्याचारणमुनियोंने श्रीरुचकद्वीप तथा मानुषोत्तर पर्वत पर सिद्धायतन वांदे कहते हो । परंतु दोनों ठिकाने तो सिद्धायतन बिलकुल है नहीं तो कहाँ से वांदे ?

उत्तर - श्रीमानुषोत्तर पर्वत पर चार सिद्धायतन हैं ऐसे **श्रीद्वीपसागर पन्नत्तिसूत्र** में कहा है तथा श्रीरत्नशेखरससूरि जो कि महा धुरंधर पंडित थे उन्होंने श्रीक्षेत्रसमास नामा ग्रंथ में ऐसे कहा है - यतः

चउसुवि इसुयारेसु इक्कीकं नर, नगंमि चत्तारि ।

कूडोवरि जिणभवणा कुलगिरि जिणभवण परिमाणा ।।२५७।।

अर्थ-चार इषुकार में एक एक और मानुषोत्तर पर्वत में चार कूट पर चार जिनभवन हैं सो कुलगिरि के जिन भवन प्रमाण है ।

तत्तो दुगुणपमाणा चउदाराथुत्त वण्णिय सुरुवा ।

नंदीसर बावण्णा चउ कुंडलि रूयगि चत्तारि ।।२५८।।

अर्थ - पूर्वोक्त जिनभवन से दुगुने प्रमाण के चार द्वार वाले और पूर्वाचार्यों ने वर्णन किया है स्वरूप जिन का ऐसे नंदीश्वर में (५२) कुंडलगिरि में चार (४) और रुचक पर्वत पर चार (४) एवं कुल साठ (६०) जिनभवन हैं । इत्यादि अनेक जैन-शास्त्रों में कथन है, इस वास्ते मानुषोत्तर तथा रुचकद्वीप पर जिनभवन नहीं है ऐसा जेठमल का लेख बिलकुल असत्य है । पुनः जेठा लिखता है कि - " नंदीश्वरद्वीप में संभूतला ऊपर तो जिनभवन कहे नहीं हैं, और अंजनगिरि तो चउरासी (८४) हजार योजन ऊंचा है । उस पर चार सिद्धायतन हैं, वहां तो जंघाचारण विद्याचारण गये नहीं है ।" इसका उत्तर-सिद्धायतन को वंदना करने वास्ते ही चारणमुनि वहां गये हैं । तो जिस कार्य के वास्ते वहां गये हैं, सो कार्य नहीं किया ऐसे कहा ही नहीं जाता है । क्योंकि **श्रीभगवतीसूत्र** में वहाँ के चैत्य वांदे ऐसे कहा है; तथा उनकी ऊर्ध्वगति पांडुकवन जो समभूतला से निनानवे (९९) हजार योजन ऊंचा है वहाँ तक जाने की है, ऐसे भी उसीही सूत्र में कहा है, और यह अंजनगिरि तो चउरासी (८४) हजार योजन ऊंचा है, तो वहाँ गये हैं । उसमें कोई भी बाधक नहीं है और जेठमल ने नंदीश्वरद्वीप में चार सिद्धायतन लिखे है, परंतु अंजनगिरि चारके ऊपर चार हैं, और दधिमुख तथा रतिकर ऊपर मिला के ५२ हैं, और पूर्वोक्त पाठ में भी ५२ ही कहे हैं, इस वास्ते जेठमल का लिखना बिलकुल असत्य है ।

तथा जेठमल ने लिखा है - " प्रतिमा वांदी है वहाँ **(चेइआइं वंदित्तए)** ऐसा पाठ है परंतु **(नमंस्सइ)**ऐसा शब्द नहीं है । इस वास्ते प्रतिमा को प्रत्यक्ष देखी हो तो **नमंस्सई** शब्द क्यों नहीं कहा ? " उसका उत्तर-**वंदइ** और **नमंस्सइ** दोनों शब्दों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ-एक ही है । इस वास्ते केवल **वंदइ** शब्द कहा है । उसमें कोई विरोध नहीं हैं परंतु वंदइ एक शब्द है वास्ते वहां प्रतिमा वांदी ही नहीं है, ऐसे कथन से जेठमल **श्रीभगवतीसूत्र** के पाठ को विराधने वाला सिद्ध होता है ।

पुनः जेठमल लिखता है कि-" वहाँ चेइआइं" शब्द कर के चारणमुनि ने प्रतिमा वांदी नहीं है किंतु इरियावही पडिकमने वक्त लोगस्स कह कर अरिहंत को वांदा है सो चैत्यवंदना की है । "उत्तर - अरे भाई चैत्य शब्द का अर्थ अरिहंत ऐसा किसी भी शास्त्र में कहाँ नहीं है । चैत्य शब्द का तो जिनमंदिर, जिनबिंब, और चबूतरा बद्ध वृक्ष यह तीन अर्थ **अनेकार्थसंग्रहादि** ग्रंथों में किये हैं[१] और इरियावही पडिकमने में लोगस्स कहा सो चैत्य वंदना की ऐसे तुम कहते हो तो सूत्रों में जहां जहां इरियावही पडिकमने का अधिकार है वहां वहां इरियावही पडिकमें ऐसे तो कहा है, परंतु किसी जगह भी चैत्यवंदना करे ऐसे नहीं कहा है; तो इस ठिकाने अर्थ फिराने के वास्ते मन में आवे वेसे कुतर्क करते हो सो तुम्हारे मिथ्यात्व का उदय है ।

फिर "**चेइआइं वंदित्तए**" इस शब्द का अर्थ फिराने वास्ते जेठमल ने लिखा है कि "उस वाक्य का अर्थ जो प्रतिमा वांदी ऐसा है तो नंदीश्वरद्वीप में तो यह अर्थ मिलेगा । परंतु मानुषोत्तर पर्वत पर और रूचकद्वीप में प्रतिमा नहीं है । वहां कैसे मिलेगा ?" उस का उत्तर-हमने प्रथम वहां जिनभवन और जिनप्रतिमा हैं ऐसा सिद्ध कर दिया है । इस वास्ते चारणमुनियों ने प्रतिमा ही वांदी है ऐसे सिद्ध होता है, और इस से ढूंढकों की धारी कुयुक्तियां निरर्थक है ।

तथा जेठमल ने लिखा है कि " जंघाचारण विद्याचारण मुनि प्रतिमा वांदने को बिलकुल गये नहीं है क्योंकि जो प्रतिमा वांदने को गये हो तो पीछे आते हुए मानुषोत्तर पर्वत पर सिद्धायतन है उनको वंदना क्यों नहीं की ?" इसका उत्तर - चारणमुनि प्रतिमा वांदने को ही गये हैं, परंतु पीछे आते हुए जो मानुषोत्तर के चैत्य नहीं वांदे है सो उन की गति का स्वभाव है; क्योंकि बीच में दूसरा विसामा ले नहीं सकते हैं, यह बात **श्रीभगवतीसूत्र** में प्रसिद्ध है, परंतु पूर्वोक्त लेख से जेठमल महामृषावादी उत्सूत्र प्ररूपक था ऐसे प्रत्यक्ष सिद्ध होता है, क्योंकि पूर्वोक्त प्रश्नोत्तर में वह आप ही लिखता है कि मानुषोत्तर पर्वत पर चैत्य नहीं हैं और प्रश्न में लिखाता है कि मानुषोत्तर पर्वत पर चैत्य क्यों नहीं वांदे ? इससे सिद्ध होता है कि मानुषोत्तर पर्वत पर चैत्य जरूर हैं । परंतु जहाँ जैसा अपने आपको अच्छा लगा वैसा जेठमलने लिख दिया है । किंतु सूत्रविरुद्ध लिखने का भय बिलकुल रक्खा मालूम नहीं होता है । पुनः जेठमल ने लिखा है कि "चारणमुनियों को चारित्रमोहनी का उदय है इस वास्ते उन को जाना पडा हैं परंतु अरे

१ किसी ठिकाने चैत्य शब्द का प्रतिमा मात्र अर्थ भी होता है, अन्य कई कोषों में देवस्थान देवावासादि अर्थ भी लिखे हैं, परन्तु चैत्य शब्द का अर्थ अरिहंत तो कहीं भी नहीं मालूम होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूढ ! यह तो प्रत्यक्ष है कि उन को तो इस कार्य से उलटी दर्शनशुद्धि है । परंतु चारित्र मोहनी का उदय तो तुम ढूंढकों को है, ऐसे प्रत्यक्ष मालूम होता है ।

फिर जेठमल लिखता है कि " चारणमुनियों ने अपने स्थान में आ के कौन से चैत्य वांदे ।" उत्तर-सूत्रपाठ में चारणमुनि "**इह मागच्छइ**" अर्थात् यहां आवे ऐसे कहा है । उस का भावार्थ - यह है कि जिस क्षेत्र से गये हो उस क्षेत्र में आवे, आ के "**इह चेईआई वंदइ** " अर्थात् इस क्षेत्र के चैत्य अर्थात् अशाश्वती जिन प्रतिमा उन को वांदे ऐसे कहा है । परंतु अपने उपाश्रये आवे ऐसे नहीं कहा है । इस बाबत में जेठमल कुयुक्ति कर के लिखता है कि " उपाश्रय में तो चैत्य होवे नहीं । इस वास्ते वहां कौन से चैत्य वांदे ?" यह केवल जेठमल की बुद्धि का अजीर्ण है, अन्य नहीं, और श्री **भगवतीसूत्र** के पाठ से तो शाश्वती, अशाश्वती जिन प्रतिमा सरीखी ही है, और इन दोनों में अंशमात्र भी फेर नहीं है, ऐसे सिद्ध होता है ।

जेठमल ने लिखा है कि " चारणमुनि वह कार्य कर के आ के आलोये पडिकमे विना, काल करे तो विराधक हो ऐसे कहा है, सो चक्षु इंद्रिय के विषय की प्रेरणा से द्वीपसमुद्र देखने को गये हैं इस वास्ते समझना" यह लिखना जेठमल का बिलकुल मिथ्या है क्योंकि उन को जो आलोचना प्रतिक्रमणा करना है सो जिनवंदना का नहीं है, किंतु उस में होए प्रमाद का है; जैसे साधु गोचरी कर के आ के आलोचना करता है सो गोचरी की नहीं । किंतु उस में प्रमादवश से लगे दूषणों की आलोचना करता है । वैसे ही चारणमुनियों को भी लब्ध्युपजीवन प्रमाद गति है । और दूसरा प्रमादका स्थानक यह है कि जो लब्धि के बल से तीर के वेग की तरह शीघ्रगति से चलते हुए रास्ते में तीर्थयात्रा आदि शाश्वत - अशाश्वत जिनमंदिर विना वांदे रह जाते हैं, तत्संबंधी चित्त में बहुत खेद उत्पन्न होता है; इस तरह तीर के वेग की तरह गये सो भी आलोचना स्थानक कहिये ।

फिर जेठमल ने अरिहंत को चैत्य ठहराने वास्ते सूत्रपाठ लिखा है उस में "**देवयं चेईयं**" इस शब्द का अर्थ " धर्मदेव के समान ज्ञानवंत की" ऐसे किया है सो जूठा है । क्योंकि **देवयं चेईयं-दैवतं चैत्यं इव**-अर्थ-देवरूप चैत्य अर्थात् जिन प्रतिमा की जैसे **पज्जुवासामि**-सेवा करता हूं,यह अर्थ खरा है । जैठा और उस के ढूंढक इन दोनों शब्दों को द्वितीयाविभक्ति का वचन मात्र ही समझते है, परंतु व्याकरणज्ञान विना शुद्ध विभक्ति, और उस के अर्थ का भान कहां से हो ? केवल अपनी असत्य बात को सिद्ध करने के वास्ते जो अर्थ ठीक लगे सो लगा देना ऐसा उन का दुराशय है, ऐसा इस बात से प्रत्यक्ष सिद्ध होता है ।

फिर **समवायांगसूत्र** का चैत्य वृक्ष संबंधी पाठ लिखा है सो इस ठिकाने विना प्रसंग है । वैसे ही उस पाठ के लिखने का प्रयोजन भी नहीं है । परंतु फक्त पोथी बडी करनी, और हमने बहुत सूत्रपाठ लिखे हैं, ऐसे दिखा के भद्रिक जीवों को अपने फंदे में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फंसाना यही मुख्य हेतु मालूम होता है । और उस जगह चैत्यवृक्ष कहे हैं सो ज्ञान की निश्राय नहीं कहे है, किंतु चौतरबंध वृक्ष के नाम ही चैत्यवृक्ष है, और सो हम इसी अधिकार में प्रथम लिख आये हैं । भगवान् जिस वृक्ष नीचे केवलज्ञान पाये है, सो वृक्ष चौतरा सहित थे, और इसी वास्ते उनको चैत्यवृक्ष कहा है, ऐसे समझना । परंतु चैत्य शब्द का अर्थ ज्ञान नहीं समझना । तथा तुम ढूंढक बत्तीस सूत्रों के विना अन्य कोई सूत्र तो मानते नहीं हो, तो अर्थ करते हो सो किस के आधार से करते हो सो बताओ, कयोंकि कुल कोषों में प्रायः हमारे कहे मुताबिक ही चैत्य शब्द का अर्थ कथन किया है, परंतु तुम चैत्य शब्द का अर्थ साधु तथा ज्ञान वगैरह करते हो, सो केवल स्वकपोलकल्पित है । और इस से स्पष्ट मालूम होता है कि निःकेवल असत्य बोल के तथा असत्य प्ररूपणा करके बेचारे भोले लोगों को अपने कुपंथ में फंसाते हो । इति ।

१९. आनंद श्रावक ने जिनप्रतिमा वांदी है :

सोलहवें प्रश्नोत्तर में आनंद श्रावक ने जिनप्रतिमा वांदी नहीं है, ऐसे ठहराने के वास्ते जेठमल ने **उपासक दशांगसूत्र** का पाठ लिख के उस का अर्थ फिराया है । इस वास्ते सो ही सूत्रपाठ सच्चे यथार्थ अर्थ सहित नीचे लिखते हैं, **श्रीउपासक दशांग** सूत्र प्रथमाध्ययने, यत -

नो खलु मे भंते कप्पइ अज्जप्पभिइं च णं अन्नउत्थिया वा अन्नउत्थियदेवयाणि वा अन्नउत्थिय परिग्गहियाइं अरिहंतचेइयाइं वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुव्विं अणा लत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पदाउं वा णण्णत्थ रायाभिओगेणं गणांभिओगेणं बलाभिओगेणं देवयाभिओगेणं गुरुनिग्गहेणं वित्तिकंतारेणं कप्पइ मे समणे निग्गंथे फासुएणं एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थपडिग्गह-कंबलपाय-पुच्छणेणं पाडिहारिय पीढफलग-सेज्जासंथारएणं ओसहभेसज्जेण य पडिलाभेमाणस्स विहरित्तए ति कट्टु इमं एयाणुरूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ ।।

अर्थ - हे भगवन् ! मुझको न कल्पे क्या न कल्पे सो कहते हैं, आज से ले के अन्य तीर्थी चरकादि, अन्य तीर्थी के देव हरि हरादिक, और अन्य तीर्थी के ग्रहण किये अरिहंत के चैत्य-जिनप्रतिमा इन को बंदना करना, नमस्कार करना, तथा प्रथम से विना बुलाये बुलाना, वारंवार बुलाना, यह सर्व न कल्पे, तथा उन को अशन, पान, खादिम, और स्वादिम, यह चार प्रकार का आहार देना, वारंवार देना, न कल्पे; परंतु इतने कारण विना सो कहते हैं, राजा की आज्ञा से, लोग के समुदाय की आज्ञा से, बलवान् के आग्रह से, क्षुद्रदेवता के आग्रह से, गुरु-माता पिता कलाचार्य वगैरह के आग्रह से, इन ६ छिंडी (आगार) से पूर्व कहे उन को वंदनादि करने से दोष न लगे; यह न कल्पे सो कहा । अब कल्पे सो कहते हैं, मुझ को कल्पे, जैन श्रमण निर्ग्रंथ को फासु अर्थात् जीव रहित, और एषणीय अर्थात् दोष रहित, अशन, पान, खादिम,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कंबल, रजोहरण और वरत के पीछे देने ऐसे बाजोठ (चौकी) पट्टादि पटडा वसती तृणादिक संथारा तथा औषध भेषज से प्रतिलाभता थका विचरना एसे कह के एतद्रूप अभिग्रह ग्रहण करे[१] ।

१ टीकाकार श्री अभयदेवसूरि महाराजने यही अर्थ करा है - तथाहि -

नो खलु इत्यादि नो खलु मम भदंत भगवन् कल्पते युज्यते अद्य प्रभृति इतः सम्यक्त्व-पतिपत्ति दिनादारभ्य निरतिचारसम्यक्त्वपरिपालनार्थं तद्यतनामाश्रित्य अन्नउत्थिएत्ति जैनयूथाद्यदन्यद्यूथं संघान्तरं तीर्थान्तरमित्यर्थस्तदस्तियेषां तेऽन्ययूथिकाश्चरकादिकुतीर्थिका स्तान्अन्ययूथिक-दैवता नि वा हरिहरादीनि अन्ययूथिकपरिगृहीतानि वा अर्हच्चैत्यानि अर्हत्प्रतिमालक्षणानि यथाभौतपरिगृहीतानि वीरभद्रमहाकालादिनी वन्दितुं वा अभिवादनं कर्तुं नमस्यतुं वा प्रमाण पूर्वक प्रशस्तध्वनिभिर्गुणोत्कीर्त्तनं कर्तुं तद्भक्तानां मिथ्यात्व-स्थिरीकरणादिदोष-प्रसङ्गा-दित्यभिप्रायः तथा पूर्वं प्रथममनालप्तेन सता अन्यतीर्थिकैस्तानेवालपितुं वासकृत्सम्भाषितुं संलपितुं वा पुनःपुनः संलापं कर्तुं यतस्ते तप्तनतरायोगोलककल्पाःखल्वासनादिक्रियायां नियुक्ता भवन्ति तत्प्रत्ययश्चकर्मबन्धःस्यात् तथालापादेस्सकाशात्परिचयेन तस्यैव तत्परिजनस्य वा मिथ्यात्व-प्राप्तिरितिप्रथमालप्तेन त्वसंभ्रमं लोकापवादभयात्कीदशस्त्वमित्यादि वाच्यमिति तथा तेभ्योन्ययूथिकेभ्योऽशनादि दातुं वा सकृत् अनुप्रदातुं वा पुनः पुनरित्यर्थः अञ्च निषेधो धर्म बुध्यैव करुणया तु दद्यादपि किं सर्वथा न कल्पते इत्याह नन्नत्थ रायाभिओगेणंति तृतीयायाः पञ्चम्यर्थत्वात् राजाभियोगं वर्जयित्वेत्यर्थः राजाभियोगस्तु राजपरतन्त्रता गणः समुदायस्तदभियोगो-वश्यता गणाभियोगः तस्मात् बलाभियोगो नाम राजगण व्यतिरिक्तस्य बलवतः पारतंत्र्यं देवताभियोगो देवपरतंत्रता गुरुनिग्गहो मातापितृपारवश्यं गुरूणां वा चैत्यसाधूनां निग्रहः प्रत्यनीककृतोपद्रवो गुरुनिग्रह स्तत्रोपस्थिते तद्रक्षार्थमन्ययूथिकादिभ्यो ददपि नातिक्रामति सम्यक्त्वमिति वित्तीकंतारेणंति वृत्तिर्जीविका तस्याः कान्तारमरण्यं तदिव कान्तार क्षेत्रं कालो वा वृत्ति कान्तारं निर्वाहाभाव इत्यर्थः तस्मादन्यत्तन्निषेधो दानप्रणामादेरिति प्रकृतमिति पडिग्गहंतिपात्रं पीढंति पट्टादिकं फलगंति अवष्टंभादिकं फलकं भेसज्जंति पथ्यमित्यादि ।।

तथा बंगालकी रायल एसीयाटिक सुसाइटीके सेक्रेटरी डाक्टर ए एफ, रूडाँल्फ हार्नलसाहिबने भी यही अर्थ लिखा है, तथाहि :-

58. Then the householder Ananda, in the presence of the Samana, the blessed Mahavira, took on himself the twelve fold law of a house holder, consisting of the five lesser vows and the seven disciplinary vows; and having done so, he praise and worshipped the Samana, the blessed Mahavira, and then spoke to him thus: " Truly, Reverend Sir, it does not befit me, from this day forward, to praise and worship any man of a heterdox community, or any of the devas of a heterodox community, or any of the objects of reverence of a heterodox community; or with out being first addressed by them, to address them or convesre with them; or to give them or supply them with food or drink or delicacies or relishes except it be by the command of the king, or by the command of the priesthood, or by the command of any powerful man, or by the exigencies of living. On the other hand it behoves me, to devote my self providing the Samaas of the naggantha faith with pure and acceptale food, drink, delicacies and relishcies and clothes, blankets, alms-bowls, and brooms, with stool, plank and bedding, and with spices and medicines.

1. Such as the charaka ·Charkadi-Kutirthikah, comm); see Bhag, PP. 163, 214
2. Such as Hari (Vishnu) and Hara (Shiva), (comm)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपर लिखे सूत्रपाठ के अर्थ में जेठमल ढूंढक लिखता है कि "आनंदश्रावक ने न कल्पे में अन्य तीर्थी के ग्रहण किये चैत्य अर्थात् भ्रष्टाचारी साधु को वोसराया है परंतु अन्य तीर्थी की ग्रहण की जिनप्रतिमा नहीं वोसराई है, क्योंकि अन्य तीर्थी की ग्रहण की प्रतिमा वोसराई होती तो स्वमतेगृहीत जिन प्रतिमा वांदनी रही सो कल्पे के पाठ में कहता"। इस का उत्तर-अरे भाई ! कल्पे के पाठ में तो अरिहंत देव और साधु को वंदना नमस्कार करना भी नहीं कहा है, केवल साधु को ही आहार देना कहा है, तो वह भी क्या उस को वांदने योग्य नहीं थे ? परंतु जब अन्य तीर्थी को वंदना करने का निषेध किया, तब मुनि को वंदना करनी यह भावार्थ निकले ही हैं। तथा अन्य तीर्थी के देव की प्रतिमा को वंदना का निषेध किया तब जिन प्रतिमा को वंदना करनी ऐसा निश्चय होता है। और अंबड के आलावे अन्य तीर्थी का निषेध, और स्वतीर्थी को वंदना वगैरह करनी ऐसी डबल आलावा कहा है, तथा जिस मुनि ने परतीर्थी को ग्रहण किया अर्थात् अन्य तीर्थी में गया सो मुनि तो परतीर्थी ही कहिये। इस वास्ते अन्य तीर्थी को वंदना न करूं इसमें सो आ गया। फिर कहने की कोई जरूरत न थी, और चैत्य शब्द का अर्थ साधु करते हो सो निःकेवल खोटा है। क्योंकि **श्रीभगवतीसूत्र** में असुर कुमार देवता सौधर्म देवलोक में जाते हैं, तब एक अरिहंत, दूसरा चैत्य अर्थात् जिन प्रतिमा, और तीसरा अनगार अर्थात् साधु, इन तीनों का शरण करते है; ऐसे कहा है, यत -

नन्नत्थ अरिहंते वा अरिहंतचेइयाणि वा भावीअप्पणो अणगारस्स णाणिस्साए उढ्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो।

इस पाठमें (१) अरिहंत, (२) चैत्य, और (३) अनगार, यह तीन कहे हैं, यदि चैत्य शब्द का अर्थ साधु हो तो अनगार पृथक् क्यों कहा, जरा ध्यान दे के विचार देखो ! इस वास्ते चैत्य शब्द का अर्थ मुनि करते हो सो खोटा है, **श्रीउपासक दशांग** के पाठ का सच्चा अर्थ पूर्वाचार्य जो कि महाधुरंधर केवली नहीं परंतु केवली सरिखे थे, वे कर गये हैं। सो प्रथम हमने लिख दिया है; परंतु जेठमल भाग्यहीन था, जिस से सच्चा अर्थ उसको नहीं भान हुआ। और चैत्य साधु का नाम कहते हो सो तो **जैनेंद्रव्याकरण, हैमीकोष, अन्य व्याकरण, कोष**, तथा **सिद्धांत** वगैरह किसी भी ग्रंथ में चैत्य शब्द का अर्थ साधु नहीं है। ऐसा धातु भी कोई नहीं है कि जिससे चैत्य शब्द साधु वाचक हो। तो जेठमल ने यह अर्थ किस आधार से किया ? परंतु इससे क्या ! जैसे कोई कुंभार, अथवा हजाम (नाई) जवाहिर के परीक्षक जौहरी को झूठा कहे, तो क्या बुद्धिमान पुरुष उस कुंभार, वा हजाम को जौहरी मान लेंगे ? कदापि नहीं, वैसे ही ज्ञानवान् पूर्वाचार्यों के किये गये अर्थ को असत्य ठहरा के अक्षरज्ञान से भी भ्रष्ट जेठमल के किये अर्थ को सम्यक् दृष्टि पुरुष सत्य नहीं मानेंगे। [१]इस

१ पूर्वाचार्यों ने जैनसिद्धातो में चैत्य शब्द का अर्थ ऐसे प्रतिपादन किया है-तथा हिः -
अरिहंतचेइयाणंति अशोकाद्यष्टमहाप्रातिहार्यरूपां पूजामर्हन्तीत्यर्हन्तस्तीर्थकरास्तेषां चैत्यानि प्रतिमालक्षणानि अर्हच्चैत्यानि इयमत्र भावना चित्तमन्तःकरणं तस्य भावे कर्मणि वा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वास्ते भोले लोगों को अपने फंदे में फंसाने के वास्ते जितना उद्यम करते हो उस से अन्य तो कुछ नहीं परंतु अनंत संसार रुलने का फल मिलेगा । तथा ढूंढकों को हम पूछते हैं कि आनंद श्रावक ने अन्य तीर्थी के देव के चारों निक्षेपे को बंदना त्यागी है कि केवल भाव निक्षेपा ही त्यागा है ? यदि कहोगे कि अन्य तीर्थी के देव के चारों निक्षेपे को वंदना करनी त्यागी है तो अरिहंत देव के चारों निक्षेपे वंदनीय ठहरे, यदि कहोगे कि अन्य तीर्थी के देव के भावनिक्षेपे को ही वंदने का त्याग किया है तो उन के अन्य तीन निक्षेप अर्थात् अन्य तीर्थी के देव की मूर्त्ति वगैरह आनंद श्रावक को वंदनीय ठहरेंगे । इस वास्ते सोचविचार के काम करना । जेठमल लिखता हैं" जिन प्रतिमा का आकार जुदी तरह का है इस वास्ते अन्य तीर्थी उस को अपना देव किस तरह माने ? "उत्तर-श्रीपार्श्वनाथ की प्रतिमा को अन्य दर्शनी बद्रीनाथ कर के मानते हैं, शांतिनाथ की प्रतिमा को अन्य दर्शनी जगन्नाथ कर के मानते हैं, कांगडे के किले में ऋषभदेव की प्रतिमा को कितनेक लोग भैरव कर के मानते हैं; तथा पहिले की प्रतिमा होवे जो कि कालानुसार किसी कारण से किसी ठिकाने जमीन में भंडारी हो वह जगह कोई अन्य दर्शनी मोल ले और जब वह प्रतिमा उस जगह में से उस को मिलती है तो अपने घरमें से प्रतिमा के निकाल ने से वह अपने ही देव की समझ कर आप अन्य दर्शनी होते हुए भी उस प्रतिमा की अर्चा-पूजा करता है, और अपने देव तरीके मानता है, इस वास्ते जेठमल का लिखना कि अन्य दर्शनी जिन प्रतिमा को अपना देव कर के नहीं मान सकते हैं सो बिलकुल असत्य है ।

फिर लिखा है कि " चैत्य का अर्थ प्रतिमा करोगे तो उस पाठ में आनंद श्रावक ने कहा कि अन्य तीर्थी को, अन्य तीर्थी के देव को और अन्य तीर्थी की ग्रहण की जिन प्रतिमा को बांदूं नहीं, बुलाऊं नहीं, दान देऊं नहीं, सो कैसे मिलेगा ? क्योंकि जिन प्रतिमा को बुलाना और दान देना ही क्या ? " उत्तर-अरे ढूंढको ! सिद्धांत की शैली ऐसी है कि जिसको जो संभवे उसके साथ सो जोडना, अन्यथा बहुत ठिकाने अर्थ का अनर्थ हो जावे, इस वास्ते वंदना नमस्कार तो अन्य तीर्थी आदि सब के साथ जोडना, और दानादिक अन्य तीर्थी के साथ जोडना, परंतु प्रतिमा के साथ नहीं जोडना, जैसे

वर्णदृढादिलक्षणे घञि कृते चैत्यं भवति तत्रार्हतां प्रतिमाः प्रशस्तसमाधिचित्तोत्पादनादर्हच्चैत्यानि भण्यंते इत्यावशकसूत्रपंचमकायोत्सर्गाध्ययने ।।

तथा अरिहंतचेइयाणि तेसिं चेव पडिमाओ तथा चिति संज्ञाने संज्ञानमुत्पाद्यते काष्ठकर्मादिषु प्रतिकृतिं दृष्ट्वा जहा अरिहंत पडिमा एसा इत्यावश्यकसूत्रचूर्णौ ।।

चितेर्लेप्यादिचयनस्य भावः कर्म वा चैत्यं तच्चसंज्ञाशब्दत्वात् देवताप्रतिबिम्बे प्रासद्धं ततस्तदाश्रयभूतं यद्देवताया गृहं तदप्युपचाराच्चैत्य-मिति सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तौ द्वितीयदले ।। चित्तस्य भावाः कर्माणि वा वर्णदृढादिभ्यः ष्यण्वेति ष्यञ्जि चैत्यानि जिनप्रतिमास्ता हि चन्द्रकान्त सूर्यकान्त-मरकत-मुक्ता-शैलादि-दलनिर्मिता अपि चित्तस्य भावेन कर्मणा वा साक्षात्तीर्थंकरबुद्धिं जनयन्तीति चैत्यान्यभिधीयन्ते इति प्रवचनसारोद्धारवृत्तौ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीप्रश्न व्याकरणसूत्र में तीसरे महाव्रत के आराधने निमित्त आचार्य, उपाध्याय, प्रमुख की वस्त्र, पात्र, आहारादिक से वैयावृत्य करने का कहा है । सो जैसे सर्व की एक सरिखी रीति से नहीं परंतु जैसे जिसकी उचित हो और जैसा संभव हो वैसे उसकी वैयावच्च समझने की है । वैसे इस पाठ में भी बुलाऊं नहीं, अन्नादिक देऊं नहीं, यह पाठ अन्य तीर्थी के गुरु के ही वास्ते है । यदि तीनों पाठ की अपेक्षा मानोगे तो श्रीमहावीरस्वामी के समय में अन्य तीर्थी के देव हरि, हर, ब्रह्मा वगैरह कोई साक्षात् नहीं थे । उनकी मूर्तियां ही थी; तो तुम्हारे करे अर्थानुसार आनंद श्रावक का कहना कैसे मिलेगा ? सो विचार लेना ! कदापि तुम कहोगे कि कुछ देवियां अन्नादिक लेती हैं । उनकी अपेक्षा यह पाठ है तो यह भी ठीक नहीं है । क्योंकि देवी की भी स्थापना अर्थात् मूर्ति के पास ही अन्नादिक चढाते है । तो भी कदाचित् साक्षात् देवी देवता को किसी ढूंढक श्रावक श्राविका या जेठमल वगैरह ढूंढकों के मातापिताने अन्नादिक चढाया हो अथवा साक्षात् बुलाया हो तो बताओ ?

फिर जेठमल लिखता है कि " जिनप्रतिमा को अन्यमतिने अपने मंदिर में स्थापन कर लिया, तो उससे जिनप्रतिमा का क्या बिगड़ गया कि जिससे तुम उसको मानने योग्य नहीं कहते हो" उत्तर- यदि कोई ढूंढकनी या किसी ढूंढक की बेटी या कोई ढूंढक का साधु मदिरा पीने वाली, मांस खाने वाली, कुशील सेवने वाली वेश्या के घर में अथवा मांसादि बेचने वाले कसाई के घर में जार हे, तो तुम ढूंढक उसको जा के वंदना करो कि नहीं ? अथवा न्यात में लोगे कि नहीं ? यदि कहोगे कि न वंदना करेंगे और न न्यात में लेंगे तो ऐसे ही जिनप्रतिमा संबंधित समझ लेना ।

फिर जेठमल ने लिखा है कि " तुम्हारे साधु अन्य तीर्थी के मठ में उतरे हो तो तुम्हारे गुरु खरे या नहीं? " उत्तर - अरे बुद्धि के दुश्मनो ! ऐसे दृष्टांत लिख के बेचारे भोले भद्रिक जीवों को फँसाने का क्यों करते हो ? अन्य तीर्थी के आश्रम में उतरने से वह साधु अवंदनीय नहीं हो जाते हैं । क्योंकि वह स्वेच्छा से वहाँ उतरे हैं, और स्वेच्छा से ही वहाँ से विहार करते हैं । और उन साधुओं को अन्य दर्शनियों ने अपने गुरु रूप नहीं माना है । वैसे ही अन्य तीर्थियों की ग्रहण की जिनप्रतिमा में से जिनप्रतिमात्व चला नहीं जाता है, परंतु उस स्थान में वह वंदने पूजने योग्य नहीं है ऐसे समझना ।

पुनः जेठमलने लिखा है कि "द्रव्य लिंगी पासत्था वेषधारी निन्हव प्रमुख को किस बोल में आनंदने वोसराया है ? "उत्तर -

साधु दीक्षा लेता है तब `**करेमि भंते**' कहता है, और पांच महाव्रत उचरता है उस को भी पासत्था, वेषधारी, निन्हव आदि को वंदना नमस्कार करने का त्याग होना चाहिये सो पांच महाव्रत लेने समय उसने उनका त्याग किस बोल में किया है सो बताओ ? परंतु अरे अक्कल के दुश्मनो ! सम्यग्दृष्टि श्रावकों को जिनाज्ञा से बाहिर ऐसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पासत्थे, वेषधारी, निन्हव आदि को वंदना नमस्कार करने का त्याग तो है ही । यह बाबत पाठ में नहीं कहा तो इस में क्या विरोध है ? प्रश्न के अंत में जेठमल ने लिखा है कि "आनंद श्रावक ने अरिहंत के चैत्य तथा प्रतिमा को वंदना की हो तो बताओ" इस का उत्तर-प्रथम तो पूर्वोक्त पाठ से ही उसने अरिहंत की प्रतिमा की वंदना पूजा की है; ऐसे सिद्ध होता हैं; तथा **श्रीसमवायांगसूत्र** में सूत्रों की हुंडी है उस में **श्रीउपासकदशांग सूत्र** की हुंडी में कहा है कि -

से किं तं उवासगदसाओ उवासगदसासूणं उवासयाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणखंडा रायाणो अम्मापियरो समोसरणाधम्मायरिया ।।

अर्थ - उपासकदशांग में क्या कथन है ? उत्तर-उपासकदशांग में श्रावकों के नगर, उद्यान, `चेइआइं' चैत्य अर्थात् मंदिर, वनखंड, राजा, माता, पिता, समोसरण, धर्माचार्यादिकों का कथन है ।

इससे समझना कि आनंदादि दश श्रावकों के घर में जिनमंदिर थे और उन्हो ने जिनमंदिर कराये भी थे, और वह पूजा वंदना आदि करते थे, यद्यपि **उपासक दशांग में** यह पाठ नहीं है । क्योंकि पूर्वाचार्यों ने सूत्रों को संक्षिप्त कर दिया है । तथापि **समवायांगजी** में तो यह बात प्रत्यक्ष है । इस वास्ते जरा ध्यान दे कर शुद्ध अंतःकरण से खोज करोगे तो मालूम हो जावेगा कि आनंदादि अनेक श्रावकों ने जिन प्रतिमा पूजी है सो सत्य है । इति ।

१७. अंबड श्रावक ने जिनप्रतिमा वांदी है :

१७वें प्रश्नोत्तर में जेठमलने अंबड तापस के अधिकार का पाठ आनंद श्रावक के पाठ के सदृश ठहराया है सो असत्य है इस लिये **श्रीउववाइसूत्र** का पाठ अर्थसहित लिखते हैं - तथाहिः -

अंबडस्सणं परिवायगस्स नो कप्पइ अण्णउत्थिए वा अण्णउत्थियदेवयाणी वा अण्णउत्थियपरिग्गहियाइं अरिहंत चेइयाइं वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा णण्णत्थ अरिहंते वा अरिहंतचेइआणि वा ।।

अर्थ - अंबड परिव्राजक को न कल्पे अन्य तीर्थी, अन्य तीर्थी के देव और अन्य तीर्थी के ग्रहण किये अरिहंत चैत्य जिनप्रतिमा को वंदना, नमस्कार करना, परंतु अरिहंत ओर अरिहंत की प्रतिमा को वंदना नमस्कार करना कल्पे[१] ।

इस पूर्वोक्त पाठ को आनंद के पाठ के सदृश जेठमल ठहराता है परंतु आनंद गृहस्थी था और अंबड संन्यासी अर्थात् परिव्राजक था, इस वास्ते इन दोनों का पाठ एक सरिखा नहीं हो सकता । तथा आनंद का पाठ हमने पूर्व लिखा दिया है ।

१ टीका - अन्नउत्थिएवत्ति अन्ययूथिका अर्हत्संघापेक्षया अन्ये शाक्यादयः चेइयाइंति अर्हच्चैत्यानि जिनप्रतिमा इत्यर्थ णण्णत्थ अरिहंतेवत्ति न कल्पते इह यो यं नेति प्रतिषेधः सोन्यत्रार्हभ्यः अर्हतो वर्जयित्वेत्यर्थः स हि किल परिव्राजक वेषधारकोऽतोऽन्ययूथिक देवता वन्दनादिनिषेधे अर्हतामपि वन्दनादि निषेधो माभूदितिकृत्वा णण्णत्थे त्याद्यधीतम् ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके साथ इस पाठ को मिलाने से मालूम हो जावेगा कि आनंद के पाठ में अन्य दर्शनी को अशन, पान, खादम, स्वादम देना नहीं, वारंवार देना नहीं, बिना बुलाये बुलाना नहीं, वारंवार बुलाना नहीं, यह पाठ है; और इस में वह पाठ नहीं है क्योंकि अंबड परिव्राजक था, और अन्य तीर्थी अंबड को गुरु कर के मानते थे, इस वास्ते उस से अन्यदर्शनी को बुलाने वगैरह का त्याग नहीं हो सके, तथा आनंद के पाठ में श्रमण निर्ग्रंथ को अशनादिक देने का पाठ है, सो इस पाठ में बिलकुल नहीं है, क्योंकि अंबड परिव्राजक था । सो परघर में भिक्षावृत्ति से जीमता था, तो अशन, पान, खादम, स्वादम वगैरह श्रमण निर्ग्रंथ को कहां से देवे ? तथा आनंद के पाठ में किस को वंदना नमस्कार करना सो पाठ बिलकुल नहीं है, और इस पाठ में अरिहंत, और अरिहंत की प्रतिमा को वंदना नमस्कार करने का पाठ है । इतना बडा फेर है तो भी जेठमल दोनों पाठों को एक सरीखा ठहराता है सो मिथ्यात्व का उदय है, तथा चैत्य शब्द का अर्थ अकल के दुश्मन जेठमल ने साधु किया है, सो बिलकुल असत्य है, यह बात दृष्टांत पूर्वक आनंद के पाठ में हमने सिद्ध कर दी है ।

फिर जेठमल लिखता है कि "चैत्य का अर्थ प्रतिमा मानोगे तो गुरु को वंदना का पाठ कहां है सो दिखाओ" उत्तर - अन्य तीर्थी के गुरु का जब त्याग किया तब जैनमत के साधु वांदने योग्य रहे, यह अर्थापत्ति से ही सिद्ध होता है । जैसे किसी श्रावक ने रात्रीभोजन का त्याग किया तो उसको दिन में भोजन करने का खुला रहा कि नहीं? किसी योगी ने वस्ती में रहने का त्याग किया तो उसको वन में रहने का खुला रहा कि नहीं ? किसी सम्यग्दृष्टि पुरुष ने जिनाज्ञा के उत्थापक जानके ढूंढकों का त्याग किया तो उसको जिनाज्ञा में वर्तने वाले सुसाधु वंदना करने योग्य रहे कि नहीं ? जरूर ही रहे । ऐसे ही अन्य दर्शनी के गुरु का त्याग किया तब जैनदर्शन के गुरु तो वंदने योग्य ही रहे । इस वास्ते ऐसी कुतर्क करना सो निष्फल ही है । फिर जेठमल ने लिखा है कि "अबंड साधु को वांदता था "सो असत्य है, यद्यपि अंबड शुद्ध श्रद्धावान् श्रावक होने से जैनमत के साधुको वांदने योग्य श्रद्धता था । तथापि आप संन्यासी तापसों का वेषधारी परिव्राजकाचार्य था, और अन्यमती उसको गुरुबुद्धि से पूजते थे । इस वास्ते क्षमाश्रमणपूर्वक साधु को वंदना नहीं करता था । और इसी वास्ते सूत्र में `णणित्थ अरिहंते वा अरिहंतचेइयाणि वा' यह पाठ दोबारा लिखा है, और आनंद गृहस्थी था । उस को पूर्वोक्त तीनों वस्तुओं के प्रतिपक्षी को वंदना करनी उचित थी । इस वास्ते दोबारा पाठ सूत्र में नहीं लिखा है ।

जेठमल ने लिखा है कि "अंबड साधु को अशनादिक देता था" सो भी असत्य है, क्योंकि यह बात उस के पाठ में लिखी नहीं है । तथा वह आप ही पर घर में जीमता था तो साधु को अशनादि कहां से देवे ? जैसे ढूंढक लोग आप ही जिनाज्ञा के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्थापक होने से भवसमुद्र में डूबने बाले हैं, तो वह दूसरों को कैसे तार सकें ? यह दृष्टांत समझ लेना ।

फिर जेठमल लिखता है कि "अंबड के बारह व्रत सूत्रपाठ में कहे हैं" सो भी असत्य है । जैसे आनंद के बारह व्रत कहे हैं, वैसे अंबड के व्रत किसी जगह भी सूत्र में नहीं कहे हैं; यदि कहे हैं तो सूत्रपाठ दिखाओं[१] ।

प्रश्न के अंत में जेठमल जैन दर्शनियों को मिथ्यात्व मोहनी कर्म का उदय लिखता है, सो आप उस को ही है, और इसी वास्ते उसने पूर्वोक्त असत्य लिखा है ऐसे सिद्ध होता है । जैसे कोई एक पुरुष शीघ्रता में घृत खरीदने को जाता था, चलते हुए उस को तृषा लगी, इतने में किसी औरत के पास रास्ते में उस ने पानी देखा, तब वह वोला कि मुझे `घृत' पिला । यद्यपि उस को पीना तो पानी था परंतु अंतःकरण में घृत ही घृत का ख्याल होने से वैसे बोला गया । ऐसे ही जेठमल को भी मिथ्यात्व मोहनी का उदय था, जिस से उसने ऐसे लिख दिया है, ऐसे निश्चय समझना । इति ।

१८. सात क्षेत्र में धन खरचना कहा है :

(१८) वें प्रश्नोत्तर में जेठमल ने लिखा है कि "सात क्षेत्र किसी ठिकाने सूत्र में नहीं कहे हैं" उत्तर - **भत्तपच्चक्खाण पइन्ना सूत्र** के मूलपाठ में (१) जिनबिंब, (२) जिनभवन, (३) शास्त्र, (४) साधु, (५) साध्वी, (६) श्रावक, (७) श्राविका, ये सात क्षेत्र कहे हैं । सो क्या ढूंढक नहीं जानते हैं ? यदि कहोगे कि हम यह सूत्र नहीं मानते हैं, तो **नंदिसूत्र** क्यों मानते हो ? क्योंकि **श्रीनंदिसूत्र** में इस सूत्र का नाम लिखा हैं । [१] इस वास्ते भत्तपच्चक्खा२ **पइन्ना** सूत्रानुसार सात क्षेत्र में गृहस्थी को धन खरचना सो ही फलदायक है [२] ।

१ आनंद श्रावक के भी बारह व्रत **उपासकदशांगसूत्र** के मूलपाठ में खुलाया नहीं हैं ।

२ **श्रीभत्तपच्चक्खाण** सूत्र का पाठ यह है :-
अनियाणोदारमणो हरिसवसविसदकंबुयकरालो ।
पूएई गुरु संघं साहम्मी अमाइ भत्तीए ।।३०।।
निअदव्वमउव्वजिणिंद भवण जिणबिंब वरपइट्ठासु ।
विअरइ पसत्थ पुत्थय सुतित्थ तित्थयर पूआसु ।।३१।।
तथा **अध्यात्मकल्पद्रुम** नामा शास्त्र में धर्म में धन लगाना ही सफल कहा है तथाहिः-
क्षेत्रवास्तु धनधान्य गवाष्वैर्मेलितैः सनिधिभिस्तनुभाजां ।
क्लेशपापनरकाभ्यधिकः स्यात् को गुणो यदि न धर्मनियोगः ।।
क्षेत्रेषु नो वपसि यत्सदपि स्वमेत द्यातासितत्परभवे किमिदं गृहीत्वा तस्यार्जनादिजनिताघचयार्जिता ते भावी कथं नरकदुःखभराज्ञ मोक्षः
तथा **श्रीठाणांगसूत्र** के चौथे ठाणे के चौथे उद्देश में श्रावक शब्द का अर्थ टीकाकार महाराजने किया है, उसमें भी सात क्षेत्र में धन लगाने से श्रावक बनता है, अन्यथा नहीं, तथाहि :-
श्रान्ति पचन्ति तत्त्वार्थ श्रद्धानं निष्ठां नयन्तीति श्रास्तथा वपन्ति गुणवत्सप्तक्षेत्रेषु धनबीजानि निक्षिपन्तीति वास्तथा किरन्ति क्लिष्टकर्मरजो विक्षिपन्तीति कास्ततः कर्मधारये श्रावका इति भवति ।। यदाहः श्रद्धालुतां श्राति पदार्थ चिन्तनाद्धनानि पात्रेषु वपत्यनारतं । किरत्यपुण्यानि सुसाधु सेवनादथापि तं श्रावकमाहुरंजसा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जेठमल लिखता है कि "आनंदादिक श्रावकों ने व्रत आराधे, पडिमा अंगीकार की, संथारा किया, यह सर्व सूत्रों में कथन है, परंतु कितना धन खरचा और किस क्षेत्र में खरचा सो नहीं कहा है ।"

उत्तर - अरे भाई ! सूत्र में जितनी बात की प्रसंगोपात्त जरूरत थी, उतनी कही है, और दूसरी नहीं कही है, और जो तुम बिना कही कुल बातों का अनादर करते हो तो आनंदादिक दश ही श्रावकों ने किस मुनि को दान दिया, वह किस मुनि को लेने के वास्ते सामने गये, किस मुनि को छोडने वास्ते गये, किस रीति से उन्हों ने प्रतिक्रमण किया इत्यादि बहुत बातें जो कि श्रावकों के वास्ते संभवित हैं कही नहीं हैं, तो क्या वह उन्हों ने नहीं की हैं ? नहीं, जरूर की हैं, वैसे ही धन खरचने संबंधी बात भी उसमें नहीं कही है, परंतु खरचा तो जरूर ही है, और हम पूछते हैं कि आनंदादि श्रावकों ने कितने उपाश्रय कराये सो बात सूत्रों में कही नहीं है, तथापि तुम ढूंढक लोग उपाश्रय कराते हो सो किस शास्त्रानुसार कराते हो सो दिखाओ[१] !

और जेठमल लिखता है कि "आनंदादिक श्रावकों ने संघ निकाला, तीर्थयात्रा करी, मंदिर बनवाये, प्रतिमा प्रतिष्ठी वगैरह बातें सूत्र में होवे तो दिखाओ" उत्तर - आनंदादिक श्रावकों के जिनमंदिरों का अधिकार **श्रीसमवायांगसूत्र** में है, **आवश्यक-सूत्र** में तथा **योगशास्त्र** में श्रेणिक राजा के बनवाये जिनमंदिर का अधिकार है, वग्गुर श्रावक ने श्री मल्लिनाथजी का मंदिर बंधाया सो अधिकार **श्रीआवश्यकसूत्र** में है, तथा उसी सूत्र में भरतचक्रवर्त्ती के अष्टापद पर्वत पर चौबीस जिनबिंबस्थापन कराने का अधिकार है, इत्यादि अनेक जैनशास्त्रों में कथन है, तथापि जैसे नेत्र विना के आदमी को कुछ नहीं दिखता है । वैसे ही ज्ञानचक्षु बिना के जेठमल और उसके ढूंढकों को भी सूत्रपाठ नहीं दिखता है, तथा जेठमल ने कुयुक्तियों कर के सात क्षेत्र उथापे हैं उनका अनुक्रम से उत्तर - १ - २ क्षेत्र जिनबिंब तथा जिनभवन - इसकी बाबत जेठमल ने लिखा है कि "मंदिर प्रतिमा तो पहिले थे ही नहीं और जो थे ऐसे कहोगे तो किसने कराये वगैरह अधिकार सूत्रमें दिखाओ" इस का उत्तर प्रथम हमने लिख दिया है, और उस से दोनों क्षेत्र सिद्ध होते हैं ।

३ क्षेत्रशास्त्र-इसकी बाबत जेठमल लिखता है कि "पुस्तक तो महावीरस्वामी के पीछे (९८०) वर्षे लिखे गये हैं । इस से पहिले तो पुस्तक ही नहीं थी, तो पुस्तक के

तथा **श्रीदानकुलक** में सात क्षेत्र में बीजा धन यावत् मोक्षफल का देने वाला कहा है:- तथाहि :-

जिणभवणबिंब पुत्थय संघसरूवेसु सत्त खित्तेसु ।
ववि अं धणंपि जायइ सिवफलयमहो अणंतगुणं ।।२०।।

इत्यादि अनेक शास्त्रों में सप्तक्षेत्र विषयिक वर्णन है, परंतु ज्ञानदृष्टि विना कैसे दिखे !

१ पंजाब देश में थानक, जैनसभा वगैरेह नाम से मकान बनाये जाते है; जिन के निमित्त थानक, या जैनसभा, या धर्म के नाम से चढावा भी लोगों से लिया जाता है ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निमित्त द्रव्य निकालने का क्या कारण ?" उत्तर - इस बात का निर्णय प्रथम हम कर आए हैं, तथा **श्रीअनुयोगद्वारसूत्र** में कहा है कि "**दव्वसुयं जं पत्तय पुत्थय लिहियं**" द्रव्यश्रुत सो जो पाने पुस्तक में लिखा हुआ है[१], इस से सूत्रकार के समय में पुस्तक लिखे हुए सिद्ध होते हैं, तथा तुम्हारे कहे मुताबिक उस समय बिलकुल पुस्तक लिखे हुए थे ही नहीं तो श्रीऋषभदेव स्वामी की सिखलाई अठारह प्रकार की लिपि का व्यवच्छेद हो गया था ऐसे सिद्ध होगा और सो बिलकुल झूठ है, और जो अक्षरज्ञान उस समय हो ही नहीं तो लौकिक व्यवहार कैसे चले ? अरे ढूंढको ! इस से समझो कि उस समय में पुस्तक तो फक्त सूत्र ही लिखे हुए नहीं थे और सो देवढ्ढी गणि क्षमाश्रमण ने लिखे हैं परंतु (९८०) वर्षे पुस्तक लिखे गये हैं । ऐसे तुम्हारे जेठमल ने लिखा है सो किस शास्त्रानुसार लिखा है ? क्योंकि तुम्हारे माने (३२) सूत्रों में तो यह बात है ही नहीं। ४-५मा क्षेत्र साधु, और साध्वी इसकी बाबत जेठमल ने लिखा है कि "साधु के निमित्त द्रव्यनिकाल के उसका आहार, उपधि, उपाश्रय, करावे तो सो साधु को कल्पे नहीं, तो उस निमित्त धन निकालने का क्या कारण ? इस बात पर **श्रीदशवैकालिक, आचारांग, निशीथ** वगैरह सूत्रों का प्रमाण दिया है" उस का उत्तर - साधुसाध्वी के निमित्त किया आहार, उपधि, उपाश्रय प्रमुख उनको कल्पता नही है, सो बात हम भी मान्य करते हैः साधु अपने निमित्त बना नहीं लेते हैं और सुज्ञ श्रावक देते भी नहीं है । परंतु श्रावक अपनी शुद्ध कमाई के द्रव्य में से साधु, साध्वी को आहार, उपधि, वस्त्र, पात्र आदि से प्रतिलाभते हैं, परंतु साधु साध्वी के निमित्त निकाले द्रव्य में से प्रतिलाभते नहीं हैं, और साधु लेते भी नहीं हैं । इन दो क्षेत्र के निमित्त निकाला द्रव्य तो किसी मुनि को महाभारत व्याधि हो गया हो । उस के हटाने वास्ते किसी हकीम आदि को देना पडे, अथवा किसी साधु ने काल किया हो उस में द्रव्य खरचना पडे इत्यादि अनेक कार्यो में खरचा जाता है तथा पूर्वोक्त काम में भी जो धनाढ्य श्रावक होते हैं तो वे अपने पास से ही खरचते हैं, परंतु किसी गाम में शक्ति रहित निर्धन श्रावक रहते हो और वहां ऐसा कार्य आ पडे तो उस में से खरचा जाता है ।

६ - ७ मा क्षेत्र श्रावक, और श्राविका इनकी बाबत जेठमल लिखता है कि "पुण्यवान् हो सो खैरात का दान ले नहीं" परंतु अकल के बारदान ढूंढक भाई ! समझो

१ अनुयोगद्धारसूत्र के पाठ की टीका

- तृतीयभेद परिज्ञानार्थमाह से किं तमित्यादि अत्र निर्वचनं जाणगसरीर भवियसरीर वइरित्तं दव्वसुतमित्यादि यत्र ज्ञशरीर भव्यशरीरयोः संबंधिअनन्तरोक्तस्वरूपं न घटते तत्ताभ्यां व्यतिरिक्तं भिन्नं द्रव्यश्रुतं किं पुनस्तदित्याह पत्तयपुत्थय लिहियंति पत्रकाणि तलतालादिसंबंधीनि तत्संघातनिष्पन्नास्तु पुस्तकास्ततश्च पत्रकाणि च पुस्तकाश्च तेषु लिखितं पत्रकपुस्तक लिखितं अथवा पोत्थयंति पोतं वस्त्रं पत्रकाणि च पोतंच तेषु लिखितं पत्रकपोत लिखितं ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतं अत्र च पत्रकादि लिखितश्रुतस्य भावश्रुत कारणत्वात् द्रव्यत्वमवसेयमिति ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो सही सब जीव एक सरीखे पुण्यवान् नहीं होते हैं, कोई गरीब कंगाल भी होते हैं कि जिन को खानेपीने की भी तंगी पडती है । तो वैसे गरीब सधर्मी को द्रव्य देकर मदद करनी । उन को आजीविका में सहायता देनी यह धनाढ्य श्रावकों का फरज है । इस वास्ते धनी गृहस्थी अपने सहधर्मियों को मदद करते हैं । और जो अपने में शक्ति न हो तो उस क्षेत्र निमित्त निकाले धन में से सहायता करते हैं और सहधर्मी को सहायता करे, यह कथन **श्रीउत्तराध्ययनसूत्र** के अठाईसवें अध्ययन में है[१] ।

जेठमल लिखता है कि "श्रावक दीन अनाथ को अंतराय दे नहीं " यह बात सत्य है, परंतु पूर्वोक्त लेख को विचार के देखोगे तो मालूम हो जावेगा कि इस से दीन अनाथ को कोई अंतराय नहीं होती है, तथा इस रीति से श्रावकों को दिया द्रव्य खैरायत का भी नहीं कहाता है । ऊपर के लेख से शास्त्रों में सात क्षेत्र कहे हैं । उन में द्रव्य लगाने से अच्छे फलकी प्राप्ति होती है, और सुश्रावकों का द्रव्य उन क्षेत्रों में खरच होता था, और हो रहा है, ऐसे सिद्ध होता है ।

इस प्रसंग में जेठमल ने **श्रीदशवैकालिकसूत्र** की यह गाथा लिखी है - तथाहिः

पिंडं सिज्जं च वत्थं च चउत्थं पायमेव य ।
अकप्पियं न इच्छिज्जा पडिग्गाहिं च कप्पियं ।।४८।।

इस श्लोक का अर्थ प्रकट रूप से इतना ही है कि आहार, शय्या, वस्त्र और चौथा पात्र यह अकल्पनिक लेने की इच्छा न करे, और कल्पनिक ले लेवे । तथापि जेठमल ने दंडे को अकल्पनिक ठहराने वास्ते पूर्वोक्त श्लोक के अर्थ में `दंडा' यह शब्द लिख दिया है और उस से भी जेठमल दंडे को अकल्पनिक सिद्ध नहीं कर सका है । बल्कि जेठमल के लिखने से ही अकल्पनिक दंडे का निषेध करने से कल्पनिक

---

१ श्रीउत्तरायध्ययन सूत्र का पाठ यह है :-

निस्संकिय निक्कंखिय निव्वितिगिच्छा अमूढ दिट्ठीय ।
उववूह थिरीकरणे वच्छल्ल पभावणे अट्ठ ।। ३१ ।।

टीका - निःशंकितं देशतःसर्वतश्चशंकारहितत्वं पुनर्निःकांक्षितत्वं शाक्याद्यन्यदर्शनग्रहणवाञ्छारहितत्वं निर्विचिकित्स्यं फलं प्रति सन्देहकरणं विचिकित्सा निर्गता विचिकित्सा निर्विचिकित्सा तस्य भावो निर्विचिकित्स्यं किमेतस्य तपः प्रभृतिक्लेशस्य फलं वर्त्तते नवेति लक्षणं अथवा विदन्तीति विदः साधवस्तेषां विजुगुप्सा किमेते मल मलिनदेहाः अचित्तपानीयेन देहं प्रक्षालयतां को दोषः स्यादित्यादि निन्दा तदभावो निर्विजुगुप्सं प्राकृतार्षत्वात्सूत्रे निर्विचिकित्स्यं इति पाठः । अमूढा दृष्टि रमूढदृष्टि ऋद्धिमत्कुतीर्थिकानां परिव्राजकादिनामृद्धिं द्रष्ट्वा अमूढा किमस्माकं दर्शनं यत्सर्वथादरिद्राभिभूतं इत्यादि मोहरहिता दृष्टिर्बुद्धिरमूढदृष्टिः । यत्परतीर्थिनांभूयसीमृद्धिं दृष्ट्वापि स्वकीयेऽकिञ्चने धर्मे मतेः स्थिरीभावः । अयं चतुर्विधोप्याचार अन्तरंग उक्तोऽथबाह्याचारमाह । उपबृंहणा दर्शनादिगुणवतां प्रशंसा पुनः स्थिरीकरणं धर्मानुष्ठानं प्रति सीदतां धर्मवतां पुरुषाणां साहाय्यकरणेन धर्मेस्थिरीकरणं पुनर्वात्सल्यं साधर्मिकाणां भक्तपानाद्यैर्भक्तिकरणं पुनः प्रभावना च स्वतीर्थोन्नतिकरणमेतेऽष्टौ आचाराः सम्यक्त्वस्य ज्ञेया इत्यर्थः ।।३१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंडा साधु को ग्रहण करना सिद्ध हो गया । आहार, शय्या, वस्त्र, पात्रवत् । तो भी साधु को दंडा रखना सूत्र अनुसार है, सो ही लिखते हैं -

श्रीभगवतीसूत्र में विधिवादसे दंडा रखना कहा है सो पाठ प्रथम प्रश्नोत्तर में लिखा है ।

श्रीओघनिर्युक्तिसूत्र में दंडे की शुद्धता निमित्त तीन गाथा कही हैं ।

श्रीदशवैकालिक सूत्र में विधिवाद से `दंडगंसि वा' इस शब्द कर के दंडा पडिलेहना कहा है ।

श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्र में पीठ, फलक, शय्या, संथारा, वस्त्र, पात्र, कंबल, दंडा, रजोहरण, निषद्या, चोलपट्टा, मुखवस्त्रिका, पाद प्रोंछन इत्यादि मालिक के दिये बिना अदत्तादान, साधु ग्रहण न करे, ऐसे लिखा है । इससे भी साधु को दंडा ग्रहण करना सिद्ध होता है । अन्यथा बिना दिये दंडे का निषेध शास्त्रकार क्यों करते ? **श्रीप्रश्न व्याकरणसूत्र** का पाठ यह है ।

अवियत्त-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारग-वत्थ-पाय-कंबल-दंडगर-औहरण-निसेज्जं चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पादपुंछणादि भायणं भंडोवहिउवगरणं ।।

इत्यादि अनेक जैनशास्त्रों में दंडे का कथन है, तो भी अज्ञानी ढूंढक बिना समझे बिलकुल असत्य कल्पना कर के इस बात का खंडन करते हैं । (जो कि किसी प्रकार भी हो नहीं सकता है) सो केवल उनकी मूर्खता का ही सूचक है । प्रश्न के अंत में जेठमल ढूंढकने "सात क्षेत्रों में धन खरचाते हो । उस से चहुट्टे के चोर होते हो" ऐसा महा मिथ्यात्व के उदय से लिखा है । परन्तु उस का यह लिखना ऊपर के दृष्टांतों से असत्य सिद्ध हो गया है । क्योंकि सूत्रों में सात क्षेत्रों में द्रव्य खरचना कहा है, और इसी मुताबिक प्रसिद्ध रीते श्रावक लोग द्रव्य खरचते हैं, और उस से वह पुण्यानुबंधि पुण्य बांधते हैं, इतना ही नहीं, बल्कि बहुत प्रशंसा के पात्र होते हैं । यह बात कोई छिपी हुई नहीं है परन्तु असली तहकीकात करने से मालूम होता है कि चौटे के चोर तो वही हैं जो सूत्रों में कही हुई बातों को उत्थापते हैं । सूत्रों को उत्थापते हैं, अर्थ फिरा लेते हैं शास्त्रोक्त वेश को छोड के विपरीत वेश में फिरते है । इतना ही नहीं परन्तु शासन के अधिपति श्रीजिनराज के भी चोर हैं और इस से इन को निश्चय राज्यदंड (अनंत संसार) प्राप्त होनेवाला है ।

१९. द्रौपदी ने जिनप्रतिमा पूजी है :

१९ वें प्रश्नोत्तर में द्रोपदी के जिनप्रतिमा पूजने का निषेध करने वास्ते जेठमल ने बहुत कुतर्क किये हैं, परन्तु वे सर्व झूठ है । इस वास्ते क्रम से उन के उत्तर लिखते हैं ।

श्रीज्ञातासूत्र में द्रौपदी ने जिनमंदिर में जा कर जिन प्रतिमा की (१७) सतरे भेदे पूजा की, नमोत्थुणं कहा, ऐसा खुलासा पाठ है- यत -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तएणं सा दोवइ रायवर कन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ मज्जणघर मणुप्पविसइ ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सुद्धपावेसाइं वत्थाइं परिहियाइं मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ जेणेव जिनघरे तेणेव उवागच्छइ जिनघरमणुपविसइ पणिसईत्ता आलोए जिणपडिमाणं पणामं करेइ लोमहत्थयं परामुसइ एवं जहा सुरियाभो जिणपडिमाओ अच्चेइ तहेव भाणियव्वं जाव धुवं डहइ धुवं डहइत्ता वामं जाणु अंचेइ अंचेइत्ता दाहिण जाणु धरणी तलंसि निहट्टु तिखुत्तो मुद्धाणं धरणी तलंसि निवेसेइ निवेसइत्ता इसिं पच्चुणमइ करयल जाव कट्टु एवं वयासि नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं वंदइ नमंसइ जिन घराओ पडिणिक्खमइ ।।

अर्थ - तब लो द्रौपदी राजवरकन्या जहां स्नान मज्जन करने का घर (मकान) है वहां आवे, मज्जनघर में प्रवेश करे, स्नान करके किया है बलिकर्म पूजाकार्य अर्थात् घर, देहरे में पूजा कर के कौतुक तिलकादि मंगल दधि दूर्वा अक्षतादिक सो ही प्रायश्चित्त दुःस्वप्नादि के घातक किये हैं जिसने शुद्ध और उज्ज्वल बडे जिनमंदिर में जाने योग्य ऐसे वस्त्र पहिन के मज्जनघर में से निकले । जहां जिनघर है वहां आवे, जिनघर में प्रवेश करे, कर के देखते ही जिनप्रतिमा को प्रणाम करे । पीछे मोरपीछी ले, लेकर जैसे सूर्याभ देवता जिन प्रतिमा को पूजे वैसे सर्व विधि जानना, सो सूर्याभका अधिकार यावत् धूप देने तक कहना । पीछे धूप दे के बामजानु (खब्बा गोडा) ऊंचा रखे, दाहिना जानु (सज्जा गोडा) धरती पर स्थापन करे, कर के तीन बार मस्तक पृथ्वी पर स्थापे, स्थाप के थोडी सी नीचे झुक के, हाथ जोड के, दशों नखों को मिला के मस्तक पर अंजलि कर के ऐसे कहे । नमस्कार होवे अरिहंत भगवंत प्रति यावत् सिद्धिगति को प्राप्त हुए हैं, यहाँ यावत् शब्द से संपूर्ण शक्रस्तव कहना, पीछे वंदना नमस्कार कर के जिनघर से निकले ।

पूर्वोक्त प्रकार के सूत्रों में कथन हैं तो भी मिथ्यादृष्टि ढूंढिये जिन प्रतिमा की पूजा नहीं मानते हैं । सो उनको मिथ्यात्वका उदय है ।

जेठमल ने लिखा है कि "किसीने वीतराग की प्रतिमा पूजी नहीं है और किसी नगरी में जिनचैत्य कहे नहीं है" इसका उत्तर- **श्रीउववाईसूत्र** में चंपानगरी में "**बहुला अरिहंत चेइयाइं**" अर्थात् बहुते अरिहंत के चैत्य हैं ऐसे कहा है, और अन्य सब नगरियों के वर्णन में चंपानगरी की भलावणा सूत्रकार ने दी है, तो इस से ऐसे निर्णय होता है कि सब नगरियों में महल्ले महल्ले चंपानगरी की तरह जिन मंदिर थे । तथा आनंद, कामदेव, शंख, पुष्कली प्रमुख श्रावकों तथा श्रेणिक, महाबल प्रमुख राजाओं की की गई पूजा का अधिकार सूत्रोमें बहुत जगह है । इस वास्ते जिस जगह पूजाका अधिकार है उस जगह जिनमंदिर तो है ही । इसमें कोई शक नहीं तथा उन श्रावकों के पूजा के अधिकार में "**कयबलि कम्मा**" शब्द खुलासा है । जिस का अर्थ स्वपर सब दर्शन में `देवपूजा' ही होता है । इस वास्ते बहुत श्रावकों ने जिन प्रतिमा पूजी है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और बहुत ठिकाने जिनमंदिर थे ऐसे खुलासा सिद्ध होता है ।

जेठमल ने लिखा है कि "फकत द्रौपदी ने ही पूजा की है और सो भी सारी उमर में एक ही वार की है" उत्तर - इस कुमति के कथन का सार यह है कि पूजा के अधिकार में स्त्री कही तो कोई श्रावक क्यों नहीं कहा ? अरे मूर्खों के भाई ! रेवती श्राविका ने औषध विहराया तो किसी श्रावक ने विहराया क्यों नहीं कहा ? तथा इस अवसर्पिणी में प्रथम सिद्ध मरुदेवी माता हुई । श्रीवीर प्रभु का अभिग्रह पांच दिन कम ६ महिने चंदनबाला ने पूर्ण किया । संगम के उपसर्ग से ६ महिने वत्सपाली बुढिया क्षीर से प्रभु को प्रतिलाभती हुई । तथा इस चौबीसी में श्रीमल्लिनाथजी अनंती चौबीसियां पीछे स्त्री रूपसे तीर्थंकर हुए, इत्यादिक बहुत बडे बडे काम इस चौबीसी में स्त्रियों ने किये है । प्रायः पुरुष तो शुभ कार्य करे उस में कया आश्चर्य है । परंतु स्त्रियों को करना दुर्लभ होता है । पुरुष को तो पूजा की सामग्री मिलनी सुगम है । परंतु स्त्री को मुश्केल है । इस वास्ते द्रौपदी का अधिकार विस्तार से कहा है । यदि स्त्री ने ऐसे पूजा की तो पुरुषों ने बहुत की हैं । इस में क्या संदेह है ? कुछ भी नहीं । और जो कहा है कि एक ही बार पूजा की कही है । पीछे पूजा की कही भी नहीं कही है । इस का उत्तर-प्रतिमा पूजनी तो एक बार भी कही है । परंतु द्रौपदी ने भोजन किया ऐसे तो एक वार भी नहीं कहा है तो तुम्हारे कहे मुजिब तो उस ने खाया भी नहीं होगा ! तथा तुंगीया नगरी के श्रावको ने साधु को एक ही समय वंदना की कहा है । तो क्या दूसरे समय वंदना नहीं की होगी ? जरा विचार करो कि लग्न (विवाह) के समय मोह की प्रबलता में भी ऐसे पूर्णोल्लास से जिन पूजा की है तो दूसरे समय अवश्य पूजा की ही होगी इस में क्या संदेह है ? परंतु सूत्रकार को ऐसे अधिकार वारंवार कहने की जरूरत नहीं है । क्योंकि आगम की शैली ऐसी ही है, और उस को जानकार पुरुष ही समझते है; परंतु तुम्हारे जैसे बुद्धिहीन मूर्ख नहीं समझते हैं । सो तुम्हारे मिथ्यात्व का उदय है ।

जेठमल ने लिखा है कि "पद्मोत्तर राजा के यहाँ द्रौपदी ने बेले बेले के पारणे आयंबिल का तप किया परंतु पूजा तो नहीं की " उत्तर - अरे भाई ! इतना तो समझो कि तपस्या करनी सो तो स्वाधीन बात है और पूजा करने में जिनमंदिर तथा पूजा की सामग्री आदि का योग मिलना चाहिये । सो पराधीन तथा संकट में पडी हुई द्रौपदी उस स्थल में पूजा कैसे कर सकती ? सो विचार के देखो !

जेठमल ने लिखा है कि "द्रौपदी ने पूर्वजन्म में सात काम अयोग्य करे, इस वास्ते उस की पूजा प्रमाण नहीं "उत्तर - इस से तो ढूंढक और बुद्धिहीन ढूंढक शिरोमणि जेठमल श्रीमहावीरस्वामी को भी सच्चे तीर्थंकर नहीं मानते होगे ! क्योंकि श्री महावीरस्वामी के जीवने भी पूर्वजन्म में कितनेक अयोग्य काम किये थे- जैसे कि-

(१) मरीचि के भव में दीक्षा विराधी सो अयोग्य ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) त्रिदंडी का भेष बनाया सो अयोग्य ।

(३) उत्सूत्र की प्ररूपणा की सो अयोग्य ।

(४) नियाणा किया सो अयोग्य ।

(५) कितने ही भवों में संन्यासी हो के मिथ्यात्व की प्ररूपणा की सो अयोग्य ।

(६) कितने ही भवों में ब्राह्मण हो के यज्ञ करे सो अयोग्य ।

(७) तीर्थंकर हो के ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न हुए सो अयोग्य ।

इत्यादि अनेक अयोग्य काम करे तो क्या पूर्वादि जन्म में इन कामों के करने से श्रीमन्महावीर अरिहंत भगवंत को तीर्थंकर न मानना चाहिये ? मानना ही चाहिये, क्योंकि कर्मवशवर्त्ती जीव अनेक प्रकार के नाटक नाचता है । परंतु उससे वर्तमान में उस की उत्तमता को कुछ भी बाधा नहीं आती है । वैसे ही द्रौपदी की की जिनप्रतिमा की पूजा श्रावक धर्म की रीति के अनुसार है, इस वास्ते सो भी मानना ही चाहिये, न माने सो सूत्रविराधक है ।

जेठमल ने लिखा है कि "द्रौपदी की पूजा में भलामण भी सूर्याभकृत जिनप्रतिमा की पूजा की दी है । परंतु अन्य किसी की नहीं दी है ।" उत्तर-सूर्याभ की भलामण देने का कारण तो प्रत्यक्ष है कि जिन प्रतिमा की पूजा का विस्तार श्रीदेवर्धिगणि क्षमाश्रमणजी ने **रायपसेणीसूत्र** में सूर्याभ के अधिकार में ही लिखा है । सो एक जगह लिखा सब जगह जान लेना, क्योंकि जगह जगह विस्तारपूर्वक लिखने से शास्त्र भारी हो जाते हैं । और आनंद-कामदेवादि की भलामण नहीं दी, उस का कारण यह है कि उन के अधिकार में पूजा का पूरा विस्तार नहीं लिखा है तो फिर उन की भलामण कैसे देवें ? तथा यह भलामणा तीर्थंकर गणधरों ने नहीं दी है, किंतु शास्त्र लिखने वाले आचार्य ने दी है । तीर्थंकर महाराज ने तो सर्व ठिकाने विस्तारपूर्वक ही कहा होगा । परंतु सूत्र लिखने वालेने सूत्र भारी हो जाने के विचार से एक जगह विस्तार से लिख कर और जगह उस की भलामणा दी है[१] ।

तथा आनंद श्रावक को सूत्र में पूर्ण बालतपस्वी की भलामणा दी है, तो इस से क्या आनंद मिथ्या दृष्टि हो गया ? नहीं, ऐसे कोई भी नहीं कहेगा, ऐसे ही यहां भी समझना[२] ।

१ जैसे **ज्ञातासूत्र** में श्रीमल्लिनाथ स्वामी के जन्ममहोत्सव की भलामण **जंबूद्वीप पन्नत्ति सूत्र** की दी है सो पाठ यह है -

तेणं कालेणं तेणं समएणं अहोलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारिय महत्तरियाओ जहा जंबूद्वीवपण्णत्तिए सव्वं जम्मणं भाणियव्वं णवरं मिहिलियाए णयरीए कुंभरायस्स भवणंसि पभावइए देवीए अभिलावो जोएयव्वो जाव णंदीसरवर दीवे महिमा ।।

इत्यादि अनेक शास्त्रों में अनेक शास्त्रों की भलाभाणा दी हैं ।

२ श्रीज्ञातासूत्र में श्रीमल्लिनाथस्वामी के दीक्षानिर्गमन की जमालि की भलामणा दी है तो क्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जेठमल ने लिखा है कि "द्रौपदी सम्यग्दृष्टि ही नहीं थी तथा श्राविका भी नहीं थी क्योंकि उसने श्रावकव्रत लिये होते तो पांच भर्त्तार (पति) क्यों करती ?" उत्तर - द्रौपदीने पूर्वकृत कर्म के उदय से पंच की साक्षी से पांच पति अंगीकार किये है परंतु उस की कोई पांच पति करने की इच्छा नहीं थी । और इस तरह पांच पति करने से भी उस के शीलव्रत को कोई प्रकार की भी बाधा नहीं हुई है । और शास्त्रकारों ने उस को महासती कहा है । तथा बहुत से ढूंढिये भी उस को सती मानते हैं । परंतु अकल के दुश्मन जेठमल की ही मति विपरीत हुई है । जो उस ने महासती को कलंक दिया है, और उस से महा पाप का बंधन किया है । कहा है कि **"विनाशकाले विपरीत बुद्धिः ।"**

श्रीभगवतीसूत्र में कहा है कि जघन्य से चाहे कोई एक व्रत करे तो भी वह श्रावक कहाता है, पुनः उसी सूत्र में उत्तर गुण पच्चक्खाण भी लिखे हैं; तथा **श्रीदशाश्रुतस्कंधसूत्र** में **"दंसण सावए"**अर्थात् सम्यक्त्वधारी को भी श्रावक कहा है । श्री **प्रश्नव्याकरणसूत्रवृत्ति** में भी द्रौपदी को श्राविका कहा है । **श्रीज्ञातासूत्र में** कहा है कि

तएणं सा दोवइ देवी कच्छुल्लणारयं असंजय अविरय अप्पडिहय अप्पच्चक्खाय पावकम्मं तिकट्टु णो आढाई णो परियाणाइ णो अभुट्ठेई ।।

अर्थ - जब नारद आया तब द्रौपदी देवी कच्छुलनामा नव में नादर को असंजती, अविरती, नहीं हने, नहीं पच्चखे पापकर्म जिसने ऐसे जान के न आदर करे, आया भी न जाने, और खडी भी न होवे ।

अब विचार करो कि द्रौपदी ने नारद जैसे को असंजती जान के वंदना नहीं की है । तो इस से निश्चय होता है कि वह श्राविका थी, और उस का सम्यक्त्वव्रत आनंद श्रावक सरीखा था । तथा अमरकंका नगरी में पद्मोत्तर राजा द्रौपदी को हर के ले गया । उस अधिकार में **श्रीज्ञातासूत्र** में कहा है कि -

तएणं सा दोवइ देवी छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं आयंबिल परिग्गहिएणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ ।।

अर्थ - पद्मोत्तर राजाने द्रौपदी को कन्या के अंते पुर में रखा, तब वह द्रौपदी देवी छट्ठ छट्ठ के पारणे निरंतर आयंबिल परिगृहीत तपकर्म कर के अर्थात् बेले बेले के पारणे आयंबिल करती हुई आत्मा को भावती हुई विचरती है । इस से भी सिद्ध होता है कि ऐसे जिनाज्ञायुक्त तप करने वाली द्रौपदी श्राविका ही थी ।

श्रीमल्लिनाथस्वामी जमालि सरीखे हो गये ? कदापि नहीं, तथा इसी **ज्ञातासूत्र** के पाठ से सूत्रों में भलामणा, लिखने वाले आचार्यने दी है; यह प्रत्यक्ष सिद्ध होता है: नहीं तो जमालिजी श्रीमहावीरस्वामी के समय में हुआ उसके निर्गमन की भलामणा श्रीमल्लिनाथस्वामी के अधिकार में कैसे हो सकेगी ? **श्रीज्ञातासूत्र** का पाठ यह है

"एवं विणिग्गमो जहा जमालीस्स"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"द्रौपदी को पांच पति का नियाणा था । सो नियाणा पूरा होने से पहिले द्रौपदी ने पूजा की है । इस वास्ते मिथ्यादृष्टित्व में पूजा की है" ऐसे जेठमल ने लिखा है । उस का उत्तर - **श्रीदशाश्रुतस्कंध** में नव प्रकार के नियाणे कहे हैं, उन में प्रथम के सात नियाणे कामभोग के हैं । सो उत्कृष्ट रस से नियाणा किया हो तो सम्यक्त्वप्राप्ति न होवे, और मंद रस से नियाणा किया हो तो सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जावे, जैसे कृष्णवासुदेव नियाणा कर के हुए हैं उन को भी सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई है । यदि कहोगे कि "वासुदेव की पदवी प्राप्त होने पर नियाणा पूरा हो गया इस वास्ते वासुदेवकी पदवी प्राप्त हुए पीछे सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई है । वैसे द्रौपदी को भी पांच पति की प्राप्ति से नियाणा पूरा हो गया । पीछे विवाह (पाणिग्रहण) होने के पीछे द्रौपदी ने सम्यक्त्व की प्राप्ति की" तो सो असत्य है; क्योंकि नियाणा तो सारे भव तक पहुंचता है । **श्रीदशाश्रुतस्कंध** में ही नवमा नियाणा दीक्षा का कहा है । सो दीक्षा लेने से नियाणा पूरा हो गया ऐसे होवे तो उस ही भव में केवलज्ञान होना चाहिये । परंतु नियाणे वाले को केवलज्ञान होने की शास्त्रकारने ना कही है । इस वास्ते नियाणा भव पूरा होवे वहां तक पहुंचे ऐसे समझना और मंद रस से नियाणा किया हो तो सम्यक्त्व आदि गुण प्राप्त हो सकते हैं । एक केवलज्ञान प्राप्त न हो, ऐसे कहा है । तो द्रौपदी का नियाणा मंद रस से ही इस वास्ते बाल्यावस्था में सम्यक्त्व पाना संभव है ।

जैसे श्रीकृष्णजीने पूर्व भव में नियाणा किया था तो वासुदेव की पदवी सारे भव पर्यंत भोगे बिना छुटकारा नहीं, परंतु सम्यक्त्व को बाधा नहीं । वैसे ही द्रौपदी ने पांच पति का नियाणा किया था । उससे पांच पति होए बिना छुटकारा नहीं, परंतु सो नियाणा सम्यक्त्व को बाधा नहीं करता है ।

इस प्रसंग में जेठमल ने नियाणेके दो प्रकार (१) द्रव्यप्रत्यय, (२) भवप्रत्यय कहै हैं सो झूठ है, क्योंकि **दशाश्रुतस्कंधसूत्र** में ऐसा कथन नहीं है । **दशाश्रुतस्कंध** के नियाणे मुताबिक तो द्रौपदी को सारे जन्म में केवली प्ररूपित धर्म भी सुनना न चाहिये और द्रौपदी ने तो संयम लिया है । इस वास्ते द्रौपदी का नियाणा धर्म का घातक नहीं था । और चक्रवर्त्ती तथा वासुदेव को भवप्रत्यय नियाणा जेठमल ने कहा है । और जब तक नियाणे का उदय हो तब तक सम्यक्त्व की प्राप्ति न हो ऐसे भी कहा है । तो कृष्ण वासुदेव को सम्यक्त्व की प्राप्ति कैसे हुई सो जरा विचार कर देखो ! इस से सिद्ध होता है कि जेठमल का लिखना स्वकपोलकल्पित है । यदि आम्नाय बिना और गुरुगम बिना केवल सूत्राक्षर मात्र को ही देख के ऐसे अर्थ करोगे तो इसी **दशाश्रुतस्कंध** में उस स्थान के महामोहनी कर्म बांधे ऐसे कहा है । और महामोहनी कर्म की उत्कृष्ट स्थिति (७०) कोटा कोटी सागरोपम की है । तो परदेशी राजा ने घने पंचेंद्री जीवों की हिंसा की, ऐसे **श्रीरायपसेणीसूत्र** में कहा है । तो उसको अणुव्रत की प्राप्ति न होनी चाहिये । तथा महामोहनी कर्म बांध के संसार में भटकना चाहिये । परंतु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सो तो एकावतारी है । तो सूत्र की यह बात कैसे मिलेगी ? इस वास्ते सूत्र वांचना और उसका अर्थ करना सो गुरुगम से ही करना चाहिये । परंतु तुम ढूंढकों को तो गुरुगम है ही नहीं । जिससे अनेक जगह उलटा अर्थ कर के महा पाप बांधते हो । और सूत्र में द्रौपदी ने पूजा की । वहां सूर्याभ की भलामणा दी है । इस से भी द्रौपदी अवश्यमेव सम्यक्त्ववंती सिद्ध है । तथा विवाह की महामोह का गिरदी धूमधाम में जिनप्रतिमा की पूजा याद आई, सो पक्की श्रद्धावंती श्राविका ही का लक्षण है, इस वास्ते द्रौपदी सुलभ बोधिनी ही थी ऐसे सिद्ध होता है ।

जेठमल ने लिखा है कि "द्रौपदी के मातापिता भी सम्यग्दृष्टि नहीं थे क्योंकि उन्हों ने मांसमदिरा का आहार बनवाया था । उस का उत्तर-जेठमल का यह लिखना बिलकुल बेहूदा है, क्योंकि कृष्ण वासुदेव आदि बहुत राजा उसमें शामिल थे । पांडव भी उन के बीच में थे । इससे तो कृष्ण पांडवादि कोई भी सम्यग्द्रष्टि न हुए । वाह रे जेठमल ! तुमने इतना भी नहीं समझा कि नौकरचाकर जो काम करते हैं सो राजा ही का किया कहा जाता है । इस वास्ते द्रौपदी के पिता ने मांस नहीं दिया । यदि उस का पाठ मानोगे तो कृष्ण वासुदेव, पांडव वगैरह सर्व राजाओं ने मांस खाया तुम को मानना पडेगा ? तथा श्रीउग्रसेन राजा के घर में कृष्ण वासुदेव, आदि बहुत राजाओं के वास्ते मांसमदिरा का आहार बनवाया गया था । उसमें पांडव भी थे, तो क्या उस से उन का सम्यक्त्व नाश हो जावेगा ? नहीं, श्रेणिक राजा, कृष्ण वासुदेव आदि सम्यक्त्वद्रष्टि थे, परंतु उन को एक भी अणुव्रत नहीं था । तो उस से क्या उनको सम्यक्त्व विना कहना चाहिये ? नहीं, कदापि नहीं। इस वास्ते इस में समझने का इतना ही है कि उस समय विवाहादि महोत्सव गौरी आदि में उस वस्तु के बनाने का प्रायः कितनेक क्षत्रियों के कुल का रिवाज था । इस वास्ते यह कहना मिथ्या है, कि द्रौपदी के मातापिता सम्यग्दृष्टि नहीं थे । तथा इस ठिकाने जेठमलने लिखा है कि "प्रकार का आहार बनाया ।" परंतु **ज्ञातासूत्र** में ६ आहार का सूत्रपाठ है नहीं । उस सूत्रपाठ में चार आहार से अतिरिक्त जो कथन है सो चार आहार का विशेषण है । परंतु ६ आहार नहीं कहे हैं, इस से यही सिद्ध होता है कि जेठमल को सूत्र का उपयोग ही नहीं था । और उस ने जो जो बाते लिखी है सो सर्व स्वमति कल्पित लिखी है ।

जेठमल लिखता है कि "द्रौपदी ने प्रतिमा पूजी सो तीर्थंकर की प्रतिमा नहीं थी । क्योंकि उस ने तो प्रतिमा को वस्त्र पहिनाए थे और तुम हाल की जिनप्रतिमा को वस्त्र नहीं पहिनाते हो" उसका उत्तर-जिस समय द्रौपदी ने जिनप्रतिमा की पूजा की उस समय में जिनप्रतिमा को वस्त्र युगल पहिनाने का रिवाज था । सो हम मंजूर करते हैं । परंतु वस्त्र पहिनाने का रिवाज अन्यदर्शनियों में दिनप्रतिदिन अधिक होने से जिनप्रतिमा भी वस्त्रयुक्त होगी तो पिछान में न आवेगी ऐसे समझ के सूत आदि के वस्त्रा पहिनाने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का रिवाज बहुत वर्षों से बंद हो गया है । परंतु हाल में वस्त्र के बदले जिनप्रतिमा को सोना, चांदी, हीरा, माणिक प्रमुख की अंगीयां पहिनाई जाती हैं । तथा जामा और कबजा - फतुई कमीज - प्रमुख के आकार की अंगीयां होती हैं । जिन को देख के सम्यग्दृष्टि जीव जिनको कि जिनदर्शन की प्राप्ति होती है, उन को साक्षात् वस्त्र पहिनाये ही प्रतीत होते हैं । परंतु महा मिथ्यादृष्टि ढूंढिये जिन को कि पूर्वकर्म के आवरण से जिनदर्शन होना महा दुर्लभ है । उन को इस बात की क्या खबर हो ! ! उन को खोटे दूषण निकालने की ही समझ है, तथा हाल में **सत्रहभेदी पूजा** में भी वस्त्र युगल प्रभु के समीप रखाने में आते हैं । हमेशा शुद्ध वस्त्रा से प्रभु का अंग पूजा जाता है । इत्यादि कार्यों में जिनप्रतिमा के उपभोग में वस्त्र भी आते हैं । तथा इस प्रसंग में जेठमल ने लिखा है कि "जिस रीति से सूर्याभ ने पूजा की है उस रीति से द्रौपदी ने की" तो इस से सिद्ध होता है कि जैसे सूर्याभ ने सिद्धायतन में शाश्वती जिनप्रतिमा पूजी है वैसे इस ठिकाने द्रौपदी की की पूजा भी जिनप्रतिमा की ही है ।

और जैठमल ने भद्रा सार्थवाही की की अन्य देव की पूजा को द्रौपदी की की पूजा के सदृश होने से द्रौपदी की पूजा भी अन्य देव की ठहराई है । परंतु वह मूर्ख सरदार इतना भी नहीं समजता है कि कुछ बातों में एक सरीखी पूजा हो तो भी उसमें कुछ बाधा नहीं है । जैसे हाल में भी अन्य दर्शनी, श्रावक की कितनीक रीति अनुसार अपने देव की पूजा करते हैं । वैसे इस ठिकाने भद्रा सार्थवाही ने भी द्रौपदी की तरह पूजा की है तो भी प्रत्यक्ष मालूम होता है कि द्रौपदीने **`नमुत्थुणं'** कहा है । इस वास्ते उस की पूजा जिनप्रतिमा की ही है, और भद्रा सार्थवाही ने **`नमुत्थुणं'** नहीं कहा है । इस वास्ते उन की की पूजा अन्य देव की है ।

तथा द्रौपदी ने **`नमुत्थुणं'** जिनप्रतिमा के सन्मुख कहा है यह बात सूत्र में है, और जेठमल यह बात मंजूर करता है, परंतु यह प्रतिमा अरिहंत की नहीं ऐसा अपना कुमत स्थापन करने के वास्ते लिखता है कि "अरिहंत के सिवाय दूसरों के पास भी **`नमुत्थुणं'** कहा जाता है । गोशाले के शिष्य गोशाले को **नमुत्थुणं** कहते थे; तथा गोशाले के श्रावक षडावश्यक करते थे । तब गोशाले को **नमुत्थुणं** कहते थे" यह सब झूठ है, क्योंकि नमुत्थुणं के गुण किसी भी अन्य देव में नहीं है, और न किसी अन्य देव के आगे नमुत्थुणं कहा जाता है । तथा न किसी ने अन्यदेव के आगे नमुत्थुणं कहा है । तो भी जेठमल ने लिखा है कि "अरिहंत के सिवाय दूसरे (अन्य देवों) के पास भी **नमुत्थुणं** कहा जाता है ।" तो इस लेख से जेठमल ने वीतराग देव की अवज्ञा की है, क्योंकि यह लिखने से जेठमलने अन्य देव और वीतराग देव को एक सरीखे ठहराया है । हा कैसी मूर्खता ! अन्य देव और वीतराग जिन में अकथनीय फरक है । अपना मत स्थापन करने के वास्ते उन को एक सरीखे ठहराता है और लिखता है कि **`नमुत्थुणं'**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरिहंत के सिवाय अन्य देवों के पास भी कहा जाता है । सो यह लेख जैनशैली से सर्वथा विपरीत है । जैनमत के किसी भी शास्त्र में अरिहंत और अरिहंत की प्रतिमा सिवाय अन्य देव के आगे **नमुत्थुणं** कहना, या किसी ने कहा लिखा नहीं है । जेठमल ने इस संबंध में जो जो दृष्टांत लिखे हैं और जो जो पाठ लिखे हैं उनमें अरिहंत या अरिहंत की प्रतिमा के सिवाय किसी अन्य देव के आगे किसीने **नमुत्थुणं** कहा हो ऐसा पाठ तो है ही नहीं, परंतु भोले लोगों को फंसाने और अपने कुमत को स्थापन करने के लिये विना ही प्रयोजन सूत्रपाठ लिख के पोथी बडी की है । इस से मालूम होता है कि जेठमल महामिथ्या दृष्टि, और मृषावादी था । और उस ने द्रौपदीकृत अरिहंत की प्रतिमा की पूजा लोपने के वास्ते जितनी कुयुक्तियां लिखी हैं सो सर्व अयुक्त और मिथ्या है ।

तथा जेठमल जिनप्रतिमा को अवधिजिन की प्रतिमा ठहराने वास्ते कहता है कि "सूत्र में अवधिज्ञानी को भी जिन कहा है । इस वास्ते यह प्रतिमा अवधि जिन की संभव होती है" उत्तर- सूत्र में अवधि जिन कहा है सो सत्य है परंतु `**नमुत्थुणं**' केवली अरिहंत या अरिहंत की प्रतिमा सिवाय अन्य किसी देवता के आगे कहे का कथन सूत्र में किसी जगह भी नहीं है । और द्रौपदी ने तो `**नमुत्थुणं**' कहा है । इस वास्ते वह प्रतिमा केवली अरिहंत की ही थी, और उस की ही पूजा महासती द्रौपदी श्राविका ने की है ।

फिर जेठमल कहता है कि "अरिहंत ने दीक्षा ली तब घर का त्याग किया है । इस लिये उस का घर होगा नहीं" उत्तर-मालूम होता है कि मूर्खों का सरदार जेठमल इतना भी नहीं समझता है कि भावतीर्थंकर का घर नहीं होता है । परंतु यह तो स्थापना तीर्थंकर की भक्ति निमित्त निष्पन्न किया हुआ घर है । जैसे सूत्रों में सिद्ध प्रतिमा का आयतन यानि घर अर्थात् सिद्धायतन कहा है वैसे ही यह भी जिन घर है, तथा सूत्रों में देवछंदा कहा है । इस वास्ते जेठमल की सब कुयुक्तियां झूठी हैं ।

तथा इस प्रसंग में जेठमल ने विजय चोर का अधिकार लिख के बताया है कि "विजय चोर राजगृही नगरी में प्रवेश करने के मार्ग, निकलने के मार्ग, मद्यपान करने के मकान, वेश्या के मकान, चोरों के ठिकाने, दो, तीन तथा चार रास्ते मिलने वाले मकान, नागदेवता के, भूत के तथा यक्ष के मंदिर इतने ठिकाने जानता है । ऐसे सूत्र में कहा है तो राजगृही में तीर्थंकर के मंदिर होवें तो क्यों न जाने ?" उत्तर - प्रथम तो यह दृष्टांत ही निरुपयोगी है, परंतु जैसे मूर्ख अपनी मूर्खता दिखाये विना ना रहे वैसे जेठमलने भी निरुपयोगी लेख से अपनी पूर्ण मूर्खता दिखाई है । क्योंकि यह दृष्टांत बिलकुल उस के मत को लगता नहीं है । एक अल्पमति वाला भी समझ सकता है, कि इस अधिकार में चोर के रहने के, छिपने के, प्रवेश करने के, निकलने के, जो जो ठिकाने तथा रास्ते हैं सो सर्व विजय चोर जानता था ऐसे कहा है । सत्य है क्योंकि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे ठिकाने जानता न हो तो चोरी करनी मुश्किल हो जावे, सो जैसे सेठशाहुकारों की हवेलियां, राज्यमंदिर, हस्तिशाला, अश्वशाला, और पोषधशाला(उपाश्रय) वगैरह नहीं कहे हैं, ऐसे ही जिनमन्दिर भी नहीं कहे हैं । क्योंकि ऐसे ठिकाने प्रायः चोरों के रहने लायक नहीं होते है । इस से इन के जानने का उसको कोई प्रयोजन नहीं था । परंतु इस से यह नहीं समझना कि उस नगरों में उस समय जिनमंदिर, उपाश्रय वगैरह नहीं थे । परंतु इस नगरी में रहने वाले श्रावक हमेशा जिनप्रतिमा की पूजा करते थे । इस वास्ते बहुत जिनमंदिर थे ऐसा सिद्ध होता है ।

कोणिक राजा ने भगवंत को वंदना की उस का प्रमाण दे के जेठमल ऐसे ठहराता है कि "उस ने द्रौपदी की तरह पूजा क्यों नहीं की ? क्योंकि प्रतिमा से तो भगवान् अधिक थे" उत्तर-भगवान् भाव तीर्थंकर थे, इस वास्ते उनकी वंदना, स्तुति वगैरह ही होती है, और उन के समीप सत्रह प्रकारी पूजा में से वाजिंत्रपूजा, गीतपूजा तथा नृत्यपूजा वगैरह भी होती है, चामर होते हैं, इत्यादि जितने प्रकार की भक्ति भावतीर्थंकर की करनी उचित है उतनी ही होती है । और जिनप्रतिमा स्थापना तीर्थंकर है इस वास्ते उन की सत्रह प्रकार आदि पूजा होती है, तथा भावतीर्थंकर को **नमुत्थुणं** कहा जाता है । उस में **"ठाणं संपाविउं कामे"** ऐसा पाठ है अर्थात् सिद्धगति नाम स्थान की प्राप्ति के कामी हो ऐसे कहा जाता है । और स्थापना तीर्थंकर अर्थात् जिन प्रतिमा के आगे द्रौपदी वगैरह ने जहाँ जहाँ **नमुत्थुणं** कहा है वहाँ वहाँ सूत्र में **"ठाणं संपत्ताणं"** अर्थात् सिद्धगति नाम स्थान को प्राप्त हुए हो ऐसे जिनप्रतिमा को सिद्ध गिना है । इस अपेक्षा से भावतीर्थंकर से भी जिनप्रतिमा की अधिकता है, दुर्मति ढूंढिये उस को उत्थापते हैं । उस से वह महामिथ्यात्वी हैं ऐसे सिद्ध होता है ।

तथा `जिन' किस किस को कहते हैं इस बाबत जेठमल ने **श्रीहेमचंद्राचार्यकृत अनेकार्थीय हैमी नाममाला** का प्रमाण दिया है, परंतु यदि वह ग्रंथ तुम ढूंढिये मान्य करते हो तो उसी ग्रंथ में कहा है कि **"चैत्यं जिनौक स्तद्बिम्बं चैत्यो जिनसभातरुः"** सो क्यों नहीं मानते हो ? तथा बलि शब्द का अर्थ भी उस ही नाममाला में `देवपूजा' किया है तो वह भी क्यों नहीं मानते हो ? यदि ठीक ठीक मान्य करोगे तो किसी भी शब्द के अर्थ में कोई भी बाधा न आवेगी । ढूंढिये सारा ग्रंथ मानना छोड के फक्त एक शब्द कि, जिस के बहुत से अर्थ होते हो, उसमें से अपने मन माना एक ही अर्थ निकाल के जहाँ तहाँ लगाना चाहते हैं परंतु ऐसे हाथ पैर मारने से खोटा मत सच्चा होने वाला नहीं हैं ।

तथा जेठमल और उस के कुमति ढूंढिये कहते हैं, कि द्रौपदी ने विवाह के समय नियाणे के तीव्र उदय से पति की वांछासे विषयार्थ पूजा की है" उत्तर- अरे मूढो ! यदि पति की वांछा से पूजा की होती, तो पूजा करने समय अच्छा खूबसूरत पति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मांगना चाहिये था । परंतु उस ने सो तो मांगा ही नहीं है । उस ने तो शक्रस्तवन पढा है जिस में" **तिन्नाणं तारयाणं**" अर्थात् आप तरे हो मुझ को तारो इत्यादि पदों से शुद्ध भावना से मोक्ष मांगा है; परंतु जैसे मिथ्यात्वी योग्य पति पाऊंगी, तो तुम आगे याग भोग करूंगी इत्यादि स्तुति में कहती हैं, वैसे उस ने नहीं कहा है । इस वास्ते फक्त अपने कुमत को स्थापन करने वास्ते ऐसी सम्यग्दृष्टिनी श्राविका के शिर खोटा कलंक चढाते हो । सो तुम को संसार बढाने का हेतु हैं । और इस तरह महासती द्रौपदी के शिर अणहोया कलंक चढाने से तथा उस सम्यक्त्ववती श्राविका के अवर्णवाद बोलने से तुम बडे भारी दुःख के भागा होगे । जैसे उस महासती द्रौपदी को अति दुःख दिया । भरी सभा के बीच निर्लज्ज हो के उस की लज्जा लेने की मनसा की, इत्यादि अनेक प्रकार का उस के ऊपर जुलम किया । जिस से कौरवों का सहकुटुंब नाश हुआ । कैयाक्चिक भी उस मुताबिक करने से अपने एक सो भाईयों के मृत्यु का हेतु हुआ । पद्मोत्तर राजा ने उस को कुदृष्टि से हरण किया । जिस से आखिर उस को उस की शरण जाना पडा । और तब ही वह बंधन से मुक्त हुआ । वैसे तुम भी उस महासती के अवर्णवाद बोलने से इस भव में तो जैनबाह्य हुए हो, इतना ही नहीं परंतु परभव में अनंत भव रूलने रूप शिक्षा के पात्र होंगे इस में कुछ ही संदेह नहीं है । इस वास्ते कुछ समझो और पाप के कुअेमें न डूब मरो, किंतु कुमतको त्याग के सुमत को अंगीकार करो ।

"अरिहंत का संघट्टा स्त्री नहीं करती है तो प्रतिमा का संघट्टा स्त्री कैसे करे" उस का उत्तर-प्रतिमा जो है सो स्थापना रूप है । इस वास्ते उसके स्त्री संघट्टे में कुछ भी दोष नहीं है । क्योंकि वह कोई भाव अरिहंत नहीं है । किंतु अरिहंत की प्रतिमा है । यदि जेठमल स्थापना और भाव दोनों को एक सरीखे ही मानता है तो सूत्रों में सोना, रूपा, स्त्री, नपुंसकादि अनेक वस्तु लिखी हैं । और सूत्रो में जो अक्षर हैं वे सर्व सोना, रूपा स्त्री, नपुंसकादि की स्थापना हैं । इस लिये इन के पढने से तो किसी भी ढूंढक ढूंढकनी का शील महाव्रत रहेगा नहीं । तथा देवलोक की मूर्तियां, और नरक के चित्र, वगैरह ढूंढकों के साधु, तथा साध्वी, अपने पास रखते हैं । और ढूंढकों को प्रतिबोध करने वास्ते दिखाते हैं । उन चित्रों में देवांगनाओं के स्वरूप, शालिभद्र का, धन्नेका तथा उन की स्त्रियों वगैरह के चित्र भी होते हैं; इस वास्ते जैसे उन चित्रों में स्त्री तथा पुरुषत्व की स्थापना है । वैसे ही जिनप्रतिमा भी अरिहंत की स्थापना है, स्थापना को स्त्री का संघट्टा होना न चाहिये । ऐसे जो जेठमल और उसके कुमति ढूंढक मानते हैं तो पूर्वोक्त कार्यों से ढूंढकों के साधु साध्वियों का शीलव्रत (ब्रह्मचर्य) कैसे रहेगा ? सो विचार कर लेना[१] ।

और जेठमल ने लिखा है कि "गौतमादिक मुनि तथा आनंदादिक श्रावक प्रभु से दूर बैठे परंतु प्रभु को स्पर्श करना न पाये" उत्तर-मूर्ख जेठमल इतना भी नहीं समझता कि

१ सोहनलाल, गैंडेराय, पार्वती, वगैरह की फोटो पंजाब के ढूंढिये अपने पास रखते हैं इससे तो सोहनलाल पार्वती वगैरह के ब्रह्मचर्य का फक्का भी न रहा होगा ! !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत लोगों के समक्ष धर्म देशना श्रवण करने को बैठना मर्यादापूर्वक ही होता है । परंतु सो इस में जेठमल की भूल नहीं है, क्योंकि ढूंढिये मर्यादा के बाहिर ही हैं। इसवास्ते यह नहीं कहा जा सकता है कि गौतमादि प्रभु को स्पर्श नहीं करते थे । और उन को स्पर्श करने की आज्ञा ही नहीं थी । क्योंकि **श्रीउपासकदशांगसूत्र** में आनंद श्रावक ने गौतमस्वामी के चरणकमल को स्पर्श किये का अधिकार है । और तुम ढूंढिये पुरुषोंका संघट्टा भी करना वर्जते हो तो उस का शास्त्रोक्त कारण दिखाओ ? तथा तुम जो पुरुषों का संघट्टा करते हो सो त्याग दो[१] ।

तथा जेठमलने लिखा है कि "पांच अभिगम में सचित्त वस्तु त्याग के जाना लिखा है" सो सत्य है, परंतु यह सचित्त वस्तु अपने शरीर के भोग की त्यागनी कही है । पूजा की सामग्री त्यागनी नहीं लिखी है । क्योंकि **श्रीनंदिसूत्र, अनुयोगद्वारसूत्र,** तथा **उपासकदशांगसूत्र** में कहा है कि तीन लोकवासी जीव "**महिय पूइय**" अर्थात् फूलों से भगवान् की पूजा करते हैं ।

जेठमल लिखता है कि "अभोगी देव की पूजा भोगी देव की तरह करते हैं" उत्तर-भगवान् अभोगी थे तो क्या आहार नहीं करते थे ? पानी नहीं पीते थे ? बैठते नहीं थे ? इत्यादि कार्य करते थे, या नहीं? करते ही थे परंतु उन का यह करना निर्जरा का हेतु है, और दूसरे अज्ञानियों का करना कर्मबंधन का हेतु है, तथा प्रभु जब साक्षात् विचरते थे तब उन की सेवा, पूजा, देवता आदिकोंने की है सो भोगी की तरह या अभोगी की तरह सो विचार लेना ? प्रभु को चामर होते थे, प्रभु रत्नजडित सिंहासनों पर बिराजते थे । प्रभु के समवसरण में जलथल के पैदा भये फूलों की गोडे प्रमाण देवता वृष्टि करते थे । देवता तथा देवांगना भगवंत के समीप अनेक प्रकार के नाटक तथा गीतगान करते थे । इस वास्ते प्यारे ढूंढियों ! विचार करो कि यह भक्ति भोगी देव की नहीं थी । किंतु वीतरागदेव की थी और उस भक्ति के करने वाले महापुण्यराशि बंधन के वास्ते ही इस रीति से भक्ति करते थे और वैसे ही आज भी होती है । प्यारे ढूंढियो ! तुम भोगीअभोगी की भक्ति जुदी जुदी ठहराते हो । परंतु जिस रीति से अभोगी की भक्ति, वंदना, नमस्कारादि होती है उस ही रीति से भोगी राजा प्रमुख की भी करने में आती है । जब राजा आवे तब खडा होना पडता है । आदरसत्कार दिया जाता है इत्यादि बहुत प्रकार की भक्ति अभोगी की तरह ही होती है और उसही रीति से तुम भी अपने ऋषि-साधुओंकी भक्ति करते हो तो वे तुम्हारे रिख भोगी हैं कि अभोगी ? सो विचार लेना ! फिर जेठमल लिखता है कि "जैसे पिता को भूख लगने से पुत्र का भक्षण करे यह अयुक्त कर्म है । वैसे तीर्थंकर के पुत्र समान षट्काय के जीवों को तीर्थंकर की भक्ति निमित्त हनते हो सो भी अयुक्त है" उत्तर-तीर्थंकर भगवंत अपने मुख

१ ढूंढिये श्रावक, श्राविका, अपने गुरु गुरणी के चरणों को हाथ लगा के वंदना करते हैं सो भी जेठमल की अकल मुताबिक आज्ञा बाहिर और बेअकल मालूम होते हैं ! !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से ऐसे नहीं कहते हैं कि मुझको वंदना, नमस्कार करो, स्नान कराओ, और मेरी पूजा करो । इस वास्ते वे तो षट्काया के रक्षक ही है, परंतु गणधर महाराजा की बताई शास्त्रोक्त विधि मुताबिक सेवकजन उनकी भक्ति करते हैं तो आज्ञायुक्त कार्य में जो हिंसा है सो स्वरूप से हिंसा है । परंतु अनुबंध से दया है ऐसे सूत्रों में कहा है । इस वास्ते सो कार्य कदापि अयुक्त नहीं कहा जाता है[१] । तथा हम तुमको पूछते हैं कि तुम्हारे रिख-साधु, तथा साध्वी, त्रिविध त्रिविध जीव हिंसा का पच्चक्खाण कर के नदियां उतरते हैं, गोचरी कर के ले आते हैं । आहार, निहार, विहारादि अनेक कार्य करते हैं जिन में प्रायः षट्काया की हिंसा होती है तो वे तुम्हारे साधु साध्वी षट्काया के रक्षक हैं कि भक्षक हैं ? सो विचार के देखो ! जेठमल के लिखने मुताबिक और शास्त्रोक्त रीति अनुसार विचार करने से तुम्हारे साधु साध्वी जिनाज्ञा के उत्थापक होने से षट्काया के रक्षक तो नहीं हैं परंतु भक्षक ही हैं । ऐसे मालूम होता है और उस से वे संसार में भटकने वाले हैं ऐसा भी निश्चय होता है ।

प्रश्न के अंतमें मूर्खशिरोमणि जेठमल ने **ओघनिर्युक्ति** की टीका का पाठ लिखा है । सो बिलकुल झूठा है, क्योंकि जेठमल के लिखे पाठ में से एक भी वाक्य **ओघनिर्युक्ति** की टीका में नहीं है । जेठमल का यह लिखना ऐसा है कि जैसे कोई स्वेच्छा से लिख देवे कि "जेठमल ढूंढक किसी नीच कुल में पैदा हुआ था । इस वास्ते जिन-प्रतिमा का निंदक था ऐसा प्राचीन ढूंढक निर्युक्ति में लिखा है ।"

।। इति ।।

२०. सूर्याभ ने तथा विजयपोलीए ने जिनप्रतिमा पूजी है :

वीस में प्रश्नोत्तर में जेठमल ने सूर्याभ देवता और विजयपोलीए की की जिन-प्रतिमा की पूजा का निषेध करने वास्ते अनेक कुयुक्तियां की हैं । उन सर्व का प्रत्युत्तर अनुक्रम से लिखते हैं ।

१. आदि में सूर्याभ देवताने श्रीमहावीरस्वामी को आमल कल्पा नगरी के बाहिर अंबसाल वन में देखा तब सन्मुख जा के नमुत्थुणं कहा । उस में सूत्रकारने "ठाणं संपत्ताणं " तक पाठ लिखा है । इस वास्ते जेठमल पिछले पद कल्पित ठहराता है, परंतु यह जेठमल का लिखना मिथ्या है, क्योंकि वे पद कल्पित नहीं है । किंतु शास्त्रोक्त है । इस बाबत ११में प्रश्नोत्तर में खुलासा लिख आए हैं ।

२. पीछे सूर्याभने कहा कि प्रभु को वंदना नमस्कार करने का महाफल है । इस प्रसंग में जेठमल ने जो सूत्रपाठ लिखा है सो संपूर्ण नहीं है । क्योंकि उस सूत्रपाठ के पिछले पदों में देवता संबंधी चैत्य की तरह भगवंत की पर्युपासना करूंगा ऐसे सूर्याभने

१ स्वरूप से जिन में हिंसा और अनुबंध से दया ऐसे अनेक कार्य-करने की साधु-साध्वीयों को शास्त्रोमें आज्ञा दी हें । देखो श्री आचारांग-ठाणांग-उत्तराध्ययन दशवैकालिकप्रमुख जैनशास्त्र तथा आठ प्रकारकी दयाका स्वरुप भाषामें देखना हो तो **जैन तत्वादर्श** का सप्तम परिच्छेद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहा है । सत्यासत्य के निर्णय वास्ते वह सूत्रपाठ **श्रीरायपसेणी** सूत्र से अर्थ सहित लिखते हैं, - यतः **श्रीराजप्रश्नीयसूत्रे** - ।

तं महाफलं खलु तहारुवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयस्सवि सवणयाए किमंग पुण अभिगमणवंदणनमंसणपडिपुच्छणपज्जुवासणयाए एगस्सवि आयरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्सगहणयाए तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि एयं मे पेच्चा हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए अणुगामियत्ताए भविस्सइ ।।

अर्थ- निश्चय उस का महाफल है, किसका सो कहते हैं, तथारूप अरिहंत भगवंत के नामगोत्र के भी सुनने का परंतु उसका तो क्या ही कहना ? जो सन्मुख जाना, वंदना करनी, नमस्कार करना, प्रतिपृच्छा करनी, पर्य्युपासना सेवा करनी, एक भी आर्य (श्रेष्ठ) धार्मिक वचन का सुनना इस का तो महाफल होगा ही और विपुल अर्थ का ग्रहण करना उस के फल का तो क्या ही कहना ? इस वास्ते मैं जाऊं, श्रमण भगवंत महावीर को वंदना करूं, नमस्कार करूं, सत्कार करूं, सन्मान करूं, कल्याणकारी, मंगलकारी देवसंबंधि चैत्य (जिनप्रतिमा) उसकी तरह सेवा करूं, यह मुझको परभव में हितकारी, सुख के वास्ते, क्षेम के वास्ते, निःश्रेयस् जो मोक्ष उस के वास्ते, और अनुगमन करने वाला अर्थात् परंपरा से शुभानुबंधि-भव भव में साथ जाने वाला होगा ।

पूर्वोक्त पाठ में देव के चैत्य की तरह सेवा करूं ऐसे कहा । इस से `स्थापनाजिन और भावजिन' इन दोनों की पूजा आदि का समान फल सूत्रकार ने बतलाया है ।

जेठमल कहता है कि "वंदना वगैरह का मोटा लाभ कहा परंतु नाटक का मोटा (बडा) लाभ सूर्याभने चिंतवन नहीं किया, इस वास्ते नाटक भगवंत की आज्ञा का कर्तव्य मालूम नहीं होता है ।" उत्तर-जेठमल का यह लिखना असत्य है, क्योंकि नाटक करना अरिहंत भगवंत की भावपूजा में है और उस का तो शास्त्रकारों ने अनंत फल कहा है, इस वास्ते सो जिनाज्ञा का ही कर्त्तव्य है, **श्रीनंदिसूत्र** में भी ऐसे ही कहा है, और सूर्याभ ने भी बडा लाभ चिंतवन कर के ही प्रभु के पास नाटक किया है ।

३. **पेच्चा** शब्द का अर्थ परभव है ऐसा जेठमलने सिद्ध किया है सो ठीक है इस वास्ते इसमें कोई विवाद नहीं है ।

४. सूर्याभने अपने सेवक देवता को कहा यह बात जेठमल ने, अधूरी लिखी है, इस वास्ते **श्रीरायपसेणी** सूत्रानुसार यहां विस्तार से लिखते हैं ।

सूर्याभ देवताने अपने सेवक देवता को बुला कर कहा कि हे देवानुप्रिय ! तुम आमलकल्पा नगरी में अंबसाल वन में जहां श्री महावीर भगवंत समवसरे हैं वहां जाओ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जा के भगवंत को वंदना नमस्कार करो । तुम्हारा नामगोत्र कह के सुनाओ । पीछे भगवंत के समीप एक योजन प्रमाण जगह पवन से तृण, पत्र, काष्ठ, कंडे, कांकरे (रोडे) और अशुचि वगैरह से रहित (साफ) करो । कर के गंधोदक की वृष्टि करो । जिस से सर्व रज शांत हो जावे अर्थात् बैठ जावे, उडे नहीं । पीछे जलथल के पैदा भये फूलों की वृष्टि, दंडी नीचे और पांखडी ऊपर रहे वैसे जानु (गोडे) प्रमाण करो । कर के अनेक प्रकार की सुगंधी वस्तुओं से धूप करो यावत् देवताओं के अभिगमन करने योग्य (आने लायक) करो ।

सूर्याभ देवता का ऐसा आदेश अंगीकार कर के आभियोगिक देवता **वैक्रियसमुद्घात** करे, कर के भगवंत के समीप आवे, आयके वंदना नमस्कार कर के कहे कि हम सूर्याभ के सेवक हैं और उस के आदेश से देव के चैत्य की तरह आप की पर्युपासना करेंगे ऐसे वचन सुनके भगवंत ने कहा यतः **श्रीराजप्रश्नीयसूत्रे -**

पोराणमेयं देवा जीयमेयं देवा कियमेयं देवा करणिज्जमेयं देवा आचीन्नमेयं देवा अब्भणुन्नायमेयं देवा ।।

अर्थ - चिरंतन देवताओं ने यह कार्य किया है । हे देवताओं के प्यारे ! तुम्हारा यह आचार है, तुम्हारा यह कर्त्तव्य है, तुम्हारी यह करणी है । तुम को यह आचारने योग्य है और मैंने तथा सर्व तीर्थंकरोंने भी आज्ञा दी है । इस मुताबिक भगवंत के कहे पीछे वे आभियोगिक देवता प्रभु को वंदना नमस्कार कर के पूर्वोक्त सर्व कार्य करते हुए । इस पाठ में जेठमल कहता है कि "सूर्याभ ने देवता के अभिगमन करने योग्य करो ऐसे कहा परंतु ऐसे नहीं कहा कि भगवंत के रहने योग्य करो " उस का उत्तर-देवता के आने योग्य करो ऐसे कहा । उस का कारण यह है कि देवता के अभिगमन करने की जगह अति सुंदर होती है । मनुष्यलोक में वैसी भूमि नहीं होती है । इस वास्ते सूर्याभ का वचन तो भूमि का विशेषण रूप है और उस में भगवंतका ही बहुमान और भक्ति है ऐसे समझना[१] ।

५ "**जलय थलयः**" इन दोनों शब्दो का अर्थ जल के पैदा भये और थल के पैदा भये ऐसा है उस को फिराने के वास्ते जेठमल कहता है कि "सूर्याभ के सेवक ने पुष्प की वृष्टि की वहां **(पुप्फवद्दालं विउव्वई)** अर्थात् फूल का वादल विकुर्वे ऐसे कहा है । इस वास्ते वे फूल वैक्रिय ठहरते हैं और उससे अचित्त भी हैं" यह कहना जेठमल का मिथ्या है । क्योंकि फूलों की वृष्टि योग्य बादल विकुर्वन से है । परंतु फूल विकुर्वे नहीं हैं । इस वास्ते वे फूल

१ यहां तो देवताके योग्य कहा, परंतु चौतीस अतिशय में जो सुगंध जलवृष्टि, पुष्पवृष्टि आदिक लिखी है सो किस के वास्ते लिखी है ? जहा हृदयनेत्र खोल के **समवायांगसूत्र** के चौतीस में समवाय में चौतीस अतिशयों का वर्णन देखो !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सचित्त ही हैं तथा जेठमल लिखता है कि "देवकृत वैक्रिय फूल होवे तो वे सचित नहीं ।" सो भी झूठ है क्योंकि देवकृत वैक्रिय वस्तु देवता के आत्मप्रदेश संयुक्त होती है । इस वास्ते सचित्त ही है, अचित्त नहीं, तथा चौतीस अतिशय में पुष्पवृष्टि का अतिशय है । सो जेठमल :देवकृत नहीं प्रभु के पुण्य के प्रभाव से है "ऐसे कहता है सो झूठ है । क्योंकि (३४) अतिशय में (४) जन्म से (११) घातिकर्म के क्षय से और (१९) देवकृत हैं उस में पुष्पवृष्टि का अतिशय देवकृत में कहा है । इस मुताबिक अतिशय की बात **श्रीसमवायांगसूत्र** में प्रसिद्ध है । कितनेक ढूंढिये इस जगह **जलयथलय**, इन दोनों शब्दों का अर्थ घजलथल के जैसे फूल कहते हैं । परंतु इन दोनों शब्दों का अर्थ सर्वशास्त्रों के तथा व्याकरण की व्युत्पत्ति के अनुसार जल और थल में पैदा हुए हुए ऐसा ही होता है । जैसे **पंकयं**-पंक नाम कीचड उसमें जो उत्पन्न हुआ हो सो पंकय (पंकज) अर्थात् कमल और **तनयं** तन नाम शरीर उससें उत्पन्न हुआ हो सो तनय अर्थात् पुत्र ऐसे अर्थ होते हैं । ऐसे **(तनुज, आत्मज, अंडय, पोयय, जराउय इत्यादि)** बहुत शब्द भाषा में (और शास्त्रों में) आते हैं तथा घज शब्द का अर्थ भी उत्पन्न होना यही है । तो भी अज्ञानी ढूढिये अपना कुमत स्थापन करने वास्ते मन घडंत अर्थ करते हैं परंतु वे सर्व मिथ्या हैं ।

६. जेठमल कहता है कि "भगवंत के समवसरण में यदि सचित्त फूल हो तो सेठ, शाहुकार, राजा, सेनापित आदि को पांच अभिगम कहे हैं ।- उन में सचित्त बाहिर रखना और अचित्त अंदर ले जाना कहा है सो कैसे मिलेगा ?" उस का उत्तर-सचित्त वस्तु बाहिर रखनी कहा है । सो अपने उपभोग की समझनी, परंतु पूजा की सामग्री नहीं समझनी, जो सचित्त बाहिर छोड़ जाना और अचित्त अंदर ले जाना । ऐसे एकांत हो तो राजा के छत्र, चामर, खडग, उपानह और मुगट वगैरह अचित्त हैं । परंतु अंदर ले जाने में क्यों नहीं आते हैं ? तथा अपने उपभोग की अर्थात् खानेपीने की कोई भी वस्तु अचित्त हो तो वह क्या प्रभु के समवसरण में ले जाने में आवेगी ? नहीं, इस वास्ते यह समझना कि अपने उपभोग की अर्थात् खानेपीने आदि की वस्तु सचित्त हो अथवा अचित्त हो, बाहिर रखनी चाहिये, और पूजा की सामग्री अचित्त अथवा सचित्त हो सो अंदर ही ले जाने की हैं ।

७. जेठमल लिखता है कि "जो फूल सचित्त हो तो साधु को उसका संघट्टा और उस से जीव विराधना हो सो कैसे बने" उसका उत्तर-जैसे एक योजन मात्र समवसरण की भूमि में अपरिमित सुरासुरादिकों का जो संमर्द उसके हुए हुए भी परस्पर किसी को कोई बाधा नहीं होती हैा वैसे ही जानु प्रमाण विखरे हुए मंदार, मचकुंद, कमल, बकुल, मालती, मोगरा वगैरह कुसुमसमूह उनके ऊपर संचार करने वाले, रहने वाले बैठने वाले, उठने वाले, ऐसे मुनिसमूह और जनसमूह के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए हुए भी उन कुसुमों को कोई बाधा नहीं होती है । अधिक क्या कहना, सुधारस जिन के अंग ऊपर पडा हुआ है, उन की तरह अत्यंत अचिंतनीय निरुपम तीर्थंकर के प्रभाव से प्रकाशमान जो प्रसार उस के योग से उलटा उल्लास होता है अर्थात् वे उलटे प्रफुल्लित होते हैं ।

८. जेठमल लिखता है कि :कोणिक आदि राजा भगवंत को वंदना करने को गये । वहां मार्ग में छँटकाव कराये, फूल बिछवाये, नगर सिणगारे-सुशोभित किये इत्यादि आरंभ किये सो अपने छंदे अर्थात् अपनी मरजी से किये हैं परंतु उस में भगवंत की आज्ञा नहीं हैः उस का उत्तर-कोणिक प्रमुख ने जो भगवंत की भक्ति निमित्त पूर्वोक्त प्रकार नगर सिणगारे उस में बहुमान भगवंत का ही हुवा है, क्योंकि उन की कुल धूमधाम भगवंत को वंदना करने के वास्ते ही थी और इस रीति से प्रभु का समैया आगमन महोत्सव कर के उन्हों ने बहुत पुण्य उपार्जन किया है । उस वास्ते इस कार्य में भगवंत की आज्ञा ही है ऐसे सिद्ध होता है ।

९. जेठमल ढूंढक कहता है कि "कोणिक ने नगर में छँटकाव कराया परंतु समवसरण में क्यों नहीं कराया ?" उत्तर-कोणिकने जो किया है सो कुल मनुष्यकृत हैं और समवसरण में तो देवताओंने महा सुगंधी जल छिटका हुआ है । सुगंधी फूलोंकी वृष्टि की हुई है । तो उस देवकृत के आगे कोणिक का करना किस गिनती में ? इस वास्ते उस ने समवसरण में छँटकाव नहीं कराया है, तो क्या बाधा है ?

१०. **जलय थलय** शब्दके आगे (इव) शब्द का अनुसंधान करने वास्ते जेठमल ने दो युक्तियां लिखी हैं । परंतु वह व्यर्थ हैं, क्योंकि यदि इस तरह (इव) शब्द जहां तहां जोड़ दें तो अर्थ का अनर्थ हो जावे, और सूत्रकार का कहा भावार्थ बदल जावे । इस वास्ते ऐसी नवीन मनःकल्पना करनी और शुद्ध अर्थ का खंडन करना सो मूर्खशिरोमणिका काम है ।

११. जेठमल लिखता है कि :हरिकेशी मुनि को दान दिया वहां पांच दिव्य प्रकटे । उन में देवताओं ने गंधोदक की वृष्टि की ऐसे कहा है तो गंधोदक वैक्रिय बिना कैसे बने ?" उत्तर-क्षीरसमुद्रादि समुद्रों में तथा ह्रदों और कुंडों में बहुत जगह गंधोदक अर्थात् सुगंधी जल है । वहां से ला के देवताओं ने वरसाया है इस वास्ते वह जल वैक्रिय नहीं समझना । इस जगह प्रसंग से लिखना पड़ता है कि तुम ढूंढिये पानी को और फूल को वैक्रिय अर्थात् अचित्त मानते हो तो सूर्याभ के आभियोगिक देवता ने पवन कर के एक योजन प्रमाण भूमि शुद्ध की सो पवन अचित्त होगी कि सचित्त ? जो सचित्त कहोगे तो उस के असंख्यात जीव हत हो गये और जो अचित्त कहोगे तो भी अचित्त पवन के स्पर्श से सचित्त पवन के असंख्यात जीव हत हो जाते हैं । तथा ऐसे उत्कट पवन से सूर्याभ के आभियोगिक देवताने कांटे, रोडे, घास, फूस विना की साफ जमीन कर डाली । उसमें भी असंख्यात वनस्पति काय के तथा कीडे कीडियां आदि त्रसकाय के जीव वैसे ही बहुत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्मजीव हत हो गये और प्रभु ने तो उन सेवक देवताओं को जिनभक्ति जान के निषेध नहीं किया। भगवंत केवलज्ञानी ऐसे जानते थे, कि सूर्याभ के आभियोगिक देवता इस मुताबिक करने वाले हैं और उस में असंख्यात जीवों की हानि है। परंतु उनको ना नहीं कही। इस वास्ते यह समझना कि जिस कार्य के करने से महाफल की प्राप्ति हो वैसे शुभ कार्य में भगवंत की आज्ञा है। इस वास्ते ऐसे ऐसे कुतर्क करने, सूत्रपाठ नहीं मानना और अर्थ फिरा देना सो महा मिथ्यादृष्टियों का काम है।

१२. जेठमल लिखता है कि "सूर्याभ आप वंदना करने को आया तब भगवंतने नाटक करने की आज्ञा नहीं दी। क्योंकि वह सावद्य करणी है और सावद्य करणी में भगवंत की आज्ञा नहीं होती हैः उस का उत्तर-भगवंतने नाटक की बाबत सूर्याभ के पूछने पर मौन धारण किया सो आज्ञा ही है। **"नानुषिद्धमनुमतमिति न्यायात्"** अर्थात् जिसका निषेध नहीं उसकी आज्ञा ही समझनी[1]।

लौकिक में भी कोई पुरुष किसी धनी गृहस्थ को जीमने का आमंत्रण करने को जावे और आमंत्रण करे तब वह धनी ना न कहे अर्थात् मौन रहे तो सो आमंत्रण मंजूर किया गिना जाता है। वैसे ही प्रभु ने नाटक करने का निषेध नहीं किया, मौन रहे, तो सो भी आज्ञा ही है। तथा नाटक करना सो प्रभु की सेवाभक्ति है, यतः **श्रीरायपसेणी सूत्रे -**

अहण्णं भंते देवाणुप्पियाणं भत्तिपुव्वयं गोयमाइणां समणाणं निग्गंथाणं बत्तिसइबद्धं नट्टविहिं उवदंसेमि ।।

अर्थ - सूर्याभ ने कहा कि है भगवन्! मैं आप की भक्तिपूर्वक गौतमादिक श्रमण निर्ग्रंथों को बत्तीस प्रकार का नाटक दिखाऊं ? इस मुताबिक **श्रीरायपसेणी सूत्र** के मूलपाठ में कहा है। इस वास्ते मालूम होता है कि सूर्याभ को भक्तिप्रधान है और भक्ति का फल **श्रीउत्तराध्ययनसूत्र** के २९ में अध्ययन में यावत् मोक्षपदप्राप्ति कहा है। तथा नाटक को जिनराज की भक्ति जब चौथे गुणठाणे वाले सूर्याभ ने मानी है तो जेठमल की कल्पना से क्या हो सकता है ? क्योंकि चौथे गुणठाणे से ले के चौदह में गुणठाणे वाले तक की एक ही श्रद्धा है। जब सर्व सम्यक्त्व धारियों की नाटक में भक्ति की श्रद्धा है, तब तो सिद्ध होता है कि नाटक में भक्ति नहीं मानने वाले ढूंढक जैनमत से बाहिर है, तथा इस ठिकाने सूत्रपाठ में प्रभु की भक्तिपूर्वक ऐसे कहा हुआ है तो भी जेठमल ने उस पाठ को लोप दिया है इससे जेठमल का कपट जाहिर होता है।

१३. जेठमल लिखता है कि "नाटक करने में प्रभुने ना न कही उसका कारण यह है कि सूर्याभ के साथ बहुत से देवता हैं, उनके निज निज स्थान में नाटक जुदे जुदे होते है। इस वास्ते सूर्याभ के नाटक को यदि भगवंत निषेध करें तो सर्व ठिकाने जुदे

१ श्रीआचारांगसूत्र में भगवंत श्री महावीरस्वामी ने पंचमुष्ठि लोंच किया तब रत्नमयथाल में लोंच के बालों को लेकर इंद्र ने कहाकि "**अणुजाणेसि भंते**" अर्थात् हे भगवन्! आप की आज्ञा होवे ऐसे कह कर क्षीरसमुद्र में स्थापन करे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जुदे नाटक होवें और उस से हिंसा बढ जावे" उस का उत्तर-जेठमल की यह कल्पना बिलकुल झूठी है । जब सूर्याभ प्रभु के पास आया तब क्या देवलोक में शून्यकार था ? और समवसरण में बारहवें देवलोक तक के देवता और इंद्र थे । क्या उन्हों ने सूर्याभ जैसा नाटक नहीं देखा था ? जो वे देखने वास्ते बैठे रहे, इस वास्ते यहां इतना ही समझने का है कि इंद्रादिक देवता बैठते हैं । सो फक्त भगवंत की भक्ति समझ के ही बैठते हैं । तथा सूर्याभ देवलोक में नाट्यारंभ बंद कर के आया है ऐसे भी नहीं कहा है । इस वास्ते जेठमल का पूर्वोक्त लिखना व्यर्थ है, और इस पर प्रश्न भी उत्पन्न होता है कि जब ढूंढिक रिख-साधु-व्याख्यान करते हैं तब विना समझे "**हाँ जी हाँ" तहत वचन**' करने वाले ढूंढिये उनके आगे आ बैठते हैं । जब तक वह व्याख्यान पढ़ते रहेंगे तब तक तो वे सारे बैठे रहेंगे । परंतु जब वह व्याख्यान बंद करेंगे तब स्त्रियाँ जा के चुल्हे में आग पावेंगी, रसोई पकाने लगेंगी, पानी भरने लग जावेंगी, और आदमी जा के अनेक प्रकार के छलकपट करेंगे, झूठ बोलेंगे, हरी सबजी लेने को चले जावेंगे, षट्काय का आरंभ करेंगे, इत्यादि अनेक प्रकार के पापकर्म करेंगे । तो वे सर्व पाप व्याख्यान बंद करने वाले रिखों (साधुओं) के शिर ठहरें या अन्य के ? जेठमलजी के कथन मुताबिक तो व्याख्यान बंद करने वाले रिखियों के ही शिर ठहरता है !

१४. जेठमल लिखता है कि "आनंद कामदेव प्रमुख श्रावकों ने भगवंत के आगे नाटक क्यों नहीं किया ?" उत्तर-उनमें सूर्याभ जैसी नाटक करने की अद्‌भुत शक्ति नहीं थी।

१५. जेठमल लिखता है कि "रावण ने अष्टापदपर्वत ऊपर जिनप्रतिमा के सन्मुख नाटक कर के तीर्थंकरगोत्र बांधा कहते हो । परंतु **श्रीज्ञातासूत्र** में वीस स्थानक आराधने से ही जीव तीर्थंकरगोत्र बांधता है ऐसे कहा है । उस में नाटक करने से तीर्थंकरगोत्र बांधने का तो नहीं कथन है" उत्तर-इस लेख से मालूम होता है कि जेठे निन्हव को जैनधर्म की शैली की और सूत्रार्थ की बिलकुल खबर नहीं थी, क्योंकि वीस स्थानक में प्रथम अरिहंत पद है और रावण ने नाटक किया सो अरिहंत की प्रतिमा के आगे ही किया है । इस वास्ते रावण ने अरिहंतपद आराध के तीर्थंकरगोत्र उपार्जन किया है ।

१६. जेठमल लिखता है कि "सूर्याभ के विमान में बारह बोल के देवता उत्पन्न होते हैं ऐसे सूर्याभ ने प्रभु को किये ६ प्रश्नों से ठहरता है । इस वास्ते जितने सूर्याभ विमान में देवता हुए उन सर्वने जिन प्रतिमा की पूजा की है" उत्तर-जेठमल का यह लेख स्वमतिकल्पना का है, क्योंकि वह करणी सम्यग्दृष्टि देवता की है मिथ्यात्वीकी नहीं । **श्रीरायपसेणीसूत्र** में सूर्याभ के सामानिक देवता ने सूर्याभ को पूर्व और पश्चात् हितकारी वस्तु कही है वहां कहा है यत -

अन्नेसिं च बहुणं वेमाणियाणं देवाणयदेवीणय अच्चणिज्जाओ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् अन्य दूसरे बहुत देवता और देवियों के पूजा करने लायक है, इस से सिद्ध होता है कि सम्यग्दृष्टि की यह करणी है । यदि ऐसे न हो तो "**सव्वेसिं वेमाणियाणं**" ऐसे पाठ होता, इस वास्ते विचार के देखो ।

१७. जेठमल कहता है कि "अनंत विजय देवता हुए । उन में सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों ही प्रकार के थे और उन सर्व ने सिद्धायतन में जिनपूजा की है, परंतु प्रतिमा पूजने से सर्व जीव सम्यग्दृष्टि हुए नहीं और सिद्धि भी नहीं पाये ।"

उत्तर - अपना मत सत्य ठहराने वाले ने सूत्र में किसी भी मिथ्यादृष्टि देवता ने सिद्धायतन में जिनप्रतिमा की पूजा की ऐसा अधिकार हो तो सो लिख के अपना पक्ष दृढ़ करना चाहिये । जेठमल ने ऐसा कोई भी सूत्रपाठ नहीं लिखा है । किंतु मनः कल्पित बातें लिख के पोथी भरी है । इस वास्ते उसका लिखना बिलकुल असत्य है, क्योंकि किसी भी सूत्र में इस मतलब का सूत्रपाठ नहीं है ।

और जेठमल ने लिखा है कि "प्रतिमा पूजने से कोई अभव्य सम्यग्दृष्टि न हुआ । इस वास्ते जिनप्रतिमा पूजने से फायदा नहीं है" उत्तर-अभव्य के जीव शुद्ध श्रद्धायुक्त अंतःकरण विना अनंती वार गौतमस्वामी सदृश चारित्र पालते हैं और नव में ग्रैवेयक तक जाते हैं । परंतु सम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं; ऐसे सूत्रकारों का कथन है, इस वास्ते जेठमल के लिखे मुताबिक तो चारित्र पालने से भी किसी ढूंढक को कुछ भी फायदा नहीं होगा ।

१८. पृष्ठ (१०२) में जेठमल ने सिद्धायतन में प्रतिमा की पूजा सर्व देवता करते हैं ऐसे सिद्ध करने के वास्ते कितनीक कुयुक्तियां लिखी हैं । सो सर्व उस के प्रथम के लेख के साथ मिलती हैं तो भी भोले लोगों को फंसाने वास्ते वारंवार एक की एक ही बात लिख के निकम्मे पत्रे काले किये हैं ।

१९. जेठमल लिखता है कि "सर्व जीव अनंती वार विजय पोलीए पणे उपजे है उन्हों ने प्रतिमा की पूजा की तथापि अनंते भव क्यों करने पडे ? क्योंकि सम्यक्त्ववान् को अनंत भव होगा नहीं ऐसा सूत्र का प्रमाण है" उत्तर-सम्यक्त्ववान् को अनंत भव होगा नहीं ऐसे जेठमल मूढ़मति लिखता है । सो बिलकुल जैन शैली से विपरीत और असत्य है, और "ऐसा सूत्रका प्रमाण है" ऐसे जो लिखा है सो भी जैसे मच्छीमार के पास मछलियां फँसाने वास्ते जाल होता है वैसे भोले लोगों को कुमार्ग में डालने का यह जाल है । क्योंकि सूत्रों में तो चार ज्ञानी, चौदह पूर्वी, यथाख्यातचारित्री, एकादशमगुणठाणे वाले को भी अनंते भव हो । ऐसे लिखा है तो सम्यग्दृष्टिको हो इस में क्या आश्चर्य है ? तथा सम्यक्त्व प्राप्ति के पीछे उत्कृष्ट अर्धपुद्गल परावर्त्त संसार रहता है और सो अनंताकाल होने से उस में अनंत भव हो सकते हैं[१] ।

१ **श्रीजीवाभिगम** सूत्रमें लिखा है यतः-

सम्मदिट्ठिस्स अंतरं सातियस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं सातियस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०. जेठमल लिखता है कि "एक वक्त राज्याभिषेक के समय प्रतिमा पूजते है परंतु पीछे भव पर्यंत प्रतिमा नहीं पूजते हैं" उत्तर-सूर्याभने पूर्व और पीछे हितकारी क्या है ? ऐसे पूछा तथा पूर्व और पीछे करने योग्य क्या है ? ऐसे भी पूछा, जिस के जवाब में उस के सामानिक देवताने जिनप्रतिमा की पूजा पूर्व और पीछे हितकारी और करने योग्य कही जो पाठ **श्रीरायपसेणी सूत्र** में प्रसिद्ध हैं[१] इस वास्ते सूर्याभ देवता ने जिनप्रतिमा की पूजा नित्यकरणी तथा सदा हितकारी जान के हमेशा की ऐसे सिद्ध होता है ।

२१. जेठा लिखता है कि "सूर्याभने धर्मशास्त्र पढे ऐसे सूत्रो में कहा है सो कुल धर्म के शास्त्र समझना क्योंकि जो धर्मशास्त्र हो तो मिथ्यात्वी और अभव्य क्यों वांचे ? कैसे सद्दहे ? और जिनवचन सच्चे कैसे जाने ?" उत्तर-सूर्याभ ने वांचे सो पुस्तक धर्मशास्त्र की ही है ऐसे सूत्रकार के कथन से निर्णय होता है `कुल' शब्द जेठे ने अपने घरका पाया है । सूत्र में नहीं है और लौकिक में भी कुलाचार की पुस्तकों को धर्मशास्त्र नहीं कहते हैं । धर्मशास्त्र पढ़ने का अधिकार सम्यग्दृष्टि को ही है, क्योंकि सर्व देवता पढ़ते हैं ऐसा किसी जगह नहीं कहा है । तो अभव्य और मिथ्या दृष्टि को पढ़ना और उन के ऊपर श्रद्धान करना कहां रहा ? कदापि जेठा मनःकल्पना से कहे कि वे वांचते हैं परन्तु श्रद्धान नहीं करते हैं । ऐसे तो ढूंढिये भी जैनशास्त्र वांचते हैं परंतु जिनाज्ञा मुताबिक उन की श्रद्धा नहीं करते हैं । उलटे पढने के बाद अपना कुमत स्थापन करने वास्ते भोले लोगों के आगे विपरीत प्ररूपणा कर के उन को ठगते हैं परंतु इस से जैनशास्त्र कुलधर्म के शास्त्र नहीं कहावेंगे ।

२२. जेठमल कहता है कि "सम्यग्दृष्टि देवता सिद्धांत पढ़ के अनंत संसारी क्यों हो ?

---

१ श्री रायपसेणीसूत्र का पाठ यह हैः-

"तएणं तस्स सूरियाभस्स पंचविहाए पज्जत्तिए पज्जत्तिभावं गयस्स समाणस्स ईमे एयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था किं मे पुव्विं करणिज्जं किं मे पच्छा करणिज्जं किं मे पुव्विं सेयं किंमे पच्छा सेयं किंमे पुव्विं पच्छावि हियाए सुहाए खमाए णिस्सेसाए अणुगामित्ताए भविस्सइ तएणं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणियपरिसोववण्णगा देवा सूरियाभस्स देवस्स इमेयारूवमब्भत्थियं जाव समुप्पण्णं समभिजाणित्ता जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सूरियाभं देवं करयल परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति वत्ता एवं वयासी एवंखलु देवाणुप्पियाणं सूरियाभे विमाणे सिद्धाययणे अट्ठसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेह पमाणमेत्ताणं सण्णिखित्तं चिट्ठंति सभाएणं सुहम्माए माणवए चेइए खंभे वइरामए गोलवट्ट समुग्गएबहूओ जिणसक्कहाओ सण्णिखित्ताओ चिट्ठंति ताओणं देवाणुप्पियाणं अण्णेसिं च बहूणं वेमाणियाणं देवाणय देवीणय अच्चणिज्जाओ जाव वंदणिज्जाओ णमंसणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवय चेइयं पज्जुवासणिज्जाओ तं एयणं देवाणुप्पियाणं पुव्विं करणिज्जं एयणं देवाणुप्पियाणं पच्छा करणिज्जं एयणं देवाणुप्पियाणं पुव्विं सेयं एयणं देवाणुप्पियाणं पच्छा सेयं एयणं देवाणुप्पियाणं पुव्विं पच्छावि हियाए सुहाए खमाए णिस्सेसाए अणुगामित्ताए भविस्सइ"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि तुमको श्रावकसूत्र वांचे तो अनंत संसारी हो ऐसे कहते हो" उत्तर-श्रावक को सिद्धांत नहीं वांचने सो मनुष्य आश्री है, देवता आश्री नहीं[१] जो ढूंढिये सम्यग्दृष्टि देवता और मनुष्य को श्रावक के भेद में एक सरीखे मानते हैं तो देवता की की जिन पूजा क्यों नहीं मानते हैं ?।

२३. जेठमल लिखता है कि सूर्याभ ने धर्मव्यवसाय ग्रहण किये पीछे बत्तीस वस्तु पूजी हैं । इस वास्ते जिनप्रतिमा पूजने संबंधी धर्मव्यवसाय कहे हैं ऐसे नहीं समझना"। उत्तर-सूर्याभने जो धर्मव्यवसाय ग्रहण किये हैं सो जिनप्रतिमा पूजने निमित्त के ही हैं । जो कि उसने प्रथम जिनप्रतिमा तथा जिन दाढा पूजे । पीछे अन्य वस्तु पूजी हैं । परंतु उससे कुछ बाधक नहीं हैं, क्योंकि मनुष्यलोक में भी जिनप्रतिमा की पूजा के बाद इसी व्यवसाय से अन्य शासनाधिष्ठायक देवदेवी की पूजा होती है ।

२४. मूढ़मति जेठमल ने सिद्धायतन में जो प्रतिमा हैं सो अरिहंत की नहीं ऐसे सिद्ध करने को आठ कुयुक्तियां लिखी हैं । उनके उत्तर -

(१) श्रीजीवाभिगम में "**रिट्ठमया मंसू**" यानि रिष्टरत्नमय दाढी मूछ कही हैं और **श्रीरायपसेणी** में नहीं कही तो इस से प्रतिमा में क्या झगडा ठहरा ? यह भूल तो जेठमल ने सूत्रकार की लिखी है ! परंतु जेठमल में इतनी विचारशक्ति नहीं थी कि जिस से विचार कर लेता कि सूत्र की रचना विचित्र प्रकार की है । किसी में कोई विशेषण होता है, और किसी में नहीं होता है ।

(२) सद्धायतन की जिनप्रतिमा को "**कणयमया चुच्चुआ**" कंचनमय स्तन कहे हैं इस में जेठमल लिखता है कि "पुरुष को स्तन नहीं होते हैं । **श्रीउववाईसूत्रमें** भगवंत के शरीर का वर्णन किया है वहां स्तनयुगल का वर्णन नहीं किया है" उत्तर-सूत्र में किसी जगह कोई बात विस्तार से होती है और कोई बात विस्तार से नहीं होती है, परंतु इस से कोई झगडा नहीं पडता है । जेठमल ने लिखा है कि "तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती, बलदेव, वासुदेव तथा उत्तम पुरुष वगैरह को स्तन नहीं होते हैं" जेठमल का यह लिखना बिलकुल मिथ्या है, क्योंकि पुरुष मात्र के हृदय के भाग में स्तन का दिखाव होता है, और उस से पुरुष का अंग शोभता है । जो ऐसे न होवे तो साफ तखते सरीखा हृदय बहुत ही बूरा दीखे । इस वास्ते जेठमल की यह कुयुक्ति बनावटी है; और इस से यह तो समझा जाता है कि जेठे की छाती साफ तखते सरीखी होगी[१] ।

१ श्रावक को जो सूत्र वांचने का निषेध है सो आचारांग, सूयगडांग, ठाणांग, समवायांग, भगवती प्रमुख सिद्धांत वांचने का है । परंतु सर्वथा धर्मशास्त्र के वांचने का निषेध नहीं है - **श्रीव्यवहारसूत्र** में लिखा है कि इतने वर्ष की दीक्षा पर्याय होवे तो आचारांग पढे, इतने की होवे तो सूयगडांग पढे इत्यादि कथन से सिद्ध होता है कि आचारांगादि सूत्रों के पढ़ने का गृहस्थ को निषेध है, अन्य प्रकरणादि धर्मशास्त्रों के पढ़ने का निषेध नहीं इस वास्ते देवता के पढे धर्मशास्त्रों में शंका करनी व्यर्थ है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) "तीर्थंकर के पास **(रिसिपरिसाए जईपरिसाए)** अर्थात् ऋषि की पर्षदा और यति की पर्षदा होती है ऐसे सूत्रो में कहा है परंतु नाग भूत और यक्ष की पर्षदा नहीं कही है और सिद्धायतन में रहे जिन बिंब के पास तो नाग भूत तथा यक्ष का परिवार कहा है । इस वास्ते सो अरिहंत की प्रतिमा नहीं ": ऐसे मंदमति जेठमल कहता है । उस का उत्तर-फक्त द्वेषबुद्धि से और मिथ्यात्व के उदय से जेठे निन्हवने जरा भी पाप होने का भय नहीं जाना है, क्योंकि सूत्र में तो प्रभु के पास बारह पर्षदा कही हैं । चार प्रकार के देवता और देवी यह आठ, साधु, साध्वी, मनुष्य और मनुष्य की चार यह कुल बारह पर्षदा कहाती हैं तो सिद्धायतन में छत्रधारी, चामरधारी आदि यक्ष तथा नागदेवता वगैरह की मूर्ति हैं । इसमें क्या अनुचित है ? क्योंकि जब साक्षात् प्रभु विचरते थे तब भी यक्षदेवता प्रभु को चामर करते थे ।

फिर वह लिखता है कि "अशाश्वती प्रतिमा के पास काउसग्गीए की प्रतिमा होती है और शाश्वती के पास नहीं होती है तो दोनों में कौन सी सच्ची और कौन सी झूठी ?" उत्तर-हम को तो दोनों ही प्रकार की प्रतिमा सच्ची और वंदनीय पूजनीय हैं, परंतु जो ढूंढिये काउसग्गीए सहित प्रतिमा तो अरिहंत की हो सही ऐसे कहते हैं तो मंजूर क्यों नहीं करते हैं ? परंतु जब तक मिथ्यात्वरूप जरकान (पीलीया रोग) हृदयरूप नेत्र में है तब तक शुद्धमार्ग का ज्ञान इनको नहीं होने वाला है ।

(४) सूर्याभ ने जिनप्रतिमा की मोरपीछी से पडिलेहणा की इसमें जेठमलने "साधु को पांच प्रकार के रजोहरण रखने शास्त्र में कहे हैं उनमें मोरपीछी का रजोहरण नहीं कहा है" ऐसे लिखा है, परंतु उस का इसके साथ कोई भी संबंध नहीं है । क्योंकि मोरपीछी प्रभु का कोई उपकरण नहीं है, सो तो जिन प्रतिमा के ऊपर से बारीक जीवों की रक्षा के निमित्त तथा रज प्रमुख प्रमार्जन के वास्ते भक्तिकारक श्रावकों को रखने की है ।

(५) सूर्याभ ने प्रतिमाको वस्त्र पहिनाये इस बाबत जेठमल लिखता है कि "भगवंत तो अचेल हैं । इस वास्ते उनको वस्त्र होने नहीं चाहियें"। यह लिखना बिलकुल मिथ्या है क्योंकि सूत्र में बाईस तीर्थंकरों को यावत् निर्वाण प्राप्त हुए वहां तक सचेल कहा है और वस्त्र पहिनाने का खुलासा द्रौपदी के अधिकार में लिखा गया है ।

(६) प्रभु को गहने न हो इस बाबत "आभरण पहिनाये सो जुदे और चढाये सो जुदे" ऐसे जेठमल कहता है । परंतु सो असत्य है; क्योंकि सूत्र में "**आभरणारोहणं**" ऐसा एक ही पाठ है, और आभरण पहिनाने तो प्रभु की भक्ति निमित्त ही है ।

---

१ प्रथम की और दूसरी युक्ति को ठीक ठीक देखने से मालूम होता है कि जेठमल ने भोले लोकों को फसाने के वास्ते फक्त एक जाल रचा है, क्योंकि प्रथम युक्तिमें **रायपसेणी** सूत्र का प्रमाण दे के **जीवाभिगमसूत्र** के पाठ को असत्य करना चाहा, परंतु जब स्तन का वर्णन आया तो **रायपसेणीसूत्रको** भूला बैठा ! क्योंकि रायपसेणीसूत्र में भी कनकमय स्तन लिखे हैं - तथाहि - "**तवणिज्ज मयाचुच्चुआ**"-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(७) स्त्री के संघट्टे बाबत का प्रत्युत्तर द्रौपदी के अधिकार में लिख आए हैं ।

(८) "सिद्धायतन में जिनप्रतिमा के आगे धूप धुखाया और साक्षात् भगवंत के आगे न धुखाया" ऐसे जेठमल लिखता है परंतु सो झूठ है; क्योंकि प्रभु के सन्मुख भी सूर्याभ की आज्ञा से उस के आभियोगिक देवताओं ने अनेक सुगंधी द्रव्यों से संयुक्त धूप धुखाया है ऐसे **श्रीरायपसेणीसूत्र** में कहा है ।

२५. जेठमल कहता है कि "सर्व भोग में स्त्री प्रधान है, इस वास्ते स्त्री क्यों प्रभु को नहीं चढाते हो ?" मंदमति जेठमल का यह लिखना महा अविवेक का है, क्योंकि जिनप्रतिमा की भक्ति जैसे उचित होवे वैसे होती है, अनुचित नहीं होती है; परंतु सर्व भोग में स्त्री प्रधान है ऐसा जो ढूंढिये मानते हैं तो उन के बेअकल श्रावक अशन, पान, खादिम, स्वादिम प्रमुख पदार्थों से अपने गुरुओं की भक्ति करते हैं परंतु उन में से कितनेक ढूंढियों ने अपनी कन्या अपने रिख-साधुओं के आगे धरी हैं और विहराई हैं तो दिखाना चाहिये ! जेठमल के लिखे मुताबिक तो ऐसे जरूर होना चाहिये ! ! ! तथा मूर्खशिरोमणि जेठे के पूर्वोक्त लेख से ऐसे भी निश्चय होता है कि उस जेठे के हृदय से स्त्री की लालसा मिटी नहीं थी । इसी वास्ते उस ने सर्व भोग में स्त्री को प्रधान माना है । इस बात का सबूत ढूंढक पट्टावलि में लिखा गया है ।

२६. जेठमल लिखता है कि "चैत्य, देवता के परिग्रह में गिना है तो परिग्रह को पूजे क्या लाभ होवे ?" उत्तर-सूत्रकार ने साधु के शरीर को भी परिग्रह में गिना है तो गणधर महाराज को तथा मुनियों को वंदना नमस्कार करने से तथा उनकी सेवाभक्ति करने से जेठमल के कहने मुताबिक तो कुछ भी लाभ न होना चाहिये । और सूत्र में तो बडा भारी लाभ बताया है । इस वास्ते उसका लिखना मिथ्या है । क्योंकि जिसको अपेक्षा का ज्ञान न हो उसको जैनशास्त्र समझना बहुत मुश्किल हैं, और इसी वास्ते चैत्य को देवता के परिग्रह में गिना है । उसकी अपेक्षा जेठमल के समझने में नहीं आई है । इस तरह अपेक्षा समझे विना सूत्रपाठ के विपरीत अर्थ कर के भोले लोगों को फंसाते हैं । इसी वास्ते उन को शास्त्रकार निन्हव कहते हैं ।

२७. **नमुत्थुणं** की बाबत जेठमलने जो कुयुक्ति लिखी हैं और तीन भेद दिखाये हैं सो बिलकुल खोटे हैं, क्योंकि इस प्रकार को तीन भेद किसी जगह नहीं कहे हैं, तथा किसी भी मिथ्यादृष्टि ने किसी भी अन्य देव के आगे **नमुत्थुणं** पढा ऐसे भी सूत्र में नहीं कहा है, क्योंकि **नमुत्थुणं** में कहे गुण सिवाय तीर्थंकर महाराज के अन्य किसी में नहीं हैं, इस वास्ते नमुत्थुणं कहना सो सम्यग्दृष्टि की ही करणी है ऐसे मालूम होता है ।

२८. जेठमल कहता है कि "किसी देवता ने साक्षात् केवली भगवंत को **नमुत्थुणं** नहीं कहा है" सो असत्य है, सूर्याभ देवताने वीर प्रभु को **नमुत्थुणं** कहा है ऐसे **श्रीरायपसेणीसूत्र** में प्रकट पाठ है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. जेठमल जीत आचार ठहरा के देवता की करणी निकाल देता है परंतु अरे ढूंढिये! क्या देवता की करणी से पुण्यपाप का बंध नही होता है ? जो कहोगे होता है तो सूर्याभ ने पूर्वोक्त रीति से श्रीवीर प्रभु की भक्ति की उस से उस को पुण्य का बंध हुआ या पाप का ? जो कहोगे कि पुण्य या पाप किसी का भी बंध नहीं होता है तो जीव समयमात्र यावत् सात कर्म बांधे विना नहीं रहे ऐसे सूत्र में कहा है सो कैसे मिलाओगे ? परंतु समझने का तो इतना ही है, कि सूर्याभ तथा अन्य देवता जो पूर्वोक्त प्रकार जिनेश्वर भगवंत की भक्ति करते हैं सो महापुण्यराशि संपादन करते हैं, क्योंकि तीर्थंकर भगवंत की इस कार्य में आज्ञा है।

३०. जेठमल "**पुव्विं पच्छा**" का अर्थ इस लोक संबंधी ठहराता है और "पेच्चा शब्द का अर्थ परलोक ठहराता है । सो जेठमल की मूढ़ता है; क्योंकि `पुव्विं पच्छा' का अर्थ `पूर्वजन्म' और `अगला जन्म' ऐसा होता है; `पेच्चा' और `पच्छा' पर्यायी शब्द है, इन दोनों का एक ही अर्थ है । जेठे ने खोटा अर्थ लिखा है । इस से निश्चय होता है कि जेठलम को शब्दार्थ की समझ ही नहीं थी । **श्रीआचारांगसूत्र** में कहा है कि "**जस्स नत्थि पुव्विं पच्छा मज्झे तस्स कओसिया**" अर्थात् जिसको पूर्वभव और पश्चात् अर्थात् अगले भव में कुछ नहीं है उसको मध्यमें भी कहां से होगा ? तात्पर्य जिस को पूर्व तथा पश्चात् है उस को मध्यमें भी अवश्य है । इस वास्ते सूर्याभ की जिनपूजा उस को त्रिकाल हितकारिणी है, ऐसे **श्रीरायपसेणीसूत्र** के पाठ का अर्थ होता है।

और **श्री उत्तराध्ययनसूत्र** में मृगापुत्र के संबंध में कहा है कि

अम्मत्ताय मए भोगा भुत्ता विसफलोवमा ।।
पच्छा कडुअविवागा अणुबंध दुहावहा ।।१।।

अर्थ - हे मातापिता ! मैंने विषफल की उपमा वाले भोग भोगे हैं, जो भोग कैसे हैं ? `पच्छा' अर्थात् अगले जन्म में कडुवा है फल जिन का और परंपरा से दुःख के देने वाले ऐसे हैं । इस सूत्रपाठ में भी `**पच्छा**' शब्द का अर्थ परभव ही होता है । किं बहुना ।

३१. जेठमल सूर्याभ के पाठ में बताये जिन पूजा के फल की बाबत "**निस्सेसाए**" अर्थात् मोक्ष के वास्ते ऐसा शब्द है । उस शब्द का अर्थ फिराने वास्ते **भगवतीसूत्र** में से जलते घर से धन निकालने का तथा वरमी फोड़ के द्रव्य निकालने का अधिकार दिखाता है । और कहता है कि "इस संबंधमें भी" (निस्सेसाए) ऐसा पद है । इस वास्ते जो इस पद का अर्थ `मोक्षार्थे' ऐसा हो तो धन निकालने से मोक्ष कैसे हो ? उस का उत्तर-धन से सुपात्र में दान दे, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा बनवावे, सातों क्षेत्रों में, तीर्थयात्रा में, दया में तथा दान में धन खरचे तो उससे यावत् मोक्षप्राप्त हो । इस वास्ते सूत्र में जहां जहां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"**निस्सेसाए**" शब्द है वहां वहां उस शब्द का अर्थ मोक्ष के वास्ते ऐसा ही होता है और सो शब्द जिनप्रतिमा के पूजने के फल में भी है तो फक्त एक मूठमति जेठमल के कहने से महाबुद्धिमान् पूर्वाचार्यकृत शास्त्रार्थ कदापि फिर नहीं सकता है[१]

३२. जेठमल निन्हवने **ओघनिर्युक्ति** की टीका का पाठ लिखा है सो भी असत्य है, क्योंकि ऐसा पाठ **ओघनिर्युक्ति** में तथा उस की टीका में किसी जगह भी नहीं है । यह लिखना जेठमल का ऐसा है कि जैसे कोई स्वेच्छा से लिख देवे कि "मुंहबंधों का पंथ किसी चमार का चलाया हुआ है क्योंकि इनका कुछ आचारव्यवहार चमारों से भी बुरा है ऐसा कथन प्राचीन ढूंढक निर्युक्तिमें है"

३३. इस प्रश्नोत्तर में आदि से अंत तक जेठमल ने सूर्याभ जैसे सम्यग्दृष्टि देवता की और उस की शुभ क्रिया की निंदा की है, परंतु **श्रीठाणांगसूत्र** के पांचवें ठाणे में कहा है कि पांच प्रकार से जीव दुर्लभ बोधि होगा अर्थात् पांच काम करने से जीवों को जन्मांतर में धर्मकी प्राप्ति दुर्लभ होगी यत -

पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लहबोहियत्ताए कम्मं पकरेंति । तंजहा । अरिहंताणं अवण्णं वयमाणे १ अरिहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्णं वयमाणे २ आयरिय उवझायाणं अवण्णं वयमाणे ३ चाउवण्णस्स संघस्स अवण्णं वयमाणे ४ विविक्कतवबंभचेराणं देवाणं अवण्णं वयमाणे ।।५।।

उपर के सूत्रपाठ के पांचवें बोल में सम्यग्दृष्टि देवता के अवर्णवाद बोलने से दुर्लभ बोधि हो ऐसे कहा है । इस वास्ते अरे ढूंढियो ! याद रखना कि सम्यग्दृष्टि देवतां के अवर्णवाद बोलने से महा नीचगति के पात्र होगे और जन्मांतर में धर्म पाप्ति दुर्लभ होगी ।

।।इति।।

२१. देवता जिनेश्वर की दाढा पूजते हैं :

एकवीस वें प्रश्नोत्तर में सूर्याभ देवता तथा विजय पोलिया प्रमुखों ने जिनदाढा पूजी है । उस का निषेध करने वास्ते जेठमल ने कितनीक कुयुक्तियां लिखी हैं । परंतु उनमें से बहुत कुयुक्तियों के प्रत्युत्तर वीसवें प्रश्नोत्तर में लिखे गये हैं । बाकी शेष कुयुक्तियों के उत्तर लिखते हैं । **श्रीभगवतीसूत्र** के दशवें शतक के पांचवें उद्देश में कहा है कि -

१ जो ढूंढिये "**निस्सेसाए**" शब्द का अर्थ मोक्ष के वास्ते ऐसा नहीं मानते है तो **श्रीरायपसेणीसूत्र** में अरिहंत भगवंतको वंदना नमस्कार करने का फल सूर्याभने चिंतन किया वहां भी "**निस्सेसाए**" शब्द है जो पाठ इसी प्रश्नोत्तर की आदि में लिखा हुआ है, और अन्य शास्त्रों मे भी है तो ढूंढियोंके माने मुताबिक तो अरिहंत भगवंत की वंदना नमस्कार का फल भी मोक्ष न होगा ! क्योंकि वहां भी "**निस्सेसाए**" फल लिखा है । इस वास्ते सिद्ध होता है कि जिनप्रतिमा के साथ ही ढूंढियों का द्वेष है और इस से अर्थ का अनर्थ करते है, परंतु यह इन का उद्यम अपने हाथों से अपना मुंह काला करने सरीखा है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पभूणं भंते चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमर चंचाए रायहाणिए सभाए सुहम्माए चमरंसि सिंहासणंसि तुडियणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए ? णोइणट्ठे समट्ठे से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ णो पभू जाव विहरित्तए ? गोयमा ! चमरस्सणं असुरिंदस्सअसुरकुमाररन्नो चमरचंचाए रायहाणिए सभाए सुहम्माए माणवए चेइयखंभें वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहुइओ जिणसक्कहाओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठंति जाओणं चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो अन्ने सिं च बहुणं असुरकुमाराणं देवाणं देवीणय अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ नमंसणिज्जाओ । पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जवासणिज्जाओ भवंति से तेणट्ठेणं अज्जो एवं वुच्चइ णो पभू जाव विहरित्तए । पभूणं भंते चमरे असुरिंदे असुरराया चमरचंचाए रायहाणिए सभाए सुहम्माए चमरंसि सिंहासणंसि चउसट्ठिए सामाणियसाहस्सिहिं तायत्तिसाए जाव अन्नेहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहिय सद्धिं संपरिवुडे महया नट्ट जाव भुंजमाणे विहरित्तए ? हंता केवल परियारिट्ठिए नो चेव णं मेहुणवत्तियाए ।।

अर्थ - गौतमस्वामी ने महावीरस्वामी को प्रश्न किया कि "हे भगवन् ! चमर असुरदेव का इंद्र असुर कुमार का राजा, चमर चंचानामा राज्यधानी में, सुधर्मानामा सभा में, चमरनामा सिंहासन के ऊपर रहा हुआ तुडिय अर्थात् इंद्राणी का समूह उस के साथ देवता संबंधी भोगों को भोगता हुआ विचरने को समर्थ है ?" भगवंत कहते हैं "यह अर्थ समर्थ नहीं अर्थात् भोग न भोगे" फिर गौतमस्वामी पूछते हैं "हे भगवन् ! भोग भोगता हुआ विचरने को समर्थ नहीं ऐसा किस कारण से कहते हो ?" प्रभु कहते हैं "हे गौतम ! चमर असुरेंद्र असुरकुमार राजा की चमर चंचा राज्यधानी में सुधर्मा नामा सभा में माणवक नामा चैत्यस्तंभ में वज्रमय बहुत गोल डब्बे हैं । उन में बहुत जिनेश्वर की दाढा थापी हुई हैं जो दाढा चमर असुरेंद्र असुरकुमार राजा के तथा अन्य बहुत असुर कुमार देवताओं के और देवियों के अर्चने योग्य, वंदना करने योग्य, नमस्कार करने योग्य, पूजने योग्य, सत्कार करने योग्य, सन्मान करने योग्य, कल्याणकारी मंगलकारी, देव संबंधी चैत्य अर्थात् जिन प्रतिमा की तरह सेवा करने योग्य हैं । हे आर्य ! उस कारण से ऐसे कहते हैं कि देवियों के साथ भोग भोगने को समर्थ नहीं है "। फिर गौतमस्वामी पूछते है कि "चमर असुरेंद्र असुर कुमार का राजा, चमर चंचा राज्यधानी में सुधर्मा सभा में चमर सिंहासनोपरि बैठा हुआ चौसठ हजार सामानिक देवताओं के साथ तथा तैंतीस त्रायत्रिंशक के साथ यावत् अन्य भी असुर कुमार जाति के देवताओं के तथा देवियों के साथ परवरे हुआ बडे भारी नाटक आदिको देखता हुआ विचरने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को समर्थ है ?" भगवंत कहते हैं "हां, केवल स्त्री शब्द नाटक आदि में श्रवणादिक परिचारण करे परंतु मैथुन संज्ञा से सुधर्मा सभा में शब्दादिक भी न सेवे"।

पूर्वोक्त पाठ में जैसे चमरेंद्र के वास्ते कथन किया वेसे सौधर्मेंद्र तक अर्थात् भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिषि, वैमानिक तथा उन के लोकपाल संबंधी कथन के आलावे (पाठ) हैं सो तदर्थी पाठ देख लेना ।

पूर्वोक्त सूत्रपाठ से जेठमल की कितनीक कुयुक्तियों के प्रत्युत्तर आ जाते हैं[१] ।

जेठमल लिखता हे कि "भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि तथा मिथ्यादृष्टि आदि सर्व देवता जिनेश्वर भगवंत की प्रतिमा सिद्धायतन में हैं । वे तथा जिन दाढा पूजते हैं । इस वास्ते उन का मोक्षफल नहीं" इस का प्रत्युत्तर सूर्याभ के प्रश्नोत्तर में लिख दिया है । परंतु ढूंढिये जो करणी सर्व करते हैं, उस का मोक्षफल नहीं समझते हैं । तो संयम, श्रावक व्रत, सामायिक और प्रतिक्रमणादि भव्य, अभव्य, सम्यगदृष्टि तथा मिथ्यादृष्टि सर्व ही करते है । इस वास्ते मूढ़मति ढूंढियों को साधुत्व, श्रावक व्रत, सामायिकादि भी नहीं करनी चाहिये ! परंतु बेअकल ढूंढिये यह नहीं समझते हैं कि जैसा जिस का भाव है वैसा उस को फल है ।

जेठमल लिखता है कि "जीत आचार जानके ही देवता दाढा आदि लेते हैं । धर्म जान के नहीं लेते हैं" उत्तर-**श्रीजंबूद्वीप पन्नत्ती सूत्रमें** जहां जिनदाढा लेने का अधिकार बताया है वहां कहा है कि "चार इंद्र चार दाढा ले, पीछे कितनेक देवता अंगोपांग के अस्थि प्रमुख लेते हैं । उन में कितनेक जिनभक्ति जानके लेते हैं, और कितनेक धर्म जान के लेते हैं"। इस वास्ते जेठमल का लिखना मिथ्या है, **श्रीजंबूद्वीप पन्नत्ती** का पाठ यह है

केई जिणभत्तिए केई जीयमेयंतिकट्टु केई धम्मोत्तिकट्टु गिण्हंति ।।

जेठमल लिखता है, कि "दाढा लेने का अधिकार तो चार इंद्रों का है और दाढा की पूजा तो बहुत देवता करते हैं ऐसे कहा है । इस वास्ते शाश्वत पुद्गल दाढा के आकार परिणमते हैं"। उस का उत्तर-एक पल्योपम काल में असंख्यात तीर्थंकरों का निर्वाण होता है । इस वास्ते सर्व सुधर्मा सभाओं में जिन दाढा हो सकती हैं, ओर महा विदेह के तीर्थंकरों की दाढा सर्व इंद्र और विमान, भुवन, नगराधिपत्यादिक लेते हैं, परंतु भरतखंड की तरह चार ही इंद्र ले यह मर्यादा नहीं है । तथा श्री **जंबूद्वीपपन्नत्तिसूत्र** की वृत्ति में **श्री शांतिचंद्रोपाध्यायजी ने "जिनसक्काहा"** शब्द कर के **"जिनास्थीनि"** अर्थात् जिनेश्वर के अस्थि कहे हैं तथा उसी सूत्र में चार इंद्रों के सिवाय अन्य बहुत देवता जिनेश्वर के दांत, हाड, प्रमुखअस्थि लेते हैं ऐसा अधिकार है ।

१ **श्रीरायपसेणी, जीवाभिगम, जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति** प्रमुख शास्त्रों में भी तीर्थंकरों की दाढा पूजनी लिखी है, और तिस पूजा का फल यावत् मोक्ष लिखा है ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस वास्ते जेठमल की की कुयुक्तियां खोटी हैं ओर जेठमल दाढा कों शाश्वत पुद्गल ठहराता है । परंतु सूत्रो में तो खुलासा जिनेश्वर की दाढा कही हैं । शाश्वती दाढा तो किसी जगह भी नहीं कही हैं । इस वास्ते जेठमल का लिखना मिथ्या है ।

जेठमल लिखता है कि "जो धर्म जान के लेते हो तो अन्य इंद्र ले और अच्युतेंद्र क्यों न ले ?"

उत्तर - वीरभगवान् दीक्षा पर्याय में विचरते थे उस अवसर में उन को अनेक प्रकार के उपसर्ग हुए । तब भगवंत की भक्ति जान के धर्म निमित्त सौधर्मेंद्र ने वारंवार आ के उपसर्ग निवारण किये । वेसे अच्युतेंद्र ने क्यों नहीं किया ? क्या वह जिनेश्वर की भक्ति में धर्म नहीं समझते थे ? समझते तो थे तथापि पूर्वोक्त कार्य सौधर्मेंद्र ने ही किया है । वैसे ही भरतादि क्षेत्र के तीर्थंकरों की दाढा चार इंद्र लेते हैं । और महा विदेह के तीर्थंकरों की सर्व लेते हैं । इस वास्ते इसमें कुछ भी बाधक नहीं है । जेठमल लिखता है कि "दाढा सदाकाल नहीं रह सकती हैं । इस वास्ते शाश्वत पुद्गल समझने" इस तरह असत्य लेख लिखने में उस को कुछ भी विचार नहीं हुआ है सो उस की मूढता की निशानी है, क्योंकि दाढा सदाकाल रहती हैं ऐसे हम नहीं कहते हैं । परंतु वारंवार तीर्थंकरों के निर्वाण समय दाढा तथा अन्य अस्थि देवता लेते हैं । इस वास्ते उन को दाढा की पूजा में बिलकुल विरह नहीं पड़ता है ।

जेठमल कहता है कि "जमालि तथा मेघ कुमार की माता ने उन के केश मोहनी कर्म के उदय से लिये हैं, वेसे दाढा लेने में मोहनी कर्म का उदय है" उत्तर -

प्रभु की दाढा देवता लेते हैं सो धर्मबुद्धि से लेते हैं उस में उन को कोई मोहनी कर्म का उदय नहीं है । जमालि प्रमुख के केश लेने वाली तो उन की माता थी उस में उन को तो मोह भी हो सकता है परंतु इंद्रादि देवते दाढा आदि लेते हैं । वे कोई भगवंत के सक्के संबंधी नहीं थे । जो कि जमालि प्रमुख की माता की तरह मोहनी कर्म के उदय से दाढा ले, वे तो प्रभु के सेवक हैं और धर्मबुद्धि से ही प्रभु की दाढा प्रमुख लेते हैं ऐसे स्पष्ट मालूम होता है ।

जेठमल लिखता है कि "देवता जो दाढा प्रमुख धर्मबुद्धि से लेते हो तो श्रावक रक्षा भी क्यों नहीं ले ?"

उत्तर - जिस वक्त तीर्थंकर का निर्वाण होता है उस वक्त निर्वाण महोत्सव करने वास्ते अगणित देवता आते हैं और अग्निदाह किये पीछे वे दाढा प्रमुख समग्र ले जाते हैं । शेष कुछ भी नहीं रहता है तो इतने सारे देवताओं के बीच मनुष्य किस गिनती में हैं जो उन के बीच जा के रक्षा प्रमुख कुछ भी ले सकें ? ।

जेठमल कहता है कि "कुलधर्म जान के दाढा पूजते हैं" सो भी असत्य है क्योंकि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रों में किसी जगह भी कुलधर्म नहीं कहा है । जेठा इस को लौकिक जीतव्यवहार की करणी ठहराता है, परंतु यह करणी तो लोकोत्तर मार्ग की है । "जिनदाढा की आशातना टालने वास्ते इंद्रादिक सुधर्मा सभा में भोग नहीं भोगते हैं । तथा मैथुन संज्ञा से स्त्री के शब्द का भी सेवन नहीं करते हैं ।" ऐसे पूर्वोक्त सूत्रपाठ में कहा है । तथापि बिना अकल के बेवकूफ आदमी की तरह जेठमल ने कितनीक कुयुक्तियां लिखी हैं सो मिथ्या हैं, इस प्रसंग में जेठे ने कृष्ण की सभा की बात लिखी है कि "कृष्ण की भी सुधर्मा सभा है । तो उस में क्या भोग नहीं भोगते होंगे ?" उत्तर-सूत्रों में ऐसे नहीं कहा है कि कृष्णकी सभा में विषयसेवन नहीं होता है । इस प्रकार लिखने से जेठे का यह अभिप्राय मालूम होता है कि ऐसी ऐसी कुयुक्तियां लिख के दाढा का महत्त्व घटा दे परंतु पूर्वोक्त पाठ में सिद्धांतकार ने खुलासा कहा है कि दाढा की आशातना टालने के निमित्त ही इंद्रादिक देवता सुधर्मा सभा में भोग नहीं भोगते हैं । तामलि तापस ईशानेंद्र हो के पहले प्रथम जिनप्रतिमा की पूजा करता हुआ सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ है । इस बाबत में जेठा कुमति उसकी की पूजा को मिथ्यादृष्टित्व में ठहराता है सो मिथ्या है क्योंकि उस ने इंद्रपणे पैदा हो के जिनप्रतिमा की पूजा कर के तत्काल ही भगवंत महावीर स्वामी के समीप जा के प्रश्न किया और भगवंतने आराधक कहा । पूर्वभव में तो वह तापस था । इस वास्ते इस भव में उत्पन्न हो के तत्काल से जिनप्रतिमा की पूजा के कारण से ही आराधक कहा है ऐसे समझना[१] ।

अभव्यकुलक में कहा है कि अभव्य का जीव इंद्र न हो । इस बाबत जेठमल कहता है कि "इंद्र से नवग्रैवेयक वाले अधिक ऋद्धि वाले हैं अहमिंद्र और वहां तक तो अभव्य जाता है तो इंद्र न हो उसका क्या कारण ?" उत्तर-यथा कोई शाहुकार बहुत धनाढ्य अर्थात् गाम के राजा से भी अधिक धनवान् हो राजा से नहीं मिलता है । तथैव अभव्य का जीव इंद्र न हो और ग्रैवेयक में देवता हो उस में कोई बाधक नहीं, ऐसा स्पष्ट समझा जाता है । जैसे देवता चय के एकेंद्रिय होता है । परंतु विकलेंद्रिय नहीं होता है । (जो कि विकलेंद्रिय एकेंद्रिय से अधिक पुण्य वाले हैं) तथा एकेंद्रिय से निकल के एकावतारी हो के मोक्ष जाते हैं । परंतु विकलेंद्रिय कि जिसकी पुण्याई एकेंद्रिय से अधिक गिनी जाती है उस में से निकल के कोई भी जीव एकावतारी नहीं होता है। इस वास्ते जैसी जिस की स्थिति बंधी हुई है वैसी उस की गति-अगति होती है ।

"**अभव्यकुलक** में इंद्र का सामानिक देवता अभव्य न हो ऐसे कहा है तो संगम अभव्य का जीव इंद्र का सामानिक क्यों हुआ ?" ऐसे जेठमल लिखता है उस का उत्तर-जैनशास्त्र की रचना विचित्र प्रकार की है, **श्रीभगवतीसूत्र** के प्रथम शतक के दूसरे उद्देश में विराधित संयमी उत्कृष्ट सुधर्म देवलोक में जावे ऐसे कहा है । और **ज्ञातासूत्र**

१ 'यह जिनपूजा थी आराधक ईशान इन्द्र कहायाजी' ऐसा पूर्वमहात्माओं का वचन भी है ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के सोलहवें अध्यधन में विराधित संयमी सुकुमालिका ईशान देवलोक में गई ऐसे कहा है । तथा **श्रीउववाइसूत्र** में तापस उत्कृष्ट ज्योतिषि तक जाते हैं ऐसे कहा है । और **भगवतीसूत्र** में तामलि तापस ईशानेंद्र हुआ ऐसे कहा है, इत्यादिक बहुत चर्चा है । परंतु ग्रंथ बढ जाने के कारण यहां नहीं लिखी है, जब सूत्रो में इस तरह है तो ग्रंथों में हो इस में कुछ आश्चर्य नहीं है । सूर्याभ ने प्रभु को ६ बोल पूछे । इस से बारह बोल वाले सूर्याभ विमान में जाते हैं ऐसे जेठमलने ठहराया है । परंतु सो झूठ है, क्योंकि छद्मस्थ जीव अज्ञानता अथवा शंका से चाहो जैसा प्रश्न करे तो उस में कोई आश्चर्य नहीं है, तथा "देवता संबंधी बारह बोल की पृच्छा सूत्र में है परंतु मनुष्य संबंधी नहीं है । इस वास्ते बारह बोल के देवता होते हैं" ऐसे जेठे ने सिद्ध किया है तो मनुष्य संबंधी बारह बोल की पृच्छा न होने से जेठ ने लिखे मुताबिक कया मनुष्य बारह बोल के नहीं होते हैं ? परंतु जेठमल ने फक्त जिनप्रतिमाके उत्थापन करने वास्ते तथा मंदमति जीवों को अपने फंदे में फंसाने के निमित्त ही ऐसी मिथ्या कुयुक्तियां की हैं ।

और देवता की करणी को जीत आचार ठहरा के जेठमल उस करणी को गिनती में से निकाल देता है । अर्थात् उस का कुछ भी फल नहीं ऐसे ठहराता है । परंतु इस में इतनी भी समझ नहीं कि इंद्र प्रमुख सम्यग्दृष्टि देवताओं का आचारव्यवहार कैसा है ? वह प्रभु के पांचों कल्याणकों में महोत्सव करते हैं, जिनप्रतिमा और जिन दाढा की पूजा करते हैं, अठवे (८) नंदीश्वरद्वीप में अट्ठाई महोत्सव करते हैं । मुनि महाराजा को वंदना करने वास्ते आते हैं, इत्यादि सम्यग्दृष्टि समग्र करणी करते हैं । परंतु किसी जगह अन्य हरिहरादिक देवों को तथा मिथ्यात्वियों को नमस्कार करने वास्ते गये, पूजने वास्ते गये, उनके गुरुओं को वंदना की, उन का महोत्सव किया इत्यादि कुछ भी नहीं कहा है । इस वास्ते उन की की सर्व करणी सम्यग्दृष्टिकी है, और महापुण्यप्राप्ति का कारण है, और जीतआचार से पुण्यबंध नहीं होता है ऐसे कहां कहा है ? ।

जेठमल केवलकल्याणक का महोत्सव जीतआचार में नहीं लिखता है । इस से मालूम होता है कि उस में तो जेठमल पुण्य बंध समझता है, परंतु **श्रीजंबूद्वीपपन्नत्तीसूत्र** में तो पांचों ही कल्याणकों के महोत्सव करने वास्ते धर्म और जिनभक्ति जान के आते हैं ऐसे कहा है । इस वास्ते जेठे ने जो अपने मनपसंद के लेख लिखे हैं सो सर्व मिथ्या है । **श्रीजंबूद्वीपपन्नत्तीसूत्र** के तीसरे अधिकार में कहा है कि -

अप्पेगइया वंदणवत्तियं एवं पूयणवत्तियं सक्कार-सम्माण-दंसण-कोउहल्ल अप्पे सक्कस्स वयणुयत्तमाणा अप्पे अण्णमण्णमणुयत्तमाणा अप्पे जीयमेतं एवमादि ।।

अर्थ - कितनेक देवता वंदना करने वास्ते, कितनेक पूजा वास्ते, सत्कार वास्ते, सन्मान वास्ते, दर्शन वास्ते, कुतूहल वास्ते, कितनेक शक्रेंद्र के कहने से, कोई कोई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परस्पर एकदूसरे के कहने से और कितनेक हमारा यह उचित काम है ऐसा जान के आते हैं ।

जेठमल लिखता है कि "श्रीअष्टापदजी ऊपर ऋषभदेव स्वामी का निर्वाण हुआ तब इंद्र ने एक स्तूभ कराया है" सो मिथ्या है, क्योंकि श्री **जंबूद्वीपपन्नत्तीसूत्र** में अरिहंतका, गणधर का और शेष अणगार का ऐसे तीन स्तूभ इंद्र ने कराये ऐसे कहा है । यतः -

तएणं सक्के देविंदे देवराया बहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे जहारियं एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया सव्वरयणमए महालए तओ चेइयथूभे करेह एगं भगवओ तित्थयरस्स चियगाए एगं गणहर चियगाए एगं अवसेसाणं अगाराणं चियगाए ।

अर्थ - तद पीछे शक्र देवेंद्र देवता का राजा बहुत भुवनपति यावत् वैमानिक देवताओं प्रति यथायोग्य ऐसे कहता हुआ कि जलदी हे देवानुप्रियो ! सर्व रत्नमय अत्यंत विस्तीर्ण ऐसे तीन चैत्यस्तूभ करो । एक भगवंत तीर्थंकर की चितास्थान ऊपर, एक गणधर की चिता उपर, और एक अवशेष साधुओं की चिता ऊपर ।

जेठमल "श्रावक ने चैत्य नहीं कराये" ऐसे लिखता है, परंतु श्रावकों से चैत्य कराये गये का अधिकारसूत्रो में बहुत ठिकाने है । जो पूर्व लिख आए हैं और आगे लिखेंगे ।

जेठमल लिखता है कि "साक्षात् भगवंत को किसीने **नमुत्थुणं** नहीं कहा है"। उत्तर-सूर्याभ के साक्षात् भगवंत को **नमुत्थुणं** कहने का खुलासा पाठ **श्रीरायपसेणीसूत्र** में है । इस वास्ते जेठमलका यह लिखना भी केवल मिथ्या है ।

श्रीभगवतीसूत्र में देवता को `**नोधम्मिआ**' कहा है । ऐसे जेठमल लिखता है । उत्तर-उस ठिकाने देवता को चारित्र की अपेक्षा **नोधम्मिआ** कहा है । जैसे इसी **भगवतीसूत्र** के लद्धि उद्देश में सम्यग्दृष्टि को चारित्र की अपेक्षा बाल कहा है, वैसे उस स्थल में देवता को चारित्र की अपेक्षा **नोधम्मिआ** कहा है; परंतु इस से श्रुत और सम्यक्त्व की अपेक्षा को **नोधमिआ** नहीं समझना, क्योंकि सम्यक्त्व की अपेक्षा देवता को संवरी कहा है । **श्रीठाणांगसूत्र** में सम्यक्त्व को संवर धर्म रूप कहा है । और जिन प्रतिमा का पूजन करना सो सम्यक्त्व की करणी है । ढूंढियों ! जो जेठमल के लिखे मुताबिक देवता को **नोधम्मिआ** गिनके उन की करणी अधर्म में कहोगे तो कोई देवता तीर्थंकर को साधु को और श्रावक को उपसर्ग और कोई उनकी सेवा करे, उन दोनों को एक सरीखा फल हो या जुदा जुदा ? जुदा जुदा ही हो, तथा कोई शिष्य काल कर के देवता हुआ हो वह अपने गुरु को चारित्र से पतित हुआ देख के उस को उपदेश दे के शुद्ध रास्ते में ले आवे तो उस देवता को धर्मी कहोगे या अधर्मी ? धर्मी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस ऊपर से यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ढूंढियों के गुरु काल कर के उस के मत मुताबिक देवता तो नहीं होने चाहियें, क्योंकि देवता में सम्यक्त्वी और मिथ्यात्वी ऐसी दो जातियां हैं । उन में जो सम्यक्त्वी हो तो सूर्याभ आदि की तरह जिनप्रतिमा और जिन दाढा पूजे और मिथ्यात्वी कहते तो उन की जबान चले नहीं, मनुष्य भी न होवे, क्योंकि ढूंढिये उन को चारित्री मानते हैं । और चारित्री काल कर के मनुष्य हो नहीं, सिद्धि भी पंचम काल में प्राप्त होगी नहीं, तो अब ऊपर कही तीन गतियों के सिवाय फक्त नरक और तिर्यंच ये दो गति रही । इन में से उनको कौन सी गति भला पसंद पड़ती होगी ?

श्रीठाणांगसूत्र के दश में ठाणे में दश प्रकार के धर्म कहे हैं, जेठमल लिखता है कि इन दश प्रकार के धर्म में से देवता का कौन सा धर्म है ? उस का उत्तर - सम्यग्दृष्टि देवता को श्रुतधर्म भगवंत की आज्ञा मुताबिक है ।

और सूर्याभ ने धर्मव्यवसाय लेके प्रथम जिन दाढा तथा जिनप्रतिमा पूजी है, जो कि तद् पीछे अन्य चीजों की पूजा की है । परंतु वहां प्रणाम नहीं किया है । नमुत्थुणं नहीं कहा है । इस वास्ते उस ने जिनप्रतिमा तथा जिन दाढा की पूजा की है । सो सम्यग्दृष्टिपणे की समझनी ।

श्रीठाणांगसूत्र के पांचवें ठाणे में सम्यग्दृष्टि देवता के गुणग्राम करे तो सुलभ बोधि हो ऐसे कहा है । यत -

पंचहिं ठाणेहिं जीवा सुलहबोहित्ताए कम्मं पकरेंति तं जहा अरिहंताणं वण्णं वयमाणे जाव णिणिक्कतणबंभचेराणं देवाणं वण्णं वयमाणे

अब विचार करना चाहिये कि जिन के गुणग्राम करने से जीव सुलभ बोधि होता है, उन की की पूजादि धर्मकरणी का मोक्षफल क्यों न होवे ? जरूर ही होगा ।

।। इति ।।

२२. चित्रामकी मूर्त्ति देखनी न चाहिये इस बाबत :

श्रीदशवैकालिकसूत्र के आठवें अध्ययन में कहा है कि भींत (दीवाल) के ऊपर स्त्री की मूर्ति लिखी हुई हो सो साधु नहीं देखे । क्योंकि उस के देखने से विकार उत्पन्न होता है- यत -

चित्तभित्तिं ण णिज्जाए, नारीं वा सुअलंकियं ।

भक्खरं पिव दट्ठुणं, दिट्ठिं पडिसमाहरे ।।१।।

अर्थ - चित्राम की भींत नहीं देखनी उस पर स्त्री आदि होवे सो विकार पैदा करने का हेतु है । इस वास्ते जैसे सूर्य सन्मुख देखके दृष्टि पीछे मोड़ लेते हैं वैसे ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देख के दृष्टि मोड़ लेनी । जिस तरह चित्राम की मूर्ति देखने से विकार उत्पन्न होता है । इसी तरह जिनप्रतिमा के दर्शन करने से वैराग्य उत्पन्न होता है । क्योंकि जिन बिंब-निर्विकार का हेतु है । इस ऊपर जेठमल ढूंढक **श्रीप्रश्नव्याकरण** का पाठ लिख के उस के अर्थ में लिखता है कि "जिन मूर्ति भी देखनी नहीं कही है" परंतु यह उस का लिखना मिथ्या है, क्योंकि **श्रीप्रश्नव्याकरण** में जिनप्रतिमा देखने का निषेध नहीं है, किंतु जिस मूर्ति के देखने से विकार उत्पन्न हो उस के देखने का निषेध है, पूर्वोक्त सूत्रार्थ में जेठमल चैत्य शब्द का अर्थ जिनप्रतिमा कहता है और प्रथम उस ने लिखा है "चैत्य शब्द का अर्थ जिनप्रतिमा नहीं होता है; परंतु साधु अथवा ज्ञान अर्थ होता है" अरे ढूंढियो ! विचार करो कि चैत्य शब्दका अर्थ जो साधु कहोगे तो तुम्हारे कहने मुताबिक साधु के सन्मुख नहीं देखना, और ज्ञान कहोगे तो ज्ञान अर्थात् पुस्तक अथवा ज्ञानी के सन्मुख नहीं देखना ऐसे सिद्ध होगा ! और पूर्वोक्त पाठ में घर, तोरण, स्त्री आदि के देखने की ना कही है तो ढूंढिये गौचरी करने को जाते हो वहां घर, तोरण, स्त्री आदि सर्व होते हैं । उन को न देखने वास्ते जैसे मुंह को पट्टी बांधते हो वैसे आँखों को पट्टी क्यों नहीं बांधते हो ? जेठमल ने प्रत्येक बुद्धि आदि की हकीकत लिखी है । उस का प्रत्युत्तर १३ में प्रश्नोत्तर में लिखा गया है । वहां से देख लेना ।

जेठमल लिखता है कि "जिनप्रतिमा को देख के कोई प्रतिबोध नहीं पाया" उत्तर-श्रीऋषभदेव की प्रतिमा को देखके आर्द्र कुमार प्रतिबोध हुआ[१] और **श्रीदशवैकालिकसूत्र** के कर्त्ता श्रीशय्यंभवसूरि शांतिनाथजी की प्रतिमा को देख के प्रतिबोध हुए । यत :-

सिज्जंभवं गणहरं जिणपडिमादंसणेण पडिबुद्धं

यदि मूढ़मति ढूंठिये ऐसे कहें कि "यह पाठ तो निर्युक्ति का है और निर्युक्ति हम नहीं मानते हैं" उन को कहना चाहिये कि **श्रीसमवायांगसूत्र, श्रीविवाहप्रज्ञप्ति** (भगवती) **सूत्र, श्रीनंदिसूत्र** तथा **श्रीअनुयोगद्वारसूत्र** के मूलपाठ में निर्युक्ति माननी कही है और तुम नहीं मानते हो । उसका क्या कारण ? यदि जैनमत के शास्त्रों को नहीं मानते हो तो फिर नीच लोगो के पंथ को मानों ! क्योंकि तुम्हारा कुछ आचारव्यवहार उन के साथ मिलता आवेगा ।

।। इति ।।

---

१ यदुक्तं श्रीसूत्रकृतांगे द्वितीयश्रुतस्कंधे षष्ठाध्ययने ।
पीतीय दोण्ह दूओ पुच्छणमभयस्स पत्थवेसोउ ।।
तेणावि सम्मदिट्ठित्ति होजपडिमारहंमिगया ।
दट्ठुं संबुद्धो रक्खिओय ।।
व्याख्या-अन्यदार्द्रकपित्रा जनहस्तेन राजगृहे श्रेणिकराज्ञः प्राभृतं प्रेषितं आर्द्रककुमारेण श्रेणिकसुतायाभयकुमाराय स्नेहकरणार्थं प्राभृतं तस्यैव हस्तेन प्रेषितं जनो राजगृहे गत्वा श्रेणिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. जिनमंदिर कराने से तथा जिनप्रतिमा भराने से बारमें देवलोक जावे इस बाबत :

श्रीमहानिशीथसूत्र में कहा है कि जिनमंदिर बनवाने से सम्यग्दृष्टि श्रावक यावत् बारमें देवलोक तक जावे-यतः-

काउंपि जिणाययणेहिं मंडिअं सव्वमेयणीवट्टं दाणाइचउक्केणं सढ्ढो गच्छेज्ज अच्चुअं जाव ।

इस को असत्य ठहराने वास्ते जेठमल ने लिखा है कि "जिनमंदिर जिनप्रतिमा करावे सो मंदबुद्धिया दक्षिण दिशा का नारकी होगा ।" उत्तर-यह लिखना महामिथ्या है । क्योंकि ऐसा पाठ जैनमत के किसी भी शास्त्र में नहीं है । तथापि जेठमल ने उत्सूत्र लिखते हुए जरा भी विचार नहीं किया है । यदि जेठमल ढूंढक वर्तमान समय में होता तो पंडितों की सभा में चर्चा कर के उसका मुंह काला करा के उस के मुखमें जरूर शक्कर देते ! क्योंकि झूठ लिखने वाले को यही दंड होना चाहिये ।

राज्ञः प्राभृतानि निवेदितवान् संमानितश्च राज्ञा आर्द्रक प्रहितानि प्राभृतानि चाभयकुमाराय दत्तवान् कथितानि स्नेहोत्पादकानि वचनानि अभयेनाचिंति नूनमसौ भव्यःस्यादासन्नसिद्धिको यो मया सार्द्धं प्रीतिमिच्छतीति ततोऽभयेन प्रथम जिनप्रतिमा बहुप्राभृतयुताऽऽर्द्रककुमाराय प्रहिता इदं प्राभृतमेकांते निरूपणीयमित्युक्तं जनस्य सोप्यार्द्रकपुरं गत्वा यथोक्तं कथयित्वा प्राभृतमार्पयत् प्रतिमां निरूपयतः कुमारस्य जातिस्मरणमुत्पन्नं धर्मे प्रतिबुद्धं मनः अभयं स्मरन् वैराग्यात्कामभोगेष्वनासक्तस्तिष्ठति पित्रा ज्ञातं मा क्वचिदसौ यायादिति पंचशतसुभटैर्नित्यं रक्ष्यते इत्यादि ।।

भावार्थः- एक दिन आर्द्रकुमार के पिता ने दूत के हाथ राजगृह नगरी में श्रेणिक राजा को प्राभृत (नजर-तोसा) भेजा, आर्द्रकुमारने श्रेणिक राजा के पुत्र अभयकुमार के प्रति स्नेह करने वास्ते उसी दूत के हाथ प्राभृत भेजा । दूतने राजगृह में जा कर श्रेणिक राजा को भेंट दिये । राजा ने भी दूत का यथायोग्य सन्मान किया । और आर्द्रकुमार के भेजे प्राभृत अभयकुमार को दिये तथा स्नेह पैदा करने के वचन कहे, तब अभयकुमार ने सोचा कि निश्चय यह भव्य है । निकट मोक्षगामी है । जो मेरे साथ प्रीति इच्छता है । तब अभयकुमारने बहुत प्राभृत सहित प्रथमजिन श्रीऋषभदेव स्वामी की प्रतिमा आर्द्रकुमार के प्रति भेजी और दूत को कहा कि यह प्राभृत आर्द्रकुमार को एकांत में दिखाना । दूत ने आर्द्रकपुर में जा के यथोक्त कथन कर के प्राभृत दे दिया । प्रतिमा को देखते हुए आर्द्रकुमार को जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ । धर्म में मन प्रतिबोध हुआ; आर्द्रकुमार को याद करता हुआ वैराग्य से कामभोगों में आसक्त नहीं होता हुआ आर्द्रकुमार रहता है अभय । पिता ने जाना न कहीं यह यह कहीं चला जावे इस वास्ते पांच सौ सुभटों से पिता हमेशां उसकी रक्षा करता है इत्यादि ।।

यह कथन **श्रीसूयगडांगसूत्र** के दूसरे श्रुतस्कंध के छट्ठे अध्ययन में है । ढूंढिये इस ठिकाने कहते हैं कि अभयकुमार ने आर्द्रकुमार को प्रतिमा नहीं भेजी है । मुहपत्ती भेजी है तो हम पूछते हैं कि यह पाठ किस ढूंढक पुराण में है ? क्योंकि जैनमत के किसी भी शास्त्र में ऐसा कथन नहीं है । जैनमत के शास्त्रों में तो पूर्वोक्त श्रीऋषभदेव स्वामी की प्रतिमा भेजने का ही अधिकार है ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जेठमल लिखता है कि "श्रेणिक राजा को महावीर स्वामी ने कहा कि कालकसूरिया भैंसे न मारे, कपिलादासी दान देवे, पुनिया श्रावक की सामायिक मोल ले अथवा तू नवकारसीमात्र पच्चक्खाण करे तो तू नरक में न जावे । ये चार बातें कहीं परंतु जिनपूजा करे तो नरक में न जावे ऐसे नहीं कहा"। उत्तर-ढूंढिये जितने शास्त्र मानते हैं उन में यह कथन बिलकुल नहीं है तो भी इस बातका संपूर्ण खुलासा दशवें प्रश्नोत्तर में हमने लिख दिया है ।

जेठमल ने **श्रीप्रश्नव्याकरण** का पाठ लिखा है जिस से तो जितने ढूंढिये, ढूंढनियां, और उनके सेवक हैं वे सर्व नरक में जावेंगे ऐसे सिद्ध होता है । क्योंकि **श्रीप्रश्नव्याकरण** के पूर्वोक्त पाठ में लिखा है कि जो घर, हाट, हवेली, चौंतरा, आदि बनावे सो मंद बुद्धिया और मरके नरक में जावे । सो ढूंढिये ऐसे बहुत काम करते हैं । तथा ढूंढक साधु, साध्वी, धर्म के वास्ते विहार करते हैं, रास्ते में नदी उतरते हुए त्रस स्थावर की हिंसा करते हैं । पडिलेहण में वायुकाय हनते हैं, नाक के तथा गुदा के पवन से वायुकाय मारते हैं । सदा मुंह बांधने से असंख्यात् सम्मूर्छिम जीव मारते हैं । मेघ बरसते में सचित्त पानी में लघु नीति तथा बडी नीति परठवते हैं । उस से असंख्यात अप्काय को मारते हैं,[१] इत्यादि सैंकडों प्रकार से हिंसा करते हैं । इस वास्ते सो मंदबुद्धि यही हैं, और जेठे के लिखे मुताबिक मर के नरक में ही जाने वाले हैं । इस अपेक्षा तो क्या जाने जेठे का यह लिखना सत्य भी हो जावे ! क्योंकि ढूंढकमत दुर्गति का कारण तो प्रत्यक्ष ही दिखाई देता है ।

और जेठमल ने "दक्षिण दिशा का नारकी हो" ऐसे लिखा है । परंतु सूत्रपाठ में दक्षिण दिशा का नाम भी नहीं है । तो उस ने यह कहां से लिखा ? मालूम होता है कि कदापि अपने ही उत्सूत्र भाषण रूप दोष से अपनी वैसी गति होने का संभव उसको मालूम हुआ होगा । और इसी वास्ते ऐसा लिखा होगा ! ! और शुद्ध मार्ग गवेषक आत्मार्थी जीवों को तो इस बात में इतना ही समझने का है कि श्री **प्रश्नव्याकरणसूत्र** का पूर्वोक्त पाठ मिथ्यादृष्टि अनार्यों की अपेक्षा है । क्योंकि इस पाठ के साथ ही इस कार्य के अधिकारी माछी, धीवर, कोली, भील, तस्कर, आदि ही कहे हैं, और विचार करो कि जो ऐसे न हो तो कोई भी जीव नरक बिना अन्य गति में न जावे । क्योंकि प्रायः गृहस्थी सर्व जीवों को घर, दुकान वगैरह करना पड़ता है । **श्रीउपासकदशांगसूत्र** में आनंद आदि श्रावकों के घर, हाट, खेत, गड्डे, जहाज, गोकुल, भट्ठियां आदि आरंभ का अधिकार वर्णन किया है, तथापि वह काल कर के देवलोक में गये हैं । इस वास्ते अरे मूर्ख ढूंढियो ! जिनमंदिर कराने से नरक में जावे ऐसे कहते हो सो तुम्हारी दुष्टबुद्धि का प्रभाव है और इसी वास्ते सूत्रकार का गंभीर

१ कितनेक जूं लीख प्रमुख को कपडें की टांकी में बांध के संथारा पच्चखाते हैं अर्थात् मारते हैं, तथा कितनेक गूंह को ईंटों से पीसते हैं, उनमें चूरणीये मारते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आशय तुम बेगुरे नहीं समझ सकते हो ।

जेठमल ने लिखा है कि "जैनधर्मी आरंभ में धर्म मानते हैं"। उत्तर-जैनधर्मी आरंभ को धर्म नहीं मानते हैं, परंतु जिनाज्ञा तथा जिनभक्ति में धर्म और उस से महापुण्य-प्राप्ति यावत् मोक्षफल **श्रीरायपसेणीसूत्र** के कथनानुसार मानते हैं ।

जेठमल जिनमंदिर और जिनप्रतिमा कराने बाबत इस प्रश्नोत्तर में लिखता है, परंतु उस का प्रत्युत्तर प्रथम दो तीन वार लिख चुके हैं ।

जेठमलने "देवकुल" शब्द का अर्थ सिद्धायतन किया है, परंतु देवकुल शब्द अन्य तीर्थीदेव के मंदिर में बोला जाता है । जिनमंदिर के बदले देवकुल शब्द लौकिक में नहीं बोला जाता है । और सूत्रकार ने किसी स्थल में भी नहीं कहा है, सूत्रकार ने तो सूत्रों में जिनमंदिर के बदले सिद्धायतन, जिनघर, अथवा चैत्य कहा है, तो भी जेठे ने खोटी खोटी कुयुक्तियां लिखके स्वमति कल्पना से जो मन में आया सो लिख मारा है । सो उसके मिथ्यात्व के उदय का प्रभाव है । सिद्धायतन शब्द सिद्ध प्रतिमा के घर आश्री है । और जिन घर शब्द अरिहंत के मंदिर आश्री द्रौपदी के आलावे में कहा है, इस वास्ते इन दोनों शब्दों में कुछ भी प्रतिकूलभाव नहीं है, भावार्थ में तो दोनों एक ही अर्थ को प्रकाशते हैं । इति ।

२४. साधु जिनप्रतिमा की वेयावच्च करे :

श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्र के तीसरे संवर द्वार में साधु पंद्रह बोल की वेयावच्च करे ऐसा कथन है । उन में पंद्रहवाँ बोल जिनप्रतिमा का है तथापि जेठे निन्हवने चौदह बोल ठहरा के पंदरवें बोल का अर्थ विपरीत किया है । इस वास्ते सो सूत्रपाठ अर्थ सहित लिखते हैं ।यतः-

अह केरिसए पुण आराहए वयमिणं जेसे उवही भत्तपाणे संगहदाण कुसले अच्चंत बाल, १. दुब्बल, २. गिलाण, ३. बुढ्ढ, ४. खवगे, ५. पवत्त, ६. आयरिय, ७. उवझाए, ८. सेहे, ९. साहम्मिए, १०. तवस्सी, ११. कुल, १२. गण, १३. संघ, १४. चेइयट्ठे, १५, निज्जरट्ठी वेयावच्चे अणिस्सियं दसविहं बहुविहं पकरेइ ।।

अर्थ - शिष्य पूछता है "हे भगवन् ! कैसा साधु तीसरा व्रत आराधे ? " गुरु कहते हैं "जो साधु वस्त्र तथा भातपानी यथोक्त विधि से लेना और यथोक्त विधि से आचार्यादिक को देना । उन में कुशल हो सो साधु तीसरा व्रत आराधे । (१) अत्यंत बाल (२) शक्तिहीन (३) रोगी (४) वृद्ध (५) मास क्षपणादि करने वाला प्रवर्त्तक (६) आचार्य (७) उपाध्याय (८) नव दीक्षित शिष्य (९) साधर्मिक (१०) तपस्वी (११) कुलचांद्रादिक (१२) गणकुल का समुदाय कौटिकादिक (१३) संघकुलगण का समुदाय चतुर्विध संघ (१४) और चैत्य जिनप्रतिमा इन का जो अर्थ उन में निर्जरा का अर्थी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधु कर्मक्षय वांछता हुआ यश मानादिक की अपेक्षा बिना दश प्रकार [illegible] बहुत विध से वेयावच्च करे सो साधु तीसरा व्रत आराधे । इस बाबत जेठमल भातपानी तथा उपधि देनी उस को ही वेयावच्च कहता है सो मिथ्या है । क्योंकि बाल, दुर्बल, वृद्ध, तपस्वी आदि में तो भातपानी का वेयावच्च संभव हो सफलतत है परंतु कुल, गण और साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकारूप चतुर्विध संघ, तथा चैत्य जो अरिहंत की प्रतिमा इन को भातपानी देने से ही वेयावच्च नहीं; किंतु वेयावच्च के अन्य बहु प्रकार हैं । जैसे कुल, गण, संघ तथा अरिहंत की प्रतिमा इन का कोई अवर्णवाद बोले । इन की आशातना तथा विराधना करे । उस को उपदेशादिक दे के कुल गण आदि की विराधना टाले और इन के (कुल गण प्रमुख के) प्रत्यनीक का अनेक प्रकार से निवारण करे सो भी वेयावच्च में ही शामिल है । वैसे अन्य भी वेयावच्च के बहुत प्रकार हैं[1] ।

श्रीउत्तराध्ययनसूत्र में हरिकेशी मुनि के अध्ययन में लिखा है कि "जक्खा हु वेयावडियं करेंति" मतलब श्रीहरिकेशीमुनि की वेयावच्च करने वाले यक्ष देवता ने मुनि को उपसर्ग करने वाले ब्राह्मणों के पुत्रों को जब मारा और ब्राह्मण हरिकेशी मुनि के समीप आ कर क्षमा मांगने लगा तब श्रीहरिकेशी मुनि ने कहा कि "मैंने कुछ नहीं किया है परंतु यक्ष मेरी वेयावच्च करता है । [illegible] से तुम्हारे पुत्र मारे गये हैं ।" देखो कि यक्ष ने हरिकेशी मुनि की वेयावच्च किस रीति [illegible] की है ? ढूंढियो ! जो अन्नपानी से ही वेयावच्च होती है ऐसे कहोगे तो देवपिंड तो [illegible] था साधु को अकल्पनिक है और इस ठिकाने तो प्रत्यक्ष रीति से हरिकेशीमुनि के प्रत्यनीक ब्राह्मण के पुत्रों को यक्षने मारा । उस बाबत हरिकेशीमुनि ने कहा कि मेरी वेयावच्च [illegible] वाले यक्ष ने किया है तो यक्ष ने तो ब्राह्मण के पुत्रों की हिंसा की और मुनिने तो वेयावच्च [illegible] ही । और मुनि का वचन असत्य होता नहीं । तथा शास्त्रकार भी असत्य न लिखेगा । इस वास्ते अन्नपानी, उपधि आदि देना ही वेयावच्च ऐसे एकांत [illegible] हो सो मिथ्या है । पूर्वोक्त पाठ में खुलासा पंद्रह बोल हैं और [illegible] बोलों के साथ जोडने का 'अर्थे' शब्द पंद्रहवे बोल के अंत में है । तथापि जेठमल ने चौदह बोल ठहराए हैं और "चेईयट्ठे" अर्थात् ज्ञान के अर्थे वेयावच्च करे ऐसे लिखा है । सो दोनों ही मिथ्या हैं, क्योंकि ज्ञान का नाम चैत्य किसी भी शास्त्र में या किसी भी कोष में नहीं है । तथा सूत्रों में जहां जहां ज्ञान का अधिकार है वहां वहां सर्वत्र "नाण" शब्द लिखा है । परंतु "चेइय" शब्द नहीं लिखा है । इस वास्ते जेठमल का किया अर्थ खोटा है । और धर्मशी नामा ढूंढक ने **प्रश्नव्याकरण** के टब्बे में इसी चैत्य शब्द का अर्थ साधु लिखा है । इस से मालूम होता है कि इन मूढमति ढूंढकों का आपस में भी मेल नहीं है । परंतु इस में कुछ आश्चर्य नहीं ।

१ मूलसूत्रकार ने भी "दसविहं बहुविहं पकरेइ" दश प्रकार से तथा बहुत विध से वेयावच्च करे, ऐसे फरमाया है । इस वास्ते वेयावच्च कुछ अन्नपानी, वस्त्र, पात्रादि के देने का ही नाम नहीं है, प्रत्यनीक का निवारणा भी वेयावच्च ही है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादृष्टियों का यही लक्षण है । और "**चेइयट्ठे**" तथा "**निज्जरट्ठी**" इन दोनों शब्दों का एक सरीखा अर्थात् ज्ञान के अर्थे और निर्जरा के अर्थे ऐसा अर्थ जेठे ने लिखा है । परंतु सूत्राक्षर देखने से मालूम होगा कि पाठ के अक्षर और लगमात्र [विभक्ति प्रत्यय] अलग अलग और तरह के हैं, एक के अंत में "**अट्ठे**" अर्थात् '**अर्थे**' है सो चतुर्थी विभक्ति के अर्थ में निपात है, उस को अत्यंत बाल के अर्थे दुर्बल के अर्थे, ग्लान के अर्थे, यावत् जिन प्रतिमा के अर्थे ऐसा अर्थ होता है; दूसरे पद के अंत में "अट्ठी" अर्थात् 'अर्थी' है सो प्रथमा विभक्ति है । उस का अर्थ "निर्जरा का अर्थी" जो साधु सो वेयावच्च करे ऐसा होता है । परंतु जेठे ने सत्य अर्थ छोड़ के दोनों शब्दों का एक सरीखा अर्थ लिखा है । इस लिये मालूम होता है कि जेठे को व्याकरण का ज्ञान बिलकुल नहीं था । तथा जैसा सूत्रपाठ है वैसा उस को नहीं दिखा है । इस से यह भी मालूम होता है कि उस के नेत्रों के भी कुछ आवरण था ।

श्रीठाणांगसूत्र तथा **व्यवहारसूत्र** आदि सूत्रों में दश प्रकार की वेयावच्च कही है, जिस का समावेश पूर्वोक्त पंदरह बोलों में हो गया है । इस वास्ते उन दश भेदों की बाबत जेठे की लिखी कुयुक्ति खोटी है ।

प्रश्न के अंत में जेठे निन्हवने लिखा है कि "उपाधि और अन्नपानी से ही वेयावच्च करनी" यह समझ जेठे ढूंढक की अकल बिना की है । क्योंकि जो इन तीन भेद से ही वेयावच्च करनी होवे तो चतुर्विध संघ की वेयावच्च करने का भी पूर्वोक्त पाठ में कहा है । और संघ में तो श्रावक श्राविका भी शामिल है । तो उन की वेयावच्च साधु किस तरह करे ? जो आहार तथा उपधि से करे ऐसे ढूंढक कहते हैं तो क्या आप भिक्षा ला कर श्रावक श्राविका को देंगे ? नहीं, क्योंकि ऐसे करना उन का आचार नहीं है । तथा श्रावक श्राविका तो देने वाले हैं, लेना उन का आचार ही नहीं है । इस वास्ते अरे ढूंढको ! जवाब दो कि तीसरे व्रतको आराधने के उत्साह वाले साधुने चतुर्विध संघ की वेयावच्च किस रीति से करनी ? आखिर लिखने का यह है कि वेयावच्च के अनेक प्रकार हैं । जिस की जैसी संभव हो वैसी उस की वेयावच्च जाननी । इस लिये साधु जिनप्रतिमा की वेयावच्च करे सो बात संपूर्ण रीति से सिद्ध होती है । ढूंढिये इस मुताबिक नहीं मानते हैं इस से उन को निबिड मिथ्यात्व का उदय मालूम होता है । । इति ।

२५. श्रीनंदिसूत्र में सर्व सूत्रों की नोंध है । बारह अंग के नाम :

(१) आचारांग, (२) सूयगडांग, (३) ठाणांग, (४) समवायांग, (५) भगवती, (६) ज्ञाता, (७) उपासकदशांग, (८) अंतगड, (९) अनुत्तरोववाइ, (१०) प्रश्नव्याकरण, (११) विपाक, (१२) दृष्टिवाद।

१. आवश्यकसूत्र :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९ उत्कालिकसूत्र के नाम :

१. दशवैकालिक, २. कप्पियाकप्पिय, ३. चुल्लकल्प ४. महाकल्प, ५. उववाइ, ६. रायपसेणी, ७. जीवाभिगम, ८. पन्नवणा, ९. महापन्नवणा, १०. पमायप्पमाय, ११. नंदि, १२. अनुयोगद्धार, १३. देवेंद्रस्तव, १४. तंदुलवेयालिय, १५. चंद्रविजय १६. सूर्य प्रज्ञप्ति, १७. पौरुषी मंडल, १८. मंडलप्रवेश, १९. विद्याचारण विनिश्चय, २०. गणिविद्या, २१. ध्यानविभक्ति, २२. मरणविभक्ति, २३. आयविसोही, २४. वीतरागश्रुत, २५. संलेखनाश्रुत, २६. विहारकल्प, २७. चरणविधि, २८. आउरपच्चक्खाण, २९. महापच्चक्खाण ।

एवमाइ शब्द से **श्रीचउसरणसूत्र** तथा **श्रीभक्तपरिज्ञासूत्र** प्रमुख चौदह हजार में से कितनेक उत्कालिकसूत्र समझने ।

३१ कालिकसूत्र के नाम :

१. उत्तराध्ययन, २.)दशाश्रुतस्कंध, ३. कल्पसूत्र, ४. व्यवहारसूत्र, ५. निशीथ, ६. महानिशीथ, ७. ऋषिभाषित, ८. जंबूद्वीपपन्नत्ति, ९. द्वीपसागरपन्नत्ति, १०. चंदपन्नत्ति, ११. खुड्डियाविमाणपविभत्ति, १२. महल्लियाविमाणपविभत्ति, १३. अंगचूलिया, १४. वग्गचूलिया, १५. विवाहचूलिया, १६. अरुणोववाइ, १७. वरुणोववाइ, १८. गरुडोववाइ, १९. धरणोववाइ, २०. वेसमणोववाइ, २१. वेलंधरोववाइ, २२. देविंदोववाइ, २३. उत्थानश्रुत, २४. समुत्थानश्रुत, २५. नागपरियावलिया, २६. निर्यावलिया, २७. कप्पिया, २८. कप्पवडंसिया, २९. पुप्फिया, ३०. पुप्फचुलिया, ३१. वन्हीदशा ।

एवमाइ शब्द से **ज्योतिष्करंडसूत्र** आदि चौदह हजार में से कितनेक कालिकसूत्र समझने ।

कुल ७३ के नाम लिख के एवमाइ शब्द से आदि ले के १४००० प्रकीर्णक सूत्र कहे हैं, उन में से जो व्यवच्छेद हो गये हैं सो तो भरतखंड में नहीं है । और शेष जो हैं सो सर्व आगम नाम से कहे जाते हैं । उनमें से कितनेक पाटण, खंबाउत (Cambay), जैसलमेर आदि नगरों के प्राचीन भंडारों में ताडपत्रों ऊपर लिखे हुए विद्यमान हैं ।

जेठमल लिखता है कि "बत्तीस उपरांत सर्व सूत्र व्यवच्छेद हो गए और हाल में जो हैं सो नये बनाये हैं ।" उत्तर-जेठमल का यह लिखना जूठ है । यदि यह नये बनाये गये होंगे तो बत्तीस सूत्र भी नये बनाये सिद्ध होंगे, क्योंकि बत्तीस सूत्र वे ही रहे और दूसरे नये बनाये गये । इस में कोई प्रमाण नहीं है, और जेठे ने इस बाबत कोई भी प्रमाण नहीं दिया है । इस वास्ते उस का लिखना मिथ्या है ।

बत्तीस उपरांत (४५) सूत्रांतर्गत (१३) सूत्रों में से आठ सूत्रों के नाम पूर्वोक्त **नंदिसूत्र**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के पाठमें हैं तथापि जेठा ... को आचार्य के बनाये कहता है सो मिथ्या है ।

तथा **श्रीमहानिशीथसूत्र** आठ आचार्यों ने मिल के रचा कहता है, सो भी मिथ्या है, क्योंकि आचार्योंने एकत्र हो कर यह सूत्र लिखा है परंतु नया रचा नहीं है । ४५ बिचले पांच सूत्रों के नाम पूर्वोक्त पाठ में नहीं हैं परंतु सो आदि शब्द से जानने के हैं। इस वास्ते इस में कुछ भी बाधक नहीं है ।

और कितनेक सूत्र, जिनमें से कितनेक ढूंढिये नहीं मानते हैं और कितनेक मानते हैं उन में भी आचार्यों के नाम हैं, सो "सूत्रकर्त्ता के नाम हैं" ऐसे जेठमल ठहराता है, परंतु सो मिथ्या है, क्योंकि वह नाम बनाने वाले का नहीं है; यदि किसी में नाम होगा तो वह वीरभद्रवत् श्रीमहावीरस्वामी के शिष्य का होगा जैसे **लघुनिशीथ** में **विशाखगणि** का नाम है और **श्रीपन्नवणासूत्र** में **श्यामाचार्य** का नाम है ।

जेठमल लिखता है कि "नंदिसूत्र चौथे आरे का बना हुआ है" सौ मिथ्या है, क्योंकि **श्रीनंदिसूत्र** तो श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण का बनाया हुआ है और उस के मूलपाठ में वज्रस्वामी, स्थूलभद्र चाणाक्यादिक पांचवें आरे में हुए पुरुषों के नाम हैं ।

श्रीआवश्यक तथा **नंदिसूत्र** में कहा है, कि द्वादशांगी गणधर महाराजा ने रची सो रचना अति कठिन मालूम होने से भव्य जीवों के बोधप्राप्ति के निमित्त **श्रीआर्यरक्षितसूरि** तथा स्कंदिलाचार्यने हाल प्रवर्तन हैं, इस मुताबिक सुगम रचनायुक्त गूंथन किया । इस वास्ते कुल सूत्र द्वादशांगी के आधार से आचार्यों ने गूंथन किये हैं ऐसे समझना ।

मूढमति ढूंढिये मिथ्यात्व के उदय से बत्तीस सूत्र ही मान कर अन्य सूत्र गणधरकृत नहीं है ऐसे ठहरा के उन का निषेध करते हैं, परंतु इस मुताबिक निषेध करने का उन का असली सबब यह है कि अन्य सूत्रों में जिनप्रतिमा संबंधी ऐसे ऐसे खुलासा पाठ हैं कि जिस से ढूंढक मत का जड़मूल से निकंदन हो जाता है । जिस की सिद्धि में दृष्टांत तरीके **श्रीमहाक** ... लिखते हैं- यत -

से भयवं तहारूवं समणं वा माहणं वा चेइअघरे गच्छेज्जा ? हंता गोयमा ! दिणे दिणे गच्छेज्जा । से भयवं जत्थ दिणे ण गच्छेज्जा तओ किं पायच्छित्तं हवेज्जा ? गोयमा ! पमायं पडुच्च तहारुवं समणं वा माहणं वा जो जिणघरं न गच्छेज्जा तओ छट्ठं अहवा दुवालसमं पायच्छित्तं हवेज्जा । से भयवं समणो वासगस्स पोसहसालाए पोसहिए पोसह बंभयारी किं जिणहरं गच्छेज्जा ? हंता गोयमा ! गच्छेज्जा । से भयवं केणट्ठेणं गच्छेज्जा ? गोयमा १ णाण-दंसण-चरणट्ठयाए गच्छेज्जा । जे केइ पोसहसालाए पोसह बंभयारी जओ जिणहरे न गच्छेज्जा तओ पायच्छित्तं हवेज्जा ? गोयमा ! जहा साहू तहा भाणियव्वं छट्ठं अहवा दुवालसमं पायच्छित्तं हवेज्जा ।

अर्थ - "अथ हे भगवन् ! तथारूप श्रमण अथवा माहण तपस्वी चैत्यघर यानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनमंदिर जावे ?" भगवंत कहते हैं "हे गौतम ! रोज रोज अर्थात् हमेशा जावे" गौतमस्वामी पूछते हैं "हे भगवन् ! जिस दिन न जावे तो उस दिन क्या प्रायश्चित्त हो ? " भगवंत कहते हैं "हे गौतम ! प्रमाद के वश से तथारूप साधु अथवा तपस्वी जो जिनगृहे न जावे तो छठ अर्थात् [illegible] उपवास, अथवा दुवालस अर्थात् पांच उपवास (व्रत) का प्रायश्चित्त होवे" । गौतमस्वामी पूछते हैं "हे भगवन् ! श्रमणोपासक श्रावक पोषधशाला में पोषध में रहा हुआ पोषध ब्रह्मचारी क्या जिनमंदिर में जावे ?" भगवंत कहते हैं "हां, हे गौतम ! जावे"। गौतमस्वामी पूछते हैं "हे भगवन् ! किस वास्ते जावे ? " । भगवंत कहते हैं है गौतम । ज्ञानदर्शनचारित्रार्थे जावे ?" गौतमस्वामी पूछते हैं "जो कोई पोषधशाला में रहा हुआ पोषध ब्रह्मचारी श्रावक जिनमंदिर में न जावे तो क्या प्रायश्चित्त होवे ? " भगवंत कहते हैं "हे गौतम ! जैसे साधु को प्रायश्चित्त वैसे श्रावकको प्रायश्चित्त जानना, छट्ठ अथवा दुवालसका प्रायश्चित होवे"। पूर्वोक्त पाठ **श्रीमहाकल्पसूत्र में हैं,**[१] और **महाकल्पसूत्र** का नाम पूर्वोक्त नंदिसूत्र के पाठ में है । जेठे निन्हव ने यह पाठ **जीतकल्पसूत्र** का है ऐसे लिखा है परंतु जेठे का यह लिखना मिथ्या है, क्योंकि **जीतकल्पसूत्र** में ऐसा पाठ नहीं है ।

जेठमल लिखता है कि :श्रावक प्रमाद के वश से भगवंत को और साधु को वंदना न कर सके तो उस का पश्चात्ताप करे परंतु श्रावक को प्रायश्चित्त न होवे" उत्तर-पोसह वाले श्रावक की क्रिया प्रायः साधु सदृश है । इस वास्ते जैसे साधु को प्रायश्चित्त होवे वैसे श्रावक को भी होवे ।

जेठमल लिखता है कि "**बृहत्कल्प, व्यवहार, निशीथ, तथा आचारांग** में प्रायश्चित्त के अधिकार में मंदिर न जाने का प्रायश्चित्त नहीं कहा है" उत्तर-कोई अधिकार एक सूत्र में होता है, और कोई अधिकार अन्य सूत्रमें होता है, सर्व अधिकार एक ही सूत्र में नहीं होते हैं । जैसे **निशीथ, महानिशीथ, बृहत्कल्प, व्यवहार, जीतकल्प प्रमुख** सूत्रों में प्रायश्चित्त

१ तथा तुंगीया, सावत्थी, आलंभिका प्रमुख नगरियों के जो शंखजी, शतकजी, पुष्कलीजी, आनंद और कामदेवादिक जैनी श्रावक थे वे सर्व प्रतिदिन तीन वक्त श्रीजिनप्रतिमा की पूजा करते थे । तथा जो जिनपूजा करे सो सम्यक्त्वी और जो न करे सो मिथ्यात्वी जानना इत्यादि कथन भी इसी सूत्र में है-तथाच तत्पाठ :-

तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव तुंगीया नयरीए बहवे समणोवासगा परिवसंति संखे सयए सियप्पवाले रिसीदत्ते दमगे पुक्खली निबद्धे सुप्पइट्ठे भाणुदत्ते सोमिले नरवम्मे आणंद कामदेवाइणो अन्नत्थगामे परिवसंति अड्ढा दित्ता विच्छिन्न विपुल वाहणा जाव लद्धट्ठा गहियट्ठा चाउद्दसट्ठमुदिट्ठ पुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसह पालेमाणा निग्गंथाण निग्गंथिणय फासुएसणिज्जेणं असणादि ४ पडिलाभेमाणा चेइयालएसु तिसंझं चंदणपुप्फधूववत्थाइहिं अच्चणं कुणमाणा जाव जिणहरे विहरंति से तेणट्ठेणं गोयमा जो जिण पडिमं पूएइ सो नरो सम्मदिट्ठि जाणियव्वो । जो जिणपडिमं न पूएइ सो मिच्छादिट्ठि जाणियव्वो । मिच्छदिट्ठिस्स नाणं न हवइ चरणं न हवइ मुक्खं न हवइ । सम्मदिट्ठिस्स नाणं चरणं मुक्खं च हवइ से तेणट्ठेणं गोयमा सम्मदिट्ठिसड्ढेहिं जिणपडिमाणं सुगंधपुप्फचंदणविलेवणेहिं पूया कायव्वा" ।। इति ।।

का अधिकार है, वैसे **श्रीमहाकल्पसूत्र** में भी प्रायश्चित्त का अधिकार है। सर्व सूत्रों में जुदा जुदा अधिकार है, इस वास्ते मंदिर न जाने के प्रायश्चित्त का अधिकार **श्रीमहाकल्पसूत्र** में है और अन्य में नहीं है इतने मात्र से जेठे की की कुयुक्ति कुछ सच्ची नहीं हो सक्ति है। **श्रीहरिभद्रसूरि** जो कि जिनशासन को दीपाने वाले महाधुरंधर पंडित १४४४ ग्रंथ के कर्ता थे उन की जेठमल ने व्यर्थ निंद्या करी है सो जेठमल की मूर्खता की निशानी है।

अभव्यकुलक में अभव्यजीव जिस जिस ठिकाने पैदा नहीं हो सकता है सो दिखाया है इस बाबत जेठमल लिखता है कि "भव्यअभव्य सर्व जीव कुल ठिकाने पैदा हो चूके ऐसे सूत्र में कहा है। इस वास्ते **अभव्यकुलक** सूत्रों से विरुद्ध है"। जेठे ढूंढक का यह लिखना महामिथ्यादृष्टित्व का सूचक है यद्यपि शास्त्रों मे ऐसा कथन है कि

न सा जाइ न सा जोणी न तं ठाणं न तं कुलं।
न जाया न मुया जत्थ सव्वे जीवा अणंतसो ।।१।।

परंतु यह सामान्य वचन है। विचार करो कि मरुदेवीमाता ने कितने दंडक भोगे हैं? सो तो निगोद में से निकल के प्रत्येक में आ कर मनुष्य जन्म पा कर मोक्ष में चली गई है। और शास्त्रकार तो सर्व जीव सर्व ठिकाणे सर्व जातिरूमें अनंतीवार उत्पन्न हुए कहते हैं। यदि जेठमल ढूंढक इस पाठ को एकांत मानता है तो कोई भी जीव सर्वार्थ सिद्ध विमान तक सर्वजाति सर्वकुल भोगे बिना मोक्ष में नहीं जाना चाहिये। और सूत्रों में तो ऐसे बहुत जीवों का अधिकार है जो कि अनुत्तरविमान में गये बिना सिद्धपद को प्राप्त हुए है। मतलब यह कि ढूंढक सरीखे अज्ञानी जीव विना गुरुगम के सूत्रकार की शैली को कैसे जानें? सूत्र की शैली और अपेक्षा समझनी सो तो गुरुगम में ही रही हुई है। इस वास्ते **अभव्यकुलकसूत्र** के साथ मुकाबला करने में कुछ भी बिरोध नहीं है। और इसी वास्ते यह मान्य करने योग्य है[१] जो जो ग्रंथ अद्यापि पर्यन्त पूर्व शास्त्रानुसार बने हुए हैं सो सत्य हैं, क्योंकि जैनमत के प्रामाणिक आचार्यों ने कोई

१ यदि ढूंढिये **अभव्यकुल** का अनादर करके '**न सा जाइ**' इत्यादि पाठको ही मंजूर करते हैं तो उन के प्रति हम पूछते हैं कि आप बताइए कि-पांच अनुत्तर विमान में देवता, तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, बलदेव, नारद, केवलज्ञानी और गणधर के हाथ से दीक्षा तीर्थंकर का वार्षिक दान, लोकान्तिक देवता, इत्यादि अवस्थाओं की प्राप्ति अभव्य के जीव को होती है? क्योंकि तुम तो भव्यअभव्य सर्व को सर्व स्थान जाति कुल योनि में उत्पन्न हुए मानते हो तो तुम्हारे माने मुताबिक तो पूर्वोक्त सर्व अवस्था अभव्यजीव की होनी चाहिये परन्तु होती कभी भी नहीं हैं, और य ही वर्णन **अभव्यकुलक** में है, तथा **अभव्यकुलक** की वर्णन की कई बातें ढूंढिये लोक मानते भी है तो भी **अभव्यकुलक** का अनादर करते हैं जिस का असली मतलब यह है कि **अभव्यकुलक** में लिखा है कि तीर्थंकर की प्रतिमा की पूजादि सामग्री में जो पृथिवी, पानी, धूप, चंदन, पुष्पादि काम आते हैं उन में भी अभव्य के जीव उत्पन्न नहीं हो सकते है अर्थात् जिस चीज में अभव्य का जीव होगा वह चीज जिनप्रतिमा के निमित्त या जिनप्रतिमा की पूजा के निमित्त काम में न आवेगी, सो यही पाठ इन को दुःखदाई हो रहा है। उल्लू को सूर्यवत्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी ग्रंथ पूर्व ग्रंथों की छाया विना नहीं बनाया है, इस वास्ते जिन को पूर्वाचार्यों के वचन में शंका हो उन को वर्त्तमान समय के जैनमुनियों को पूछ लेना । वह उस का यथामति निराकरण कर देवेंगे, क्योंकि जो पंडित और गुरुगम के जानकार हैं वह ही सूत्र की शैली को और अपेक्षा को ठीक ठीक समझते हैं ।

जेठलम लिखता है कि "जो किसी वक्त भी उपयोग न चूका हो उस के किये शास्त्र प्रमाण हैं" जेठे के इस कथन मुताबिक तो गणधर महाराजा के वचन भी सत्य नहीं ठहरे ! क्योंकि जब श्रीगौतमस्वामी आनंद श्रावक के आगे उपयोग चूके तो सुधर्मा स्वामी क्यों नहीं चूके होगे ?

तथा जेठमल के लिखे मुताबिक जब देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण के लिखे शास्त्रों की प्रतीति नहीं करनी चाहिये ऐसे सिद्ध होता है तो फिर जेठे निन्हव सरीखे मूर्ख निरक्षर मुंहबंधे के कहे की प्रतीति कैसे करनी चाहिये ? इस वास्ते जेठमल का लिखना बेअकल, निर्विवेकी, तो मंजूर कर लेवेंगे, परंतु बुद्धिमान विवेकी और सुज्ञ पुरुष तो कदापि मंजूर नहीं करेंगे ।

जेठमल लिखता है कि "पूर्वधर धर्मघोषमुनि, अवधिज्ञानी सुमंगल साधु, चार ज्ञानी केशीकुमार तथा गौतमस्वामी आदि श्रुतकेवली भी भूले हैं" उत्तर-जिन्हों ने तीर्थंकर की आज्ञा से काम किया जेठा उन की भी जब भूल बताता है तो तीर्थंकर केवली भी भूल गये होंगे ऐसा सिद्ध होगा ! क्योंकि मृगालोढीये को देखने वास्ते गौतमस्वामी ने भगवंत से आज्ञा मांगी । और भगवंतने आज्ञा दी उस मुताबिक करने में जेठमल गौतमस्वामी की भूल हुई कहता है, तो सारे जगत् में मूढ़ और मिथ्यादृष्टि जेठा ही एक सत्यवादी बन गया मालूम होता है; परंतु उस का लेख देखने से ही सो महादुर्भवी बहुलसंसारी और असत्यवादी था ऐसे सिद्ध होता है, क्योंकि अपने कुमत को स्थापन करने वास्ते उस ने तीर्थंकर तथा गणधर महाराजा को भी भूल गए लिखा है । इस वास्ते ऐसे मिथ्यादृष्टि का एक भी वचन सत्य मानना सो नरकगति का कारण है ।

श्रीदशवैकालिकसूत्र की गाथा लिख के उस का जो भावार्थ जेठमलने लिखा है सो मिथ्या है, क्योंकि उस गाथा में तो ऐसे कहा है कि यदि दृष्टिवाद का पाठी भी कोई पाठ भूल जावे तो अन्य साधु उस की हँसी न करे, यह उपदेशवचन है, परंतु इस से उस गाथा का यह भावार्थ नहीं समझना कि दृष्टिवाद का पाठी चूक जाता है । जेठमल को इस का सत्यार्थ प्रतीत नहीं हुआ है । बिना पाठ के टीका है इस बाबत जेठमलने जो कुयुक्ति लिखी है सो खोटी है । क्योंकि टीका में सूत्रपाठ की सूचना का ही अधिकार है । अरिहंतने प्रथम अर्थ प्ररूप्या । उस ऊपर से गणधर ने सूत्र रचे । उन में गुप्तता रहे । आशय को जानने वाले पूर्वाचार्य में महाबुद्धिमान् थे उन्हों ने उस में से कितनाक आशय भव्यजीवों के उपकार के वास्ते पंचांगी कर के प्रगट कर दिखलाया है । परंतु कुंभकार जवाहर की कीमत क्या जाने । जवाहर की कीमत तो जौहरी ही जाने । मूलपाठ के अक्षरार्थ से पाठ की सूचना का अर्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंत गुण है और टीकाकारोंने जो अर्थ किया है सो निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य और गुरुमहाराजा के बतलाए अर्थानुसार लिखा है। और प्राचीन टीका के अनुसार ही है। इस वास्ते सर्व सत्य है, और चूर्णि, भाष्य तथा निर्युक्ति चौदह पूर्वी और दशपूर्वीयों की की हुई हैं। इस वास्ते सर्व मानने योग्य है। इस बाबत प्रथम प्रश्नोत्तर में दृष्टांतपूर्वक सविस्तर लिखा गया है।

जेठमल [illegible] भाष्य, चूर्णि, टीका, ग्रंथ तथा प्रकरणादि को सूत्रविरुद्ध ठहराता है सो उस की मूढता की निशानी है। इस बाबत उस ने (८५) पचासी प्रश्न लिखे हैं। उन के उत्तर क्रम से लिखते हैं।

१. "**श्रीठाणांगसूत्र** में सनतकुमार चक्री अंतक्रिया कर के मोक्ष गया। ऐसे लिखा है, और उस की टीका में तीसरे देवलोक गया ऐसे लिखा है।" उत्तर-श्रीठाणांगसूत्र में सनतकुमार मोक्ष गया नहीं, कहा है परंतु उस में उस का दृष्टांत दिया है कि जीव भारी कर्म के उदय से परिषह वेदना भोग के दीर्घायु पाल के सिद्ध हो, जैसे सनतकुमार, यहां कर्म परिषह वेदना और आयु के दृष्टांत में सनतकुमार का ग्रहण किया है, क्योंकि दृष्टांत एकदेशी भी होता है, इस वास्ते सनतकुमार तीसरे देवलोक गया, टीकाकार का कहना सत्य है।

२. "**भगवतीसूत्र** में पांचसौ धनुष्य से अधिक अवगाहना वाला सिद्ध न हो ऐसा कहा है और **आवश्यक निर्युक्ति** में मरुदेवी (५२५) सवापांच सौ धनुष्य की अवगाहना वाली सिद्ध हुई ऐसे कहा है"। उत्तर-यह जेठे का लिखना मिथ्या है, क्योंकि आवश्यक निर्युक्ति में मरुदेवी की सवापांच सौ धनुष्य की अवगाहना नहीं कही है।

३. "**समवायांगसूत्र** में ऋषभदेव का तथा बाहुबलि का एक सरीखा आयुष्य कहा है, और **आवश्यक निर्युक्ति में** अष्टापद पर्वत ऊपर श्रीऋषभदेव के साथ एक ही समय में बाहुबलि भी सिद्ध हुआ ऐसे कहा है"। उत्तर-बाहुबलि का आयुष्य ६ लाख पूर्व टूट गया। इस आयु का टूटना सो आश्चर्य है। **पंचवस्तु** शास्त्र में लिखा है कि दश आश्चर्य तो उपलक्षण मात्र हैं, परंतु आश्चर्य बहुत हैं[१]

४. "**ज्ञातासूत्र में** मल्लिनाथ स्वामी के दीक्षा और केवल कल्याणक पोष सुदि ११ के

---

१ यदि ढूंढिये बाहुबलि का श्रीऋषभदेव के साथ एक ही समय में सिद्ध होना नहीं मानते हैं तो उन को चाहिये कि अपने माने बत्तीस सूत्रों में से दिखा देवे कि श्रीबाहुबलि ने अमुक समय दीक्षा ली और अमुक वक्त केवलज्ञान हुआ और अमुक वक्त सिद्ध हुआ तथा **श्रीठाणांगसूत्र** के दशमें ठाणे में दश अच्छेरे लिखे हैं उनका स्वरूप, तथा किस किस तीर्थंकर के तीर्थ में कौनसा २ अच्छेरा हुआ इस का वर्णन, विना निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका और प्रकरणादि ग्रंथो के अपने माने बत्तीस शास्त्रों के मूल पाठ में दिखाना चाहिये, जब तक इन का पूरा २ स्वरूप नहीं दिखाओगें वहां तक तुम्हारी कोई भी कुयुक्ति काम न आवेगी। दश अच्छेरी का पाठ यह है ॥

"दस अच्छेरगा पण्णत्ता तंजहा ॥ उवसग्ग[१] गब्भहरणं[२] इत्थी तीत्थं[३] अभाविया परिसा[४] । कण्हस्स अवरकंका[५] उत्तरणं चंद सूराणं[६] ॥१॥

हरिवंसकुलुप्पत्ति[७] चमरुप्पाओ य[८] अट्ठसयसिद्धा[९] । अस्संजएसु पूया[१०] दसवि अणंतेण कालेणं ॥२॥"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहे और **आवश्यक निर्युक्ति** में मृगसर सुदि ११ के कहे हैं" उत्तर-यह मतांतर है।

५. "**बृहत्कल्पसूत्र** में साधु काल करे तो उस को वांस की झोली कर के साधु वन में परठ आवे ऐसे कहा है। और **आवश्यक निर्युक्ति** में साधु पंचक में काल करे तो पांच पुतले डाभ के कर के साधु के साथ जालना ऐसे कहा है" उत्तर-यह सर्व झूठ है, क्योंकि **आवश्यक निर्युक्ति** में ऐसा पाठ बिलकुल नहीं है। **बृहत्कल्पसूत्र** में पूर्वोक्त विधि कही है तो भी ढूंढिये अपने साधुओं को विमान बना कर लकडियों के साथ जलाते हैं सो किस शास्त्रानुसार ? और हमारे श्रावक जो इस मुताबिक करते हैं सो तो पूर्वाचार्यकृत ग्रंथों के अनुसार करते हैं।

६. "**भगवतीसूत्र** में एक पुरुष को उत्कृष्टे पृथक्त्व लाख पुत्र हो ऐसे कहा है और ग्रंथों में भरत के सवाक्रोड पुत्र कहे हैं" उत्तर-**भगवतीसूत्र** का पाठ एक स्त्री की अपेक्षा है। भरत के बहुत स्त्रियां थी। इस वास्ते उस के सवाक्रोड़ पुत्र थे यह बात सत्य है।

७. "**भगवतीसूत्र में** भगवंत का अपराधी और भगवंत के दो शिष्यों को जलाने वाला ऐसा जो गोशाला उस को भगवंतने कुछ नहीं किया ऐसे कहा है, और **संघाचार की टीका** में पुलाक लब्धि वाला चक्रवर्त्ती की सेना को चूज कर दे ऐसे कहा है" उत्तर - पुलाक लब्धि वाला चक्रवर्त्ती की सेना का चूर्ण कर दे ऐसी उस में शक्ति है सो सत्य है[1] भगवंत ने गोशाले को कुछ नहीं किया ऐसे जेठमल कहता है, परंतु भगवंत तो केवल ज्ञानी थे, वह तो जैसे भाविभाव देखें वैसे वर्तें।

८. "सूत्र में नारकी तथा देवता को असंघयणी कहा है और प्रकरणों में संघयण मानते हैं" उत्तर - देवता में जो संघयण कहा है सो शक्तिरूप है, हाडरूप नहीं; और जो असंघयणी कहा है सो हाड की अपेक्षा है तथा **श्रीउववाईसूत्र** में देवता को संघयण कहा है, परंतु जेठमल के हृदय की आंख मे कसर होने से दीखा नहीं होगा।

९. "**पन्नवणासूत्र** में स्थावर को एक मिथ्यात्व गुणठाणा कहा है और **कर्मग्रंथ** में दो गुणठाणे कहे है" उत्तर - कर्मग्रंथ में दूसरा गुणठाणा कहा है सो कदाचित् होता है। और **पन्नवणा** में एक ही गुणठाणा कहा है सो बहुलता की अपेक्षा है।

१०. "**श्रीदशवैकालिकसूत्र** में साधु के लिये रात्रिभोजन का निषेध है और **बृहत्कल्प** की टीका में साधु को रात्रिभोजन करना कहा है" उत्तर-बृहत्कल्प के मूलपाठमें भी यही बात है, परंतु उस की अपेक्षा गुरुगम में रही हुई है।

११. "**श्रीठाणांगसूत्र** में शील रखने वास्ते साधु आपघात कर के मर जावे ऐसे कहा है और **श्रीबृहत्कल्प** की चूर्णि में साधु को कुशील सेवना कहा है"। उत्तर-जैनमत के किसी भी शास्त्र में कुशील सेवना नहीं कहा है, परंतु जेठे ढूंठक ने जूठ लिखा है।

१ पुलाकलब्धि बाबत प्रश्न लिखने से यह भी मालूम होता है कि ढूंढिये २८ लब्धियों को भी नहीं मानते होंगे अगर मानते हैं तो दिखाना चाहिये कि २८ लब्धियों का क्या २ स्वरूप है और उनमें क्या २ शक्तियां है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस से मालूम होता है कि वह अपनी बीती बात लिख गया होगा।

१२. "**श्रीभगवतीसूत्र** में छट्ठे आरे लगते वैताढय पर्वत वर्ज के सर्व पर्वत व्यवच्छेद होंगे ऐसे कहा है । और ग्रंथो में शत्रुंजय पर्वत शाश्वता कहा है" इस का उत्तर सातवें प्रश्नोंत्तर में लिख आए हैं ।

१३. "**श्रीभगवतीसूत्र में** कृत्रिम वस्तु की स्थिति संख्याते काल की कही है और ग्रंथों में शंखेश्वर पार्श्वनाथ की प्रतिमा असंख्यात काल की है, ऐसे कहा है" इस का उत्तर तीसरे प्रश्नोत्तर में दिया गया है ।

१४. "**श्रीज्ञातासूत्र** में श्रीशत्रुंजय पर्वत ऊपर पांच पांडवोंने संथारा किया ऐसे कहा और ग्रंथो में बीस क्रोड़ मुनियों के साथ पांडव सिद्ध हुए ऐसे कहा" उत्तर - **श्रीज्ञातासूत्र में** फक्त पांडवों की ही विवक्षा है, अन्य मुनियों की नहीं इस वास्ते वहां परिवार नहीं कहा है ।

१५. "**श्रीभगवतीसूत्र** में महावीर स्वामी की ७०० केवली की संपदा कही और ग्रंथों में पंदरह सौ तापस केवली बढा दिया" इस का उतर दशमें प्रश्नोतर में लिखा दिया है ।

१६. "**श्रीठाणांगसूत्र** में मानुषोत्तर पर्वत ऊपर चार कूट इंद्र के आवास के कहे और जैनधर्मी सिद्धायतन कूट हैं ऐसे कहते हैं, परंतु वह तो सूत्र में कहे नहीं हैं"। उत्तर- **ठाणांगसूत्र** के चौथे ठाणे में चार बोल की वक्तव्यता है इस वास्ते वहां चार ही कूट कहे हैं, परंतु सिद्धायतनकूट **श्रीद्वीपसागरपन्नत्ति** में कहा है, इस बाबत पंदर में प्रश्नोत्तर में विशेष खुलासा किया गया है ।

१७. "सूत्रमें साधुसाध्वी को मोल का आहार न कल्पे ऐसे कहा और प्रकरणों में सात क्षेत्रे धन निकलवाते हो । उस में साधुसाध्वी के निमित्त भी धन निकलवाते हो" उत्तर - जैनमत के किसी भी शास्त्र में उत्सर्ग कहीं नहीं लिखा है कि साधु के निमित्त मोल का लिया आहारादिक श्रावक देवे और साधु लेवे । इस बाबत जेठमल ने बिलकुल मिथ्या लिखा है । तथा इस बाबत अठारहवें प्रश्नोत्तर में खुलासा लिखा गया है ।

१८. "सूत्र में रुचकद्वीप पंद्रहवाँ कहा और प्रकरण में तेरहवाँ कहा" उत्तर-**श्रीअनुयोगद्धारसूत्र** में रुचकद्वीप ग्यारहवाँ और **जीवाभिगमसूत्र** में पंदरहवाँ लिखा है। सो कैसे ?

१९. "सूत्र में ५६ अंतरद्वीप जल से अंतरिक्ष कहे हैं और प्रकरण में चार दाढा ऊपर हैं ऐसे कहा है"। उत्तर - चार दाढा ऊपर जेठे का यह लिखना झूठ है क्योंकि आठ दाढा ऊपर हैं ऐसे प्रकरण में कहा है, और सो सत्य है, क्योंकि सूत्र में दाढा ऊपर नहीं हैं ऐसे नहीं कहा है ।

२०. "**श्रीपन्नवणासूत्र** में छद्मस्थ आहारक की दो समय की स्थिति कही और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकरण में तीन समय आहारक कहा है"। उत्तर - **श्रीभगवतीसूत्र** में भी तीन समय की आहारक की स्थिति कही है ।

और **श्रीभगवतीसूत्र** में चार समय की विग्रहगति कही और प्रकरण में पांच समय की उत्कृष्ट विग्रहगति कही । उस का उत्तर - बहुलता से चार समय की विग्रहगति होती है । इस वास्ते सूत्र में ऐसे कहा है । परंतु किसी वक्त पांच समय की भी विग्रहगति होती है । इस वास्ते प्रकरण में उत्कृष्टी पांच समय की कही है ।

२१. "**श्रीसमवायांगसूत्र** में आचारांग का महापरिज्ञा अध्ययन नवमा कहा और प्रकरण में सातवाँ कहा"। उत्तर - **श्रीसमवायांगसूत्र** में विजयमुहूर्त बारहवाँ कहा है और **जंबूद्वीपपन्नत्ति** में सत्रहवाँ कहा है सो कैसे ?

२२. "**श्रीसमवायंगसूत्र** के ५४ में समवाय में ५४ उत्तम पुरुष कहे हैं, और प्रकरण में त्रेसठ ६३ कहे"। उत्तर - **समवायांगसूत्र** में ही मल्लिनाथजी के ५७ सौ मनपर्यवज्ञानी कहे और **ज्ञातासूत्र** में आठ सौ कहे यह तो सूत्रों में परस्पर विरोध हुआ सो कैसे ?

२३. "**श्रीपन्नवणासूत्र** में सन्मूर्छिम मनुष्य को सर्व पर्याप्ति से अपर्याप्ता कहा है और प्रकरण में तीन साढे तीन पर्याप्तियां कही हैं"। उत्तर - **श्रीपन्नवणासूत्र** के पाठ का अर्थ जेठमल को आया नहीं । इस वास्ते उस को विरोध मालूम हुआ है । परंतु यथार्थ अर्थ विचारने से इस बात में बिलकुल विरोध नहीं आता है ।

२४. "**श्रीभगवतीसूत्र** में जीव के सर्व प्रदेश में कर्मप्रदेश अनंत कहे हैं और प्रकरण में आठ रुचकप्रदेश उघाडे कहे हैं"। उत्तर - **श्रीभगवतीसूत्र** में कहा है कि कंपमान प्रदेश कर्म बांधते हैं और अकंपमान प्रदेश कर्म नहीं बांधते हैं । इस वास्ते आठ रुचकप्रदेश अकंपमान हैं और इस कारण से वे उघाडे हैं ।

२५. "श्रीउत्तराध्ययन में आतप उद्योत आदि विस्रसा पुद्गल हाथ में न आवें ऐसे कहा है । और प्रकरण में गौतमस्वामी सूर्यकिरणों को अवलंब के अष्टापद पर चढे ऐसे कहा है "। इस का उत्तर - दशमें प्रश्नोत्तर में सविस्तर लिखा गया है ।

२६. "**श्रीठाणांगसूत्र** में बत्तीस असझाइ कही है और प्रकरण में अस्सु तथा चैत्र के महिने में ओली के दिन भी असझाइ के कहे हैं"। उत्तर - श्रीठाणांगसूत्र में ऐसे नहीं कहा है कि बत्तीस ही असझाइ हैं और अन्य नहीं । इस वास्ते प्रकरण में कही बात भी सत्य है ।

२७. "**श्रीअनुयोगद्धार** में उच्छेद आंगुल से प्रमाणांगुल हजार गुना कहा है । उस मुताबिक चार हजार गाउ का प्रमाण योजन होता है और प्रकरण में सोलहसौ (१६००) गाउ का योजन कहा है"। उत्तर - **श्रीअनुयोगद्धार** में प्रमाणांगुल की सूची हजारगुना कहा है । और अंगुल तो चारसो गुना है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परंतु गुरुगम बिना मूढमतियों को इस बात की समझ कहांसे होगी ?

२८. "**श्रीभगवतीसूत्र** में महावीरस्वामी ने छद्मस्थता में अंत की रात्रि में दश स्वप्न देखे ऐसे कहा । और **श्रीआवश्यकसूत्र** में प्रथम चौमासे देखे ऐसे कहा है"। उत्तर - **श्रीभगवतीसूत्र** में जो कहा है उस का भावार्थ यह है कि छद्मस्थता में अंत रात्रि में अर्थात् जिस दिन की रात्रि में देखे उस रात्रि के अंतिम भाग में देखे ऐसे समझना । इस वास्ते **श्रीआवश्यकसूत्र** में प्रथम चौमासे देखे ऐसे कहा है सो सत्य है तो भी इस में मतांतर है ।

२९-३०-३१. "**श्रीउत्तराध्ययन** में कहा है कि संयम लेने में समयमात्र प्रमाद नहीं करना और **गणिविजयपयन्ने** में कहा है, कि तीन नक्षत्र में दीक्षा नहीं लेनी, चार नक्षत्र में लोच नहीं करना । पांच नक्षत्र में गुरु की पूजा करनी"। उत्तर-**श्रीउत्तराध्ययनसूत्र** में जो बात कही है सो सामान्य और अपेक्षापूर्वक है परंतु अपेक्षा से अनजान जेठे की समझ में यह बात नहीं आई है । तथा गणिविजय पयन्ने की बात भी सत्य है । **गणिविजयपयन्ने** की बात उत्थापने में जेठे का हेतु जिनप्रतिमा के उत्थापन करने का है क्योंकि आप ही जेठे ने **गणिविजयपयन्ने** की जो गाथा लिखी है उसमें-

"धणिट्ठाहि सयभिसा साइ सवणोय पुणव्वसु एएसु गुरुसुस्सुसा चेइयाणं च पूयणं ।।

अर्थ - "धनिष्ठा, शतभिषा, स्वाति, श्रवण, और पुनर्वसु इन पांच नक्षत्रों में गुरुमहाराज की सुश्रूषा अर्थात् सेवाभक्ति करनी और इन्हीं नक्षत्रों में जिनप्रतिमा का पूजन करना" ऐसे कथन है । इस से यह नहीं समझना कि पूर्वोक्त नक्षत्रों से अन्य नक्षत्रों मे गुरुभक्ति और देवपूजा नहीं करनी, परंतु पूर्वोक्त पांच नक्षत्रों में विशेष कर के करनी जिस से बहुत फल की प्राप्ति हो । जैसे **श्रीठाणांगसूत्र** के दशवें ठाणे में कहा है कि दश नक्षत्रों में ज्ञान पढे तो वृद्धि होगी[१]

"दस णक्खत्ता णाणस्स वुड्ढीकरा पण्णत्ता"

यहां भी ऐसे ही समझना । इस वास्ते जेठमल की कुयुक्ति खोटी है । जिनवचन स्याद्वाद है, एकांत नहीं । जो एकांत माने उन को शास्त्रकार ने मिथ्यात्वी कहा है ।

३२-३३. "**श्रीजंबूद्वीपपन्नत्ति** में पांचवें आरे ६ संघयण और ६ संस्थान कहे और **श्रीतंदुलवियालिय पयन्ने** में सांप्रतकाल में सेवार्त्त संघयण और हुंडक संस्थान कहा है" । उत्तर-**श्रीजंबूद्वीपपन्नत्ति** में पांचवे आरे में मुक्ति कही है परंतु सांप्रतकाल में जैसे किसी को केवलज्ञान नहीं होता है । वैसे पांचवें आरे के प्रारंभ में ६ संघयण और ६ संस्थान थे । परंतु हाल एक छेवट्ठा संघयण और हुंडक संस्थान है । यदि ६ ही संघयण और ६ ही संस्थान हाल हैं, ऐसे कहोगे तो जंबूद्वीपपन्नत्ति में कहे मुताबिक हाल मुक्ति भी प्राप्त होनी चाहिये । यदि इस में अपेक्षा मानोगे तो अन्य बातों में अपेक्षा

१ श्रीसमवायांगसूत्र में भी यही कथन है ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं मानते हो और मिथ्या प्ररूपणा करते हो उस का क्या कारण ? ।

३४. "**श्रीभगवतीसूत्र** में आराधना के अधिकार में उत्कृष्ट पंद्रह भव कहे और **चंद्रविजयपयन्ने** में तीन भव कहे"। उत्तर - **चंद्रविजयपयन्ने** में जो आराधना लिखी है उस के तो तीन ही भव हैं और जो पंद्रह भव हैं सो अन्य आराधना के हैं ।

३५. "सूत्र में जीव चक्रवर्त्तीत्व उत्कृष्ट दो वक्त पाता है, ऐसे कहा और **श्रीमहापच्चक्खाणपयन्ने**में अनंतवार चक्रवर्त्ती हो ऐसे कहा"। उत्तर - **श्रीमहापच्चक्खाणपयन्ने**में तो ऐसे कहा है कि जीवने इंद्रत्व पाया, चक्रवर्त्तीत्व पाया, और उत्तम भोग अनंतवार पाये । तो भी जीव तृप्त नहीं हुआ । परंतु उस पाठ में चक्रवर्त्तीत्व अनंतवार पाया ऐसे नहीं कहा है । इस से मालूम होता है कि जेठमल को शास्त्रार्थ का बोध ही नहीं था ।

३६. "**श्रीभगवतीसूत्र** में कहा है कि केवली को हंसना, रमणा, सोना, नाचना इत्यादि मोहनी कर्म का उदय नहीं होता और प्रकरण । कपिल केवलीने चोरों के आगे नाटक किया ऐसे कहा" । उत्तर-कपिल केवलीने ध्रुपद छंद प्रमुख कह के चोर प्रतिबोधे और तालसंयुक्त छंद कहे । उस का नाम नाटक है, परंतु कपिल केवली नाचे नहीं हैं ।

३७. "**श्रीदशवैकालिकसूत्र** में साधु को वेश्या के पाडे (महल्ले) जाना निषेध किया और प्रकरण में स्थूलभद्रने वेश्या के घर में चौमासा किया ऐसे कहा"। उत्तर-स्थूलभद्र के गुरु चौदहपूर्वी थे । इस वास्ते स्थूलभद्र आगमव्यवहारी गुरु की आज्ञा लेकर वेश्या के घर में चौमासा रहे थे । और **दशवैकालिकसूत्र** तो सूत्रव्यवहारियों के वास्ते है । इस वास्ते पूर्वोक्त बात में कोई भी विरोध नहीं है[१] ।

३८. "श्रीआचारांगसूत्र में महावीरस्वामी `**संहरिज्जमाणे जाणइ**' ऐसे कहा और श्रीकल्पसूत्र में `**न जाणइ**' ऐसे कहा"। उत्तर - जेठा मूढ़मति **कल्पसूत्र** का विरोध बताता है परंतु **श्रीकल्पसूत्र** तो श्रीदशाश्रुतस्कंध का आठवाँ अध्ययन है[२], इस वास्ते यदि **दशाश्रुतस्कंध** को ढूंढिये मानते हैं तो **कल्पसूत्र** भी उन को मानना चाहिये । तथापि कल्पसूत्र में कहे वचन की सत्यता वास्ते मालूम हो कि कल्पसूत्र में प्रभु न जाने ऐसे कहा है सो हरिणगमेषी देवता की चतुराई मालूम करने वास्ते, और प्रभु को किसी प्रकार की बाधा पीडा नहीं हुई इस वास्ते कहा है; जैसे किसी

१ इस से यह भी मालूम होता है कि ढूंढिये स्थूलभद्र का अधिकार मानते नहीं होंगे ? बेशक इन के माने बत्तीस शास्त्रों में श्रीस्थूलभद्र का वर्णन ही नहीं है तो फिर यह भोले लोगोंको स्थूलभद्र का वर्णन शील के ऊपर सुनाकर क्यों धोखे में डालते हैं ? तथा झूठा बकवाद कर के अपना गला क्यों सुकाते हैं ?

२ **श्रीठाणांगसूत्र** के दशवें ठाणे में दशाश्रुतस्कंध के दश अध्ययन कहे है । उन में **पज्जोसवणाकप्पे** अर्थात् कल्पसूत्र का नाम लिखा है तथापि ढूंढिये नहीं मानते है । जिस का कारण यही है कि **कल्पसूत्र** में पूजा वगैरह का वर्णन आता है ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदमी के पगमें कांटा लगा हो, उस को कोई निपुण पुरुष चतुराई से निकाल देवे तब जिस को कांटा लगा था वह कहे कि भाई ! तुमने मेरे पैर में से ऐसे कांटा निकाला जो कि मुझ को खबर भी न हुई । ऐसे टीकाकारो ने खुलासा किया है तो भी बेअकल ढूंढिये नहीं समझते हैं । सो उन की भूल है ।

३९. "सूत्र में मांस का आहार त्यागना कहा है और **भगवती** की टीका में मांस अर्थ करते हो" उत्तर - श्रीभगवतीसूत्र की टीका में जो अर्थ किया है सो मांस का नहीं है, परंतु कदापि जेठा अभक्ष्य वस्तु खाता हो और इस वास्ते ऐसे लिखा हो तो बन सकता है, क्योंकि जैनमत में तो किसी भी शास्त्रमें मांस खाने की आज्ञा नहीं है ।

४०. "**श्रीआचारांगसूत्र** में "**मंसखलं वा और मच्छखलं वा**" इस शब्द का `मांस' अर्थ करते हो" उत्तर-जैनमत के साधु किसी भी जगह मांसभक्षण करने का अर्थ नहीं करते हैं, तथापि जेठे ने इस मुताबिक लिखा है सो उसने अपनी मति कल्पना से लिखा है ऐसे मालूम होता है[1]

४१. "सूत्र में जैसे मांस का निषेध है वैसे मदिरा का भी निषेध है । और **श्रीज्ञातासूत्र** में शेलकराजऋषि ने मद्यपान किया ऐसे कहते हो"। उत्तर - जैनमत के मुनि पूर्वोक्त अर्थ करते हैं सो सत्य ही है, क्योंकि शेलकराजर्षि के तीन वक्त मद्यपान करने का अधिकार सूत्रपाठ में है तो उस अर्थ में कुछ भी बाधक नहीं है । क्योंकि सूत्रकार ने भी उस वक्त शेलकराजर्षि को पासथ्था, उसन्ना और संसक्त कहा है । इस वास्ते सच्चे अर्थ को झूठा अर्थ कहना सो मिथ्यात्वी का लक्षण है ।

४२. "**श्रीभगवतीसूत्र** में कहा कि मनुष्य का जन्म एकसाथ एक योनि से उत्कृष्ट पृथक्त्व जीव का होवे; और प्रकरण में सगर चक्रवर्त्ती के साठ हजार पुत्र एक साथ जन्मे कहे हैं"। उत्तर-**श्रीभगवतीसूत्र** में जो कथन है सो स्वाभाविक है, सगर चक्रवर्त्ती के पुत्र जो एकसाथ जन्मे हैं सो देवकारण से जन्मे हैं ।

४३. "सूत्र में कहा है कि शाश्वती पृथिवी का दल उतरे नहीं और प्रकरण में कहा कि सगर चक्रवर्ती के पुत्रों ने शाश्वतादल तोडा"। उत्तर - सगर चक्रवर्ती के पुत्र श्रीअष्टापद पर्वतोपरि यात्रा निमित्त गये थे । उन्होंने तीर्थरक्षा निमित्त चारों तर्फ खाई खोदने वास्ते विचार किया । इस से उन के पिता सगर चक्रवर्ती के दिये दंडरत्न से खाई खोदी; और शाश्वता दल तोडा; परंतु दंडरत्न के अधिष्टायक एक हजार देवता हैं । और देवशक्ति अगाध है । इस वास्ते प्रकरण में कही बात सत्य है ।

४४. "सूत्र में तीर्थंकर की तेतीस आशातना टालनी कही । और प्रकरण में जिन प्रतिमा की चौरासी आशातना कही है"। उत्तर - तीर्थंकर की तेतीस आशातना जैनमत के किसी भी शास्त्र में नहीं कही हैं । जैनशास्त्रों में तो तीर्थंकर की चौरासी

१ ढूंढियों ! तुम टीका को मानते नहीं हो तो **श्रीभगवती** तथा **आचारागसूत्र** के इन पाठों का अर्थ कैसे करते हो ? क्योंकि [illegible] मानते हो ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आशातना कही है। और उसी मुताबिक जिनप्रतिमा की चौरासी आशातना है।

४५. "उपवास (व्रत) में पानी बिना अन्य द्रव्य के खाने का निषेध है और प्रकरण में अणाहार वस्तु खानी कही है।" उत्तर - जेठमल आहार अणाहार के स्वरूप का जानकार मालूम नहीं होता है। क्योंकि व्रत में तो आहार का त्याग है, अणाहार का नहीं तथा क्या क्या वस्तु अणाहार है, किस रीति से ओर किस कारण से वर्तनी चाहिये, इस की भी जेठमल को खबर नहीं थी ऐसे मालूम होता है। ढूंढिये व्रत में पानी बिना अन्य द्रव्य के खाने की मनाई समझते हैं तो कितनेक ढूंढिये साधु तपस्या नाम धराय के अधरिड का तथा गाहडी मठे सरीखी छास (लस्सी) आदि अशनाहार का भक्षण करते हैं सो किस शास्त्रानुसार ?

४६. "सिद्धांत में भगवंत को "**सयंसंबुद्धाणं**" कहा और कल्पसूत्र में पाठशाला में पढ़ने वास्ते भेजे ऐसे कहा है"। उत्तर - भगवंत तो "**सयंसंबुद्धाणं**" अर्थात् स्वयंबुद्ध ही हैं। वे किसी के पास पढे नहीं है, परंतु प्रभु के मातापिता ने मोह से पाठशाला में भेजा तो वहां भी उलटे पाठशाला के उस्ताद के संशय मिटा के उसको पढा आए हैं ऐसे शास्त्रों में खुलासा कथन है। तथापि जेठमल ने ऐसे खोटे विरोध लिख के अपनी मूर्खता जाहिर की है।

४७. "सूत्र में हाड की असझाई कही है; और प्रकरण में हाड के स्थापनाचार्य स्थापने कहे"। उत्तर - असझाई पंचेंद्री के हाड की है अन्य की नहीं। जैसे शंख हाड है तो भी वाजिंत्रों में मुख्य गिना जाता है, और सूत्र में बहुत जगह यह बात है, तथा यदि ढूंढिये सर्व हड्डी की असझाई गिनते हैं तो उन की श्राविका हाथ में चूडा पहिन के ढूंढिये साधुओं के पास कथावार्त्ता सुनने को आती हैं सो वह चूडा भी हाथीदांत हाथी के हड्डी का ही होता है। इस वास्ते ढूंढक साधु को चाहिये कि अपने ढूंढक श्रावकों की औरतों को हाथ में से चूडा उतारे बाद ही अपने पास आने देवें[१] !

४८. "**श्रीपन्नवणाजी** में आठ सौ योजन की पोल में वाणव्यंतर रहते हैं ऐसे कहा और प्रकरण में अस्सी (८०) योजन की पोल अन्य कही"।

१ यह हास्यरस संयुक्त लेख गुजरात, काठियावाड, मारवाडादि देशों के ढूंढियों आश्री है, क्योंकि उस देश में रंडी विधवा के सिवाय कोई भी औरत कभी भी हाथ चूडे से खाली नहीं रखती है। कितना ही सोग हो परंतु सोहाग का चूडा तो जरूर ही हाथ में रहता है, औरतों के हाथसे चूडा तो पति के परलोक में सधाये बाद ही उतरता है तो ढूंढिये साधु को सोहागन औरतोंको अपने व्याख्यानादि में कभी भी नहीं आने देना चाहिये ! और पंजाब देश की औरतो के भी नाककान वगैरह के कितने ही गहने हड्डी के होते हैं, ढूंढिये श्रावक श्राविकाओं के कोट कमीज फतुइयां वगैरह को गुदामभी प्रायः हाड के ही लगे हुए होते हैं, इस वास्ते उन को भी पास नहीं बैठने देना चाहिये ! वाहरे भाई ढूंढियो ! ! सत्य है। विना गुरुगम के यथार्थ बोध कहां से हो ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर-**श्रीपन्नवणासूत्र** में समुच्चय व्यंतर का स्थान कहा है और ग्रंथो में विशेष खुलासा किया है ।

४९. "जैनमार्गी जीव नरक में जाने के नाम से भी डरता है, ऐसे सूत्र में कहा है, और प्रकरण में कोणिक राजाने सातवीं नरक में जाने वास्ते महापाप के कार्य किये ऐसे कहा" उत्तर - जैनमार्गी जीव नरक में जाने के नाम से भी डरता है सो बात सामान्य है, एकांत नहीं । और कोणिक के प्रश्न करने से भगवंत ने उस को छठी नरक में जावेगा ऐसे कहा तब छठी नरक में तो चक्रवर्त्ती का स्त्रीरत्न जाता है ऐसे समझ के छठी से सातवीं में जाना अपने मन में अच्छा मान के उस ने बहुत आरंभ के कार्य किये है । तथा ढूंढिये भी जैनमार्गी नाम धरा के अरिहंत के कहे वचनों को उत्थापते हैं, जिन प्रतिमा को निंदते हैं, सूत्रविराधते हैं । भगवंतने तो एक वचन के भी उत्थापक को अनंत संसारी कहा है । यह बात ढूंढिये जानते हैं तथापि पूर्वोक्त कार्य करते हैं और नरक में जाने से नहीं डरते हैं, निगोद में जाने से भी नहीं डरते हैं, क्योंकि शास्त्रानुसार देखने से मालूम होता है कि इन की प्रायः नरक निगोद के सिवाय अन्य गति नहीं है ।

५०. "कूर्मापुत्र केवलज्ञान पाने के पीछे ६ महिने घर में रहे कहा है" उत्तर-जो गृहस्थावास में किसी जीव को केवलज्ञान हो तो उसको देवता साधु का भेष देते हैं और उस के पीछे वे विचरते तथा उपदेश देते हैं । परंतु कुर्मापुत्र को ६ महिने तक देवताने साधु का भेष नहीं दिया और केवलज्ञानी जैसे ज्ञान में देखे वैसे करे परंतु इस बात से जेठमल के पेट में क्यों शूल हुआ ? सो कुछ समझ में नहीं आता है ।

५१. "सूत्र में सर्वदान में साधु को दान देना उत्तम कहा है और प्रकरण में विजय सेठ तथा विजया सेठानी को जिमावने से ८४००० साधु को दान दिये जितना फल कहा"। उत्तर-विजय सेठ और विजया सेठानी गृहस्थावास में थे । उन की युवा अवस्था थी, तत्काल का विवाह हुआ हुआ था, और कामभोग तो उन्होंने दृष्टि से भी देखे नहीं थे । ऐसे दंपतीने मन-वचन-काया त्रिकरण शुद्धि से एक शय्या में शयन करके फिर भी अखंड धारा से शील(ब्रह्मचर्य)व्रत पालन किया है । इस वास्ते शील की महिमा निमित्त पूर्वोक्त प्रकार कथन किया है । और उन की तरह शील पालना सो अति दुष्कर कृत्य है ।

५२. "भरतेश्वर ने ऋषभदेव और ९९ भाइयों के मिला कर सौ स्थूभ कराये ऐसे प्रकरण में कहा है और सूत्र में यह बात नहीं है"। उत्तर-भरतेश्वर के स्थूल कराने का अधिकार **श्री आवश्यक सूत्रमें** है, यतः-

थुभसय भाउयाणं चउव्विसं चेव जिणधरे कासी ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वजिणाणं पडिमा वण्णपमाणेहिं नियएहिं ।।८९।।

और इसी मुताबिक **श्रीशत्रुंजयमहात्म्य** में भी कथन है[१]

५३. "पांडवों ने श्रीशत्रुंजय ऊपर संथारा किया ऐसे सूत्र में कहा है । परंतु पांडवों ने उद्धार कराया यह बात सूत्र में नहीं है"। उत्तर - सूत्र में पांडवों ने संथारा किया यह अधिकार है और उद्धार कराया यह नहीं हैं । इस से यह समझना कि इतनी बात सूत्रकार ने कम वर्णन की है परंतु उन्होंने उद्धार नहीं कराया ऐसे सूत्रकार ने नहीं कहा है । इस वास्ते उन्हों ने उद्धार कराया यह वर्णन **श्रीशत्रुंजयमहात्म्यादि** ग्रंथों में कथन किया है सो सत्य ही है ।

५४. "पंचमी छोड़ के चौथ को संवत्सरी करते हो" उत्तर - हम जो चौथ की संवत्सरी करते हैं सो पूर्वाचार्यों की तथा युगप्रधान की परंपरा से करते हैं । **श्रीनिशीथचूर्णि में चौथ की संवत्सरी करनी कही है । और पंचमी की संवत्सरी करने का कथन सूत्र में किसी जगह भी नहीं हैं ।** सूत्र में तो आषाढ चौमासे के आरंभ से एक महिना और बीस दिन संवत्सरी करनी, और एक महिना बीस दिन के अंदर संवत्सरी पडिक्कमनी कल्पती है । परंतु उपरांत नहीं कल्पती है, अंदर पडिक्कमने वाले आराधक हैं, उपरांत पडिक्कमने वाले विराधक हैं । ऐसे कहा है तो विचार करो कि जैनपंचांग व्यवच्छेद हुए हैं जिस से पंचमी के सायंकाल को संवत्सरी प्रतिक्रमण करने समय पंचमी है कि छठ हो गई है उस की यथास्थित खबर नहीं पडती है । और जो छठ में प्रतिक्रमण करे तो पूर्वोक्त जिनाज्ञा का लोप होता है । इस वास्ते उस कार्य में बाधक का संभव है । परंतु चौथ की सायं को प्रतिक्रमण के समय पंचमी हो जावे तो किसी प्रकार का भी बाधक नहीं है । इस वास्ते पूर्वाचार्यों ने पूर्वोक्त चौथ की संवत्सरी करने की शुद्ध रीति प्रवर्तन की है सो सत्य ही है । परंतु ढूंढिये जो चोथ के दिन संध्या को पंचमी लगती हो तो उसी दिन अर्थात् चौथ को संवत्सरी करते हैं सो न तो किसी सूत्र के पाठ से करते हैं और न युगप्रधान की आज्ञा से करते हैं, किंतु केवल स्वमतिकल्पना से करते हैं ।

५५. "सूत्र में चौवीस ही तीर्थंकर वंदनीय कहे हैं और **विवेकविलास** में कहा है कि घर देहरे में २१ इक्कीस तीर्थंकर की प्रतिमा स्थापनी" उत्तर - जैनधर्मी को तो चौवीस ही तीर्थंकर एक सरीखे हैं, और चौवीस ही तीर्थंकरों को वंदन पूजन करने से यावत् मोक्षफल की प्राप्ति होती है । परंतु घर देहरे में २१ तीर्थंकर की प्रतिमा स्थापनी ऐसे जो **विवेकविलास** ग्रंथ में कहा है सो अपेक्षा वचन है,

१ जे कर ढूंढिये कहें कि यह निर्युक्ति आदि का पाठ है, हम नहीं मंजूर करते हैं तो उन देवानां प्रियों को हम यह पूछते हैं कि तुम्हारे माने सूत्रों में तो भरतेश्वर का संपूर्ण वर्णन ही नहीं है तो तुम कैसे कह सकते हो कि भरतेश्वर के स्थूभ कराये का अधिकार सूत्र में नहीं है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे सर्व शास्त्र एक सरीखे हैं तो भी कितनेक प्रथम पहरमें ही पढे जाते हैं, दूसरे पहर में नहीं । वैसे यह भी समझना । तथा घर देहरा और बडा मंदिर कैसा करना, कितने प्रमाण के ऊंचे जिनबिंब स्थापन करने, कैसे वर्ण के स्थापने, किस रीति से प्रतिष्ठा करनी, किस किस तीर्थंकर की प्रतिमा स्थापन करनी इत्यादि जो अधिकार है सो जो जिनाज्ञा में वर्तते हैं तथा जिनप्रतिमा के गुणग्राहक हैं उनके समझने का है, परंतु ढूंढको सरीखे मिथ्या दृष्टि, जिनाज्ञा से पराङ्मुख और श्रीजिनप्रतिमा के निंदकों के समझने का नहीं है ।

५६. "**श्रीआचारांगसूत्र** के मूलपाठ में पांच महाव्रत की २५ भावना कही हैं और टीका में पांच भावना सम्यक्त्व की अधिक कही"। उत्तर-**श्रीआचारांगसूत्र** के मूलपाठ में चारित्र की २५ भावना कही हैं और निर्युक्ति में पांच भावना सम्यक्त्व की अधिक कही हैं सो सत्य हैं । और निर्युक्ति माननी **नंदिसूत्र** के मूलपाठ में कही है, और सम्यक्त्व सर्वव्रतों का है ! जैसे मूल विना वृक्ष नहीं रह सकता है, वैसे सम्यक्त्व विना व्रत नहीं रह सकते हैं । ढूंढिये व्रत की पच्चीस भावना मान्य करते हैं और सम्यक्त्व की पांच भावना मान्य नहीं करते हैं । इस से निर्णय होता है कि उन को सम्यक्त्व की प्राप्ति ही नहीं है ।

५७. "कर्मग्रंथ में नव में गुणठाणे तक मोहनी कर्म का जो उदय लिखा है सो सूत्र के साथ नहीं मिलता है"। उत्तर - कर्मग्रन्थ में कही बात सत्य है । जेठमल ने यह बात सूत्र के साथे नहीं मिलती है ऐसे लिखा है, परंतु बत्तीस सूत्रों में किसी भी ठिकाने चौदह गुणठाणे ऊपर किसी भी कर्म प्रकृति का बंध, उदय, उदीरणा, सत्ता आदि गुणठाणे का नाम लेकर कहा ही नहीं है । इस वास्ते जेठमल का लिखना मिथ्या है ।

५८. "**श्रीआचारांग की** चूर्णि में - कणेर की कांबी (छटी) फिराई - ऐसे लिखा है" उत्तर - जेठमल का यह लिखना मिथ्या है । क्योंकि आचारांग की चूर्णि में ऐसा लेख नहीं है ।

५९. से ७९ पर्यंत) इक्कीस बोल जेठमल ने **निशीथचूर्णि का** नाम लेकर लिखे हैं वे सर्व बोल मिथ्या हैं, क्योंकि जेठमल के लिखे मुताबिक निशीथचूर्णि में नहीं हैं ।

८०. "**श्रीआवश्यकसूत्र** के भाष्य में श्रीमहावीरस्वामी के २७ भव कहे । उन में मनुष्य से काल करके चक्रवर्त्ती हुए ऐसे कहा है" उत्तर-मनुष्य काल कर के चक्रवर्ती न हो ऐसा शास्त्र का कथन है तथापि प्रभु हुए इस से ऐसे समझना कि जिनवाणी अनेकांत है । इस वास्ते जिनमार्ग में एकांत खींचना सो मिथ्यादृष्टि का काम है । और ढूंढियों के माने बत्तीस सूत्रों में तो वीरभगवंत के २७ भवों का वर्णन ही नहीं है तो फिर जेठमल को इस बात के लिखने का क्या प्रयोजन था ?

८१. सिद्धांत में अरिष्टनेमि के अठारह गणधर कहे और भाष्य में ग्यारह कहे सो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतांतर है ।

८२. सूत्र में पार्श्वनाथ के (२८) गणधर कहे और निर्युक्ति में (१०) कहे ऐसे जेठमल ने लिखा है । परंतु किसी भी सूत्र या निर्युक्ति आदि में श्रीपार्श्वनाथ के (२८) गणधर नहीं कहे हैं । इस वास्ते जेठमल ने कोरी गप्प ठोकी है ।

८३. "गृहस्थपने में रहे तीर्थंकर को साधु वंदना करे सो सूत्र विरुद्ध हैं" । उत्तर - जब तक तीर्थंकर गृहस्थपने में हो तब तक साधु का उन के साथ मिलाप होता ही नहीं है ऐसी अनादि स्थिति है । परंतु साधु द्रव्य तीर्थंकर को वंदना करे यह तो सत्य है । जैसे श्रीऋषभदेव के साधु चउविसत्था (लोगस्स) कहते हुए श्रीमहावीर पर्यंत को द्रव्यनिक्षेपे वंदना करते थे । तथा हाल में भी लोगस्स कहते हुए उसी तरह द्रव्य जिनको वंदना होती है[१] ।

८४-८५. "**श्रीसंथारापयन्ना** में तथा **चंद्रविजयपयन्ना** में अवंती सुकुमाल का नाम है और एवंती सुकुमाल तो पांचवें आरे में हुआ है । इस वास्ते वह पयन्ने चौथे आरे के नहीं" उत्तर - **श्रीठाणांगसूत्र** तथा **नंदिसूत्र में** भी पांचवे आरे के जीवोंका कथन है तो यह सूत्र भी चौथे आरे के बने नहीं मानने चाहिये ।

ऊपर मुताबिक जेठमल ढूंढक के लिखे(८५)प्रश्नों के उत्तर हमने शास्त्रानुसार यथास्थित लिखे हैं । और इस से सर्व सूत्र, पंचांगी ग्रंथ, प्रकरण आदि मान्य करने योग्य हैं ऐसे सिद्ध होता है । क्योंकि समदृष्टि से देखने से इन में परस्पर कुछ भी विरोध मालूम नहीं होता है । परंतु यदि जेठमल आदि ढूंढिये शास्त्रों में परस्पर अपेक्षापूर्वक विरोध होने से मानने लायक नहीं गिनते हैं तो उनके माने बत्तीस सूत्र जो कि गणधर महाराजा ने आप गूंथे हैं ऐसे वे कहते हैं, उन में भी परस्पर कुछ विरोध है । जिस में से कुछ प्रश्नों के तौर पर लिखते हैं ।

१. **श्रीसमवायांगसूत्र** में श्रीमल्लिनाथजी के (५९००) अवधि ज्ञानी कहे हैं, और **श्रीज्ञातासूत्र** में (२०००) कहे हैं यह किस तरह ?

२. **श्रीज्ञातासूत्र** के पांचवें अध्ययन में कृष्ण की (३२०००) स्त्रियां कही हैं, और **अंतगडदशांग** के प्रथमाध्ययन में (१६०००) कही हैं यह कैसे ?

३. **श्रीरायपसेणीसूत्र** में श्रीकेशीकुमार को चार ज्ञान कहे हैं, और श्रीउत्तराध्ययनसूत्र में अवधिज्ञानी कहा सो कैसे ?

४. **श्रीभगवतीसूत्र** में श्रावक हो सो त्रिविध त्रिविध **कर्मादान** का पच्चक्खाण करे ऐसे कहा, और **श्रीउपासकदशांगसूत्र** में आनंद श्रावक ने हल चलाने खुले रखे यह क्या ?

५. तथा कुम्हार श्रावक ने आवे चढाने खुले रखे ।

६. **श्रीपन्नवणासूत्र** में वेदनीकर्म की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त की कही, और

१ पगामसझाय (साधुप्रतिक्रमण) में भी द्रव्यजिन को वंदना होती है ।
"नमो चउवीसाए तित्थयराणं उसभाइ महावीर पज्जवसाणाणं"
इतिवचनात् ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तराध्ययन में अंतमुहूर्त की कही ।

७. **श्रीउत्तराध्ययन** में `लसन' अनंतकाय कहा, और **श्रीपन्नवणाजी** में प्रत्येक कहा ।

८. **श्रीपन्नवणासूत्र** में चारों भाषा बोलने वाले को आराधक कहा, और **श्रीदशवैकालिकसूत्र** में दो ही भाषा बोलनी कहीं ।

९. **श्रीउत्तराध्ययन** में रोगग्रस्त साधु दवाई न करे ऐसे कहा, और **श्रीभगवतीसूत्र** में प्रभु ने बीजोरापाक दवाई के निमित्त लिया ऐसे कहा ।

१०. **श्रीपन्नवणाजी** में अठारहवें कायस्थिति पद में स्त्रीवेद की कायस्थिति पांच प्रकारे कही तो सर्वज्ञ के मत में पांच बातें क्या ?

११. **श्रीठाणांगसूत्र** में साधु को राजपिंड न कल्पे ऐसे कहा, और **अंतगडसूत्र में** श्रीगौतमस्वामी ने श्रीदेवी के घर में आहार लिया ऐसे कहा ।

१२. **श्रीठाणांगसूत्र** में पांच महा नदी उतरने की मना की, और दूसरे लगते ही सूत्र में हां कही यह क्या ?

१३. **श्रीदशवैकालिक** तथा **आचारांगसूत्र** में साधु त्रिविध प्राणातिपात का पच्चक्खाण करे ऐसे कहा, और **समवायांग** तथा **दशाश्रुतस्कंध** में नदी उतरनी कही यह क्या ?

१४. **श्रीदशवैकालिक** में साधु को लूण प्रमुख अनाचीर्ण कहा, और **आचारांगसूत्र** के द्वितीय श्रुतस्कंध के पहिले अध्ययन के दशवें उद्देश में साधु को लूण किसी ने विहराया हो तो वह लूण साधु आप खा लेवे, अथवा सांभोगिक को बांटके दे ऐसे कहा, यह क्या ?

१५. **श्रीभगवतीसूत्र** में नीम तीखा कहा, और **उत्तराध्ययन** सूत्र में कडुआ कहा यह क्या ?

१६. **श्रीज्ञातासूत्र** में श्रीमल्लिनाथजीने (६०८)के साथ दीक्षा ली ऐसे कहा, और **श्रीठाणांगसूत्र** में छ पुरुष साथ दीक्षा ली ऐसे कहा यह क्या ?

१७. **श्रीठाणांगसूत्र** में श्रीमल्लिनाथजी के साथ ६ मित्रों ने दीक्षा ली ऐसे कहा, और **श्रीज्ञातासूत्र** में श्रीमल्लिनाथजी को केवलज्ञान होने के बाद ६ मित्रों ने दीक्षा ली ऐसे कहा यह क्या ?

१८. **श्रीसूयगडांगसूत्र** में कहा है कि साधु आधाकर्मिक आहार लेता हुआ कर्मों से लिपायमान होगा भी, और नहीं भी होगा, इस तरह एक ही गाथा में एक दूसरे का प्रतिपक्षी ऐसे दो प्रकार का कथन है, यह क्या ?

ऊपर मुताबिक सूत्रों में भी बहुत विरोध हैं परंतु ग्रंथ अधिक हो जाने के भय से नहीं लिखे हैं । सो भी जिन को विशेष देखने की इच्छा हो उन्हों ने **श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायकृत वीरस्तुति रूप हुंडी** के स्तवन का **पंडित श्रीपद्मविजयजी** का किया **बालावबोध** देख लेना ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि ढूंढिये बत्तीस सूत्रों को परस्पर अविरोधी जान के मान्य करते हैं, और अन्य सूत्र तथा ग्रंथों को विरोधी मान के नहीं मान्य करते हैं तो उपर लिखे विरोध जो कि बत्तीस सूत्रों के मूलपाठ में ही हैं उन का निर्युक्ति तथा टीका आदि मदद के बिना निराकरण कर देना चाहिये। हम को तो निश्चय ही है कि ढूंढिये जो कि जिनाज्ञा से पराङ्मुख हैं वे इन का निराकरण बिलकुल नहीं कर सकते हैं। क्योंकि इन में कोई तो पाठांतर, कोई अपेक्षा, कोई उत्सर्ग, कोई अपवाद, कोई नय, कोई विधिवाद, और कोई चरितानुवाद इत्यादि सूत्रों के गंभीर आशय हैं, उन को तो समुद्र सरीखी बुद्धि के धनी टीकाकार आदि ही जानें और कुल विरोधों का निराकरण कर सकें, परंतु ढूंढियों ने तो फक्त जिन प्रतिमा के द्वेषसे सर्व शास्त्र उत्थापे हैं तो इन का निराकरण कैसे कर सके ?। इति।

२६. सूत्रों में श्रावकों ने जिनपूजा की कहा है इस बाबत :

२६ में प्रश्नोत्तर में जेठमल लिखता है कि "सूत्र में किसी श्रावक ने पूजा की नहीं कहा है"। उत्तर - जेठमल ने आंखें खोल के देखा होता तो दीख पड़ता कि सूत्रों में तो ठिकाने २ पूजा का और श्रीजिनप्रतिमा का अधिकार है। जिन में से कुछ अधिकारों की सुचि (फैरिस्त) दृष्टांत तरीके भव्य जीवों के उपकार निमित्त यहां लिखते हैं।

१. **श्रीआचारांगसूत्र** में सिद्धार्थ राजा को श्रीपार्श्वनाथ का संतानीय श्रावक कहा है। उन्हों ने जिनपूजा के वास्ते लाख रूपैये दिये तथा अनेक जिन प्रतिमा की पूजा की ऐसे कहा है। इस अधिकार में सूत्र के अंदर "**जायेअ**" ऐसा शब्द है जिस का अर्थ याग (यज्ञ) होता है और याग शब्द देवपूजावाची है "**यज-देवपूजायामिति वचनात्**" तथा उन को श्रावक होने से अन्य याग का संभव होवे ही नहीं इस वास्ते उन्हों ने जिनपूजा की है यही बात निःसंशय है[१]

२. **श्रीसूयगडांगसूत्र - निर्युक्ति -** में जिनप्रतिमा को देख कर आर्द्र कुमार प्रतिबोध हुआ और जब तक दीक्षा अंगीकार नहीं की तब तक उस की पूजा की ऐसा कथन है।

३. **श्रीसमवायांगसूत्र** में समवसरण के अधिकार वास्ते कल्पसूत्र की भलांवणा दी

१ कितनेक बेसमझ, वाचनकला से शून्य और शास्त्रकार के अभिप्राय से अज्ञ ढूंढिये इस ठिकाने कुतर्क करते हैं कि "आत्मारामजी ने लिखा है कि सिद्धार्थ राजा ने पूजा की यह कथन **आचारांगसूत्र में** है सो झूठ है, क्योंकि आचारांग में यह कथन नही है"। इस का उत्तर - जो आप झूठा होता है उस को सारा जगत् ही झूठा प्रतीत होता है, क्योंकि श्रीआत्मारामजी के पूर्वोक्त लेख में तुम्हारे कहे मुताबिक लेख ही नहीं है, उन के लेख में तो सिद्धार्थ राजा को श्रावक सिद्ध करने वास्ते **श्रीआचारांगसूत्र** का प्रमाण दिया है - जो कि उन के "श्री आचारांगसूत्र में सिद्धार्थ राजा को श्रीपार्श्वनाथ का संतानीय श्रावक कहा है" इस लेख से जाहिर होता है, और पूजा के वास्ते उन्हों ने लाख रूपैये दिये इत्यादि जो वर्णन है सो **श्रीदशाश्रुतस्कंध** के आठ में अध्ययन के अनुसार है क्योंकि उन्हों ने "**जायेअ**" यह पाठ लिखा है, सो **श्रीदशाश्रुतस्कंधसूत्र** के आठवें अध्ययनकल्पसूत्र में खुलासा है इस वास्ते तुम्हारा कहना झूठ है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, उस मुताबिक **श्रीबृहत्कल्पसूत्र** के भाष्य में समवसरण का अधिकार विस्तार से है। उस में लिखा है कि समवसरण में पूर्व सन्मुख भाव अरिहंत बिराजते हैं और तीन दिशा में उन के प्रतिबिंब अर्थात् स्थापना अरिहंत बिराजते हैं।

४. **श्रीठाणांगसूत्र** में स्थापना सत्य कही है।

५. **श्रीभगवतीसूत्र** में तुंगीया नगरी के श्रावकों ने जिनप्रतिमा पूजी उसका अधिकार है।

६. **श्रीज्ञातासूत्र** में द्रौपदी ने जिनप्रतिमा की सत्रहभेदी पूजा की उस का अधिकार है।

७. **श्रीउपासकदशांगसूत्र में** आनंदादि दश श्रावकोंने जिनप्रतिमा वांदी पूजी ऐसा अधिकार है।

८. **श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्र** में साधु जिनप्रतिमा की वैयावच्च करे ऐसे कहा है।

९. **श्रीउववाइसूत्र में** बहुत जिनमंदिरों का अधिकार है।

१०. इसी सूत्र में अंबड श्रावकने जिनप्रतिमा वांदी पूजी ऐसे कहा है।

११. **श्रीरायपसेणीसूत्र में** सूर्याभ देवता ने जिनप्रतिमा पूजी कहा है।

१२. इसी सूत्र में चित्रसारथी तथा प्रदेशीराजा दोनों श्रावकों ने जिनप्रतिमा पूजी ऐसे कहा है।

१३. **श्रीजीवाभिगमसूत्र में** विजयदेवता आदि देवताओं के जिनप्रतिमा को पूजने का अधिकार है।

१४. **श्रीजंबूद्वीपपन्नत्तीसूत्र में** यमक देवतादिकों ने पूजा की है।

१५. **श्रीदशवैकालिकसूत्र - निर्युक्ति -** में श्रीशय्यंभवसूरि के जिनप्रतिमा को देख कर प्रतिबोध होने का अधिकार है।

१६. **श्रीउत्तराध्ययनसूत्र - निर्युक्ति** - दशवें अध्ययन में श्रीगौतमस्वामी अष्टापद

तुमने श्रीआत्मारामजी का आशय समझा ही नहीं है, तो भी "**तुष्यंतु दुर्जनाः**" इस न्याय से यदि तुम को श्रीआचारांगका ही प्रमाण लेना है तो लीजिए, **श्रीआचारांगसूत्र** में भी श्रीमहावीरस्वामी के जन्मवर्णन में यह पाठ है "**णिव्वत्तदसाहंसि वोक्कंतंसि सुचिभूतंसि**" जरा हृदयचक्षु को खोल के इस पाठ का भावार्थ शोचोगे तो मालूम हो जावेगा कि सिद्धार्थ राजाने स्थितिपतिका में क्या २ काम करे ? क्योंकि इस ठिकाने तो शास्त्रकारने समुच्चय ही वर्णन किया है कि दशाहि का स्थितिपति का से निवृत्त होय पीछे नामस्थापन किया तो इस से सिद्ध हुआ, कि इस ठिकाने शास्त्रकारने स्थितिपतिका का सूचन किया और स्थितिपतिका का खुलासा वर्णन श्रीदशाश्रुतस्कंध के आठ में अध्ययन में है। इस से शास्त्रकार का यही आशय प्रकट होता है कि जैसे **श्रीदशाश्रुतस्कंध** में स्थितिपतिका का खुलासा वर्णन श्रीमहावीरस्वामी के जन्मवर्णन में है, वैसे **श्रीआचारांगसूत्र** में भी श्रीमहावीरस्वामी के जन्मवर्णन में जान लेना तो सिद्ध हुआ कि **श्रीदशाश्रुतस्कंधमें** जैसे सिद्धार्थ राजा की की पूजा का वर्णन है ऐसे ही **आचारांगसूत्र में** भी है। इस वास्ते श्रीआत्मारामजी का पूर्वोक्त लेख सत्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की यात्रा करने को गए ऐसे कहा है ।

१७. इसी सूत्र के २९ में अध्ययन में "थय थूइ मंगल" में थापना को वंदना कही है ।

१८. **श्रीनंदि सूत्र में** विशाला नगरी में श्रीमुनिसुव्रतस्वामी का महाप्रभाविक थूभ कहा है ।

१९. **श्रीअनुयोगद्धारसूत्र में** थापना माननी कही है ।

२०. **श्रीआवश्यकसूत्र में** भरत चक्रवर्त्तीने जिनमंदिर बनवाया उस का अधिकार है ।

२१. इसी सूत्र में वग्गुर श्रावकने श्रीमल्लिनाथजी का मंदिर बनवाया ।

२२. इसी सूत्र में कहा है कि फूलों से जिनपूजा करे तो संसारक्षय होगा ।

२३. इसी सूत्र में कहा है कि प्रभावती श्राविका (उदायन राजा की रानी) ने जिनमंदिर बनवाया तथा जिनप्रतिमा के आगे नाटक किया ।

२४. इसी सूत्र में कहा है कि श्रेणिक राजा एकसौ आठ (१०८) सोने के जव नित्य नये बनवा के उसका जिनप्रतिमा के आगे स्वस्तिक करता था ।

२५. इसी सूत्र में कहा है कि साधु कायोत्सर्ग में जिनप्रतिमा की पूजा की अनुमोदना करे ।

२६. इसी सूत्र में कहा है कि सर्व लोक में जो जिनप्रतिमा हैं उन की आराधना निमित्त साधु तथा श्रावक कायोत्सर्ग करे ।

२७. **श्रीव्यवहारसूत्र में** प्रथम उद्देशे जिनप्रतिमा के आगे आलोयणा करनी कही है ।

२८. **श्रीमहानिशीथसूत्र में** जिनमंदिर बनवावे तो श्रावक उत्कृष्टा बारहवें देवलोक पर्यंत जावे ऐसे कहा है ।

२९. **श्रीमहाकल्पसूत्र में** जिनमंदिर में साधु श्रावक वंदना करने को न जावे तो प्रायश्चित्त लिखा है ।

३०. **श्रीजीतकल्पसूत्र में** भी प्रायश्चित्त लिखा है ।

३१. **श्रीप्रथमानुयोग** में अनेक श्रावक श्राविकाओं ने जिनमंदिर बनवाए तथा पूजा की ऐसा अधिकार है ।

इत्यादि सैंकडो ठिकाने जिनप्रतिमा की पूजा करने का तथा जिनमंदिर बनवाने वगैरह का खुलासा अधिकार है । और सर्व सूत्र देख के सामान्य रूप से विचार करने से भी मालूम होता है कि चौथे आरे में जितने जिनमंदिर थे उतने आजकल नहीं हैं । क्योंकि सूत्रों में जहां जहां श्रावकों के अधिकार है वहां वहां "**ण्हायाकयबलिकम्मा**" अर्थात् स्नान करके देवपूजा की ऐसा प्रत्यक्ष पाठ है । इस से सर्व श्रावकों के घर में जिनमंदिर थे और वे निरंतर पूजा करते थे ऐसे सिद्ध होता है । तथा दशपूर्वधारी के श्रावक संप्रति राजा ने सवा लाख जिनमंदिर और सवाक्रोड जिनबिंब बनवाए हैं । जिन में से हजारों जिनमंदिर और जिनप्रतिमा अद्यापि पर्यंत विद्यमान हैं । रतलाम, नाडोल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि नगरों में तथा शत्रुंजय, गिरनारादि तीर्थों में बहुत ठिकाने संप्रति राजा के बनवाए जिनमंदिर दृष्टिगोचर होते हैं । और भी अनेक जिनमंदिर हजारों वर्षों के बने हुए दिखलाई देते हैं, तथा आबूजी ऊपर विमलचंद्र तथा वस्तुपाल - तेजपाल के बनवाए क्रोडों रूपैये की लागत के जिनमंदिर जिन की शोभा अवर्णनीय है यद्यपि विद्यमान हैं। तो भी मंदमति जेठमल ढूंढकने लिखा है कि "किसी श्रावक ने जिनप्रतिमा पूजी नहीं है"। तो इस से यही मालूम होता है कि उस के हृदयचक्षु तो नहीं थे परंतु द्रव्य का भी अभाव ही था ! क्योंकि इसी कारण से उस ने पूर्वोक्त सूत्रपाठ अपनी दृष्टि से देखे नहीं होंगे ।

।। इति ।।

२७. सावद्यकरणी बाबत :

सत्ताइसवें प्रश्नोत्तर में जेठमल लिखता है कि "सावद्यकरणी में जिनाज्ञा नहीं है" । यह लिखाण एकांत होने से जेठमल ने अज्ञानता के कारण किया हो ऐसे मालूम होता है। क्योंकि सावद्य निरवद्य की उस को खबर ही नहीं थी । ऐसे उस के इस प्रश्नोत्तर में लिखे २४ बोलों से सिद्ध होता है । जेठमल जिस २ कार्य में हिंसा होती हो उन सर्व कार्यों को सावद्यकरणी में गिनता है परंतु सो झूठ है । क्योंकि जिनपूजादि कुछ कार्यों में स्वरूप से तो हिंसा है परंतु जिनाज्ञानुसार होने से अनुबंधे दया ही है । परंतु अभव्य, जमालिमती और ढूंढिये आदि जो दया पालते हैं, सो स्वरूपे दया है परंतु जिनाज्ञा बाहिर होने से अनुबंधे तो हिंसा ही है । इस वास्ते कुछ धर्मकार्यो में स्वरूपे हिंसा और अनुबंधे दया है और उस का फल भी दया का ही होता है तथा ऐसे कार्य में जिनेश्वर भगवंतने आज्ञा भी दी है । जिन में से कितनेक बोल दृष्टांत तरीके लिखते हैं ।

१. **श्रीआचारांगसूत्र** के दूसरे श्रुतस्कंध के ईर्या अध्ययन में लिखा है कि साधु खाडे में पड़ जावे तो घांस वेलडी तथा वृक्ष को पकड कर बाहिर निकल आवे ।

२. इसी सूत्र में लिखा है कि साधु खांड शर्करा के बदल लूण ले आया हो तो वह खा जावे, अपने आप न खाया जावे तो सांभोगिक को बांट दे ।

३. इसी सूत्र में लिखा है कि मार्ग में नदी आवे तो साधु इस तरह उतरे ।

४. इसी सूत्र में कहा है कि साधु मृगपृच्छामें झूठ बोले ।

५. **श्रीसूयगडांगसूत्र** के नव में अध्ययन में कहा है कि मृगपृच्छा के बिना साधु झूठ न बोले, अर्थात् मृगपृच्छा में बोले ।

६. **श्रीठाणांगसूत्र** के पांचवें ठाणे में पांच कारणे साधु साध्वी को पकड लेवे ऐसे कहा है । उन में नदी में बहती साध्वी को साधु बाहिर निकाले ऐसे कहा है ।

७. **श्रीभगवतीसूत्र** में कहा है कि श्रावक साधुको असूझता और सचित चार प्रकार का आहार देवे तो अल्प पाप और बहुत निर्जरा करे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. **श्रीउववाइसूत्र में** कहा है कि साधु शिष्य की परीक्षा वास्ते दोष लगावे ।

९. **श्रीउत्तराध्ययनसूत्र में** कहा है कि साधु पडिलेहणा करे उस में अवश्य वायुकाय की हिंसा होती है ।

१०. **श्रीबृहत्कल्पसूत्र में** चरबी का लेप करना कहा है ।

११. इसी सूत्र में कारणे साध्वी को पकडना कहा है ।

इत्यादि कितने ही कार्य जिन को एकांत पक्षी होने से जेठमल ढूंढक सावद्य गिनता है परंतु इनमें भगवंत की आज्ञा है । इस वास्ते कर्म का बंधन नहीं है । **श्रीआचारांगसूत्र** के चौथे अध्ययन के दूसरे उद्देश में कहा है कि देखने में आश्रव का कारण है परंतु शुद्ध परिणाम से निर्जरा होती है, और देखने में संवर का कारण है परंतु अशुद्ध परिणाम से कर्म का बंधन होता है ।

तथा सम्यग्दृष्टि श्रावकों ने पुण्यप्राप्ति के निमित्त कितनेक कार्य किये हैं, जिन में स्वरूपे हिंसा है परंतु अनुबंधे दया है, और उन को फल भी दया का ही प्राप्त हुआ है । ऐसे अधिकारसूत्रों में बहुत हैं जिन में से कुछ के अधिकार लिखते हैं ।

१. **श्रीज्ञातासूत्र में** कहा है कि सुबुद्धि प्रधान ने राजा के समझाने वास्ते गंदी खाई का पानी शुद्ध किया ।

२. **श्रीमल्लिनाथजीने** ६ राजा के प्रतिबोध ने वास्ते मोहनघर कराया ।

३. उन्हों ने ही ६ राजाओं का अपने ऊपर का मोह हटाने वास्ते अपने स्वरूप जैसी पुतली में प्रतिदिन आहार के ग्रास गिरे जिससे उन में हजारों त्रस जीवों की उत्पत्ति और विनाश हुआ ।

४. **उववाइसूत्र में** कोणिक राजा ने भगवान् की भक्ति वास्ते बहुत आडंबर किया ।

५. कोणिक राजा ने रोज भगवंत की खबर मंगवाने वास्ते आदमियों की डाक बांधी ।

६. प्रदेशी राजा ने दानशाला मंडाई । जिस में कई प्रकार का आरंभ था । परंतु केशीकुमार ने उसका निषेध नहीं किया, किंतु कहा कि हे राजन् ! पूर्व मनोज्ञ हो के अब अमनोज्ञ नहीं होना ।

७. प्रदेशी राजा ने केशीगणधर को कहा कि हे स्वामिन् ! कल को मैं समग्र अपनी ऋद्धि और आडंबर के साथ आकर आपको वंदना करुंगा, और वैसे ही किया, परंतु केशीगणधर ने निषेध नहीं किया ।

८. चित्रसारथी ने प्रदेशी राजा को प्रतिबोध कराने वास्ते श्रीकेशीगणधर के पास ले जाने वास्ते रथघोडे दौडाये ।

९. सूर्याभ देवता ने जिनभक्ति के वास्ते भगवंत के समीप नाटक किया ।

१०. द्रौपदी ने जिनप्रतिमा की सत्रह भेदी पूजा की ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंदमति जेठमल ने इस प्रश्नोत्तर में जो जो बोल लिखे हैं उन में `अपनी इच्छा' ऐसा शब्द उन कार्यों को जिनाज्ञा विना के सिद्ध करने वास्ते लिखा है; परंतु उनमें से बहुत कृत्य तो पुन्यप्राप्ति के निमित्त ही किये हैं । जिनमें से कुछ कारण सहित नीचे लिखे जाते हैं ।

१. कोणिक राजा ने प्रभु की बधाई में नित्य प्रति साढे बारह हजार रूपैये दिये सो जिनभक्ति के वास्ते ।

२. अनेक राजाओं ने तथा श्रावकों ने दीक्षामहोत्सव किये सो जैनशासन की प्रभावना वास्ते ।

३. श्रीकृष्णमहाराजाने दीक्षा की दलाली वास्ते द्वारिका में पडह फेरया सो धर्म की वृद्धिवास्ते ।

४. इंद्र तथा देवतादि ने जिनजन्ममहोत्सव किया सो धर्मप्राप्ति के वास्ते ऐसा **श्रीजंबद्वीपपन्नत्तीसूत्र** का कथन है ।

५. देवता नंदीश्वर द्वीप में अट्ठाईमहोत्सव करते हैं सो धर्मप्राप्ति के वास्ते ।

६. जंघाचारण तथा विद्याचारण लब्धि फोरते हैं सो जिनप्रतिमा के वांदने वास्ते ।

७. शंख श्रावक ने सधर्मीवात्सल्य किया सो सम्यक्त्व की शुद्धि के वास्ते । इस मुताबिक अद्यापिपर्यंत सधर्मीवात्सल्य का रिवाज चलता है, बहुत पुण्यवंत श्रावक सधर्मी की भक्ति अनेक प्रकार से करते हैं । यदि जेठमल इस का अर्थात् सधर्मीवात्सल्य करने का निषेध करता है और लिखता है कि इस कार्य में उस की इच्छा है, जिनाज्ञा नहीं है तो ढूंढिये अपने सधर्मी को जिमाते हैं, संवत्सरी का पारणा कराते हैं, पूज्य की तिथि में पोसह करके अपने सधर्मी को जिमाते हैं । इन में जेठमल और ढूंढिये साधु पाप मानते होगे, क्योंकि इन कार्यों में हिंसा जरूर होती है । जब ऐसे कार्य में पाप मानते हैं तो ढूंढिये **तेरापंथी-भीखम** के भाई बन के यह कार्य किस वास्ते करते हैं ? क्या नरक में जाने वास्ते करते हैं ?

८. तेतली प्रधान को पोट्टील देवता ने समझाया सो धर्म के वास्ते ।

९. तीर्थंकर भगवंत ने वर्षीदान दिया सो पुण्यदान धर्म प्रकट करने वास्ते ।

१०. देवता जिनप्रतिमा तथा जिनदाढा पूजते हैं सो मोक्षफल वास्ते ।

११. उदायन राजा बडे आडंबर से भगवंत को वंदना करने वास्ते गया सो पुण्यप्राप्ति वास्ते ।

इत्यादि अनेक कार्य सम्यग्दृष्टियों ने किये हैं । जिन में महापुण्यप्राप्ति और तीर्थंकर की आज्ञा भी है । यदि जेठमल एकांत दया से ही धर्म मानता है तो **श्रीभगवतीसूत्र** के नव में शतक में कहा है कि जमालि ने शुद्ध चारित्र पाला है । एक मक्खी की पांख भी नहीं दुखाई है । परंतु प्रभु का एक ही वचन उत्थापने से उस को अहिंसा के फल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की प्राप्ति नहीं हुई । किंतु हिंसा के फल की प्राप्ति हुई । इस वास्ते यह समझना, कि जिनाज्ञा विना की दया तो स्वरूपे दया है, परंतु अनुबंधे तो हिंसा ही है, और इसी वास्ते जमालि की दया साफल्यता को प्राप्त नहीं हुई । तो अरे ढूंढियों ! उस सरीखी दया तुम से पलती नहीं है, मात्र दया दया मुख से पुकारते हो । परंतु दया क्या है सो नहीं जानते हो, और भगवंत के वचन तो अनेक ही लोपते हो । इस वास्ते तुम्हारा निस्तार कैसे होगा सो विचार लेना ?

।। इति ।।

२८. द्रव्यनिक्षेपा वंदनीय है इस बाबत :

अट्ठाइस में प्रश्नोत्तर में "द्रव्यनिक्षेपा वंदनीय नहीं है" ऐसे सिद्ध करने वास्ते जेठमल लिखता है कि "चौबीसत्थे में जो द्रव्य जिन को वंदना होती हो तो वह तो चारों गतियों में अविरती अपच्चक्खाणी हैं, उन को वंदना कैसे होवे ?"। उत्तर - श्रीऋषभदेव के समय में साधु चौबीसत्था करते थे । उस में द्रव्यतीर्थंकर तेइस को तीर्थंकर की भावावस्था का आरोप करके वंदना करते थे । परंतु चारों गति में जिस अवस्था में थे उस अवस्था को वंदना नहीं करते थे ।

जेठमल लिखता है कि "पहिले हो चूके तीर्थंकरों के समय में चौबीसत्था कहने वक्त जितने तीर्थंकर हो गये और जो विद्यमान थे उतने तीर्थंकरों की स्तुति वंदना करते थे"। जेठमल का यह लिखना मिथ्या है । क्योंकि चौबीसत्थे में वर्त्तमान चौबीसी के चौबीस तीर्थंकर के बदले कम तीर्थंकर को वंदना करे ऐसा कथन किसी भी जैनशास्त्र में नहीं है ।

जेठमल लिखता है, कि श्रीअनुयोगद्धारसूत्र में आवश्यक के ६ अध्ययन कहे हैं । उन में दूसरा अध्ययन उत्कीर्त्तना नामा है तो उत्कीर्त्तना नाम स्तुति वंदना करने का है सो किस का उत्कीर्तन करना ? इसके उत्तर में चौबीसत्था अर्थात् चौबीस तीर्थंकर का करना ऐसे समझना, परंतु जेठे अज्ञानी के लिखे मुताबिक चौबीस का मेल नहीं है ऐसे नहीं समझना, क्योंकि चौबीस न हो तो चौबीसत्था न कहा जावे ।

ऊपर लिखी बात में दृष्टांत तरीके जेठमल लिखता है कि "श्रीमहाविदेह में एक तीर्थंकर की स्तुति करे चौबीसत्था होता है" यह लिखना जेठमल का बिलकुल ही अकल बिना का है, क्योंकि इस मुताबिक किसी भी जैनसिद्धांत में नहीं कहा है । और महाविदेह में चौवीसत्था भी नहीं है । क्योंकि वहां तो जब साधु को दोष लगे तब पडिक्कमते हैं । इस से जेठमल का लेख स्वमतिकल्पना का है परंतु शास्त्रोक्त नहीं ऐसे सिद्ध होता है । इस बाबत बारहवें प्रश्नोत्तर में खुलासा लिख के द्रव्यनिक्षेपा वंदनीय सिद्ध किया है ।

।। इति ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. स्थापना निक्षेपा वंदनीय है इस बाबत :

२९ वे प्रश्नोत्तर में जेठमलने स्थापना निक्षेपा वंदनीय नहीं, ऐसे सिद्ध करने वास्ते कितनीक मिथ्या कुयुक्तियां लिखी हैं ।

आद्य में **श्रीदशवैकालिकसूत्र** की गाथा लिखी है परंतु उस गाथा से तो स्थापना निक्षेपा अच्छी तरह सिद्ध होता है, यत :-

संघट्टइत्ता काएणं अहवा उवहिणामवि ।
खमेह अवराहं मे वएज्ज न पुणोत्तिय ।।१८।।

अर्थ- काया से संघट्टा हो, तथा उपधि का संघट्टा हो तो शिष्य कहे-मेरा अपराध क्षमो और दूसरी बार संघट्टादि अपराध नहीं करूंगा ऐसे कहे ।

इस गाथा के अर्थ से प्रकट सिद्ध होता है कि गुरु के वस्त्रादि तथा पाटादिक के संघट्टे करने से पाप है । यहां यद्यपि पाटादिक अजीव है तो भी यह आचार्य के हैं । इस वास्ते इन की आशातना टालनी इससे स्थापना निक्षेपा सिद्ध होता है । इस वास्ते जेठमल की कल्पना मिथ्या है । क्योंकि जिनप्रतिमा जिनवर अर्थात् तीर्थंकर की कहाती है, और वस्त्रादि उपधि गुरु महाराज की कही जाती है । इस वास्ते इन दोनों की जो भक्ति करनी सो देवगुरु की ही भक्ति है, और इन की जो आशातना करनी सो देवगुरु की आशातना है । इस से स्थापना माननी तथा पूजनी सत्य सिद्ध होती है ।

जेठमल लिखता है कि "उपकरण प्रयोग परिणम्या द्रव्य है" सो महामिथ्या है । उपकरण का प्रयोग परिणम्या पुद्गल किसी भी जैनशास्त्र में नहीं कहा है, परंतु उस को तो मीसा पुद्गल कहा है । इस वास्ते मालूम होता है कि जेठमल को जैनशास्त्र की कुछ भी खबर नहीं थी । और जेठमल लिखता है कि "जिस पृथ्वी शिलापट्ट ऊपर बैठ के भगवंतने उपदेश किया है उसी शिलापट्ट ऊपर बैठ के गौतम सुधर्मास्वामी प्रमुख ने उपदेश किया है" उत्तर - ऐसा कथन किसी भी जैनसिद्धांत में नहीं है । इस वास्ते जेठमल ढूंढक महामृषावादी सिद्ध होता है ।

जेठमल गुरु के चरण बाबत कुयुक्ति लिखके अपना मत सिद्ध करना चाहता है, परंतु सो मिथ्या है । क्योंकि गुरु के चरण की रज भी पूजने योग्य है तो धरती ऊपर पडे गुरु के चरणों का तो क्या ही कहना ? कितनेक ढूंढिये अपने गुरु के चरणोंकी रज मस्तकों पर चढाते हैं, और जेठा तो उनके साथ भी नहीं मिलता है । तो इस से यही सिद्ध होता है कि यह कोई महादुर्भवी था ।

इस प्रश्नोत्तर के अंत में कितनेक अनुचित वचन लिख के जेठे ने गुरुमहाराज की आशातना की है , सो उस ने संसारसमुद्र में रुलने का एक अधिक साधन पैदा किया है । बारहवें प्रश्नोत्तर में इस बाबत विशेष खुलासा करके स्थापना निक्षेपा वंदनीय सिद्ध कीया है । इस वास्ते यहां अधिक नहीं लिखते हैं ।

।। इति ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. शासन के प्रत्यनीक को शिक्षा देनी इस बाबत :

तीसवें प्रश्नोत्तर में जेठमल ने लिखा है कि "धर्मअपराधी को मारने से लाभ है ऐसा जैनधर्मी कहते हैं"। जेठे का यह लेख मिथ्या है । क्योंकि जैनमत के किसी भी शास्त्र में ऐसे नहीं लिखा है कि धर्मअपराधी को मारने से लाभ है । परंतु जैनशास्त्र में ऐसे तो लिखा है कि जो दुष्ट पुरुष जिनशासन का उच्छेद करने वास्ते, जिनप्रतिमा तथा जिनमंदिर के खंडन करने वास्ते मुनिमहाराज के घात करने वास्ते तथा साध्वी के शीलभंग करने वास्ते उद्यत हो, उस अनुचित काम करने वाले को प्रथम तो साधु उपदेश देकर शांत करे, यदि वह पुरुष लोभी हो तो उस को श्रावकजन धन देकर हटावे, जब किसी तरह भी न माने तो जिस तरह उसका निवारण हो उसी तरह करे । जो कहा है **श्रीवीरजिनहस्तदीक्षित धर्मदास गणिकृत** ग्रंथ में-तथा हि-

साहूण चेइयाणय पडिणीयं तह अवण्णवायं च
जिण पवयणस्स अहियं सव्वत्थामेण वारेइ ।।२४१।।

और गुर्वादि के अपराधि का निवारण करना सो वैयावच्च है, सो **श्रीउत्तराध्ययनसूत्र** में श्रीहरिकेशी मुनि ने कहा है - तथाहि -

पुव्विं च इण्हिं च अणागयं च मणप्पदोसो न मे अत्थि कोई ।
जक्खा हु वेयावडियं करेंति तम्हा हु एए निहया कुमारा ।।३१।।

इस काव्य के तीसरे तथा चौथे पाद में हरिकेशीमुनि ने कहा है कि यक्ष मेरी वेयावच्च करता है, उस ने मेरी वेयावच्च के वास्ते कुमारों को हना है ।

इस बाबत जेठमल लिखता है कि "हरिकेशीमुनि छद्मस्थ चार भाषा का बोलने वाला था । उसका वचन प्रमाण नहीं" ऐसे वचन पुण्यहीन मिथ्यादृष्टि के विना अन्य कौन लिखे या बोले ? बडा आश्चर्य्य है कि सूत्रकार जिस की महिमा और गुणवर्णन करते हैं, जिन को पांच समिति और तीन गुप्ति सहित लिखते हैं, ऐसे महामुनि का वचन प्रमाण नहीं ऐसे जेठा लिखता है ! परंतु ऐसे लेख से जेठमल कुमति का वचन किसी भी मार्गानुसारी को मान्य करने योग्य नहीं है ऐसे सिद्ध होता है ।

जेठमल लिखता है कि "गुरु को बाधाकारी जू, लीख, मांगणु आदि बहुत सूक्ष्म जीव भी होते हैं तो उन का भी निराकरण करना चाहिये" उत्तर-बेअकल जेठे का यह लिखना मिथ्या है, क्योंकि वह जीव कुछ द्वेषबुद्धि से साधु को अशाता पैदा नहीं करते हैं, परंतु उनका जातिस्वभाव ही ऐसा है, और इस से गुरुमहाराज को कुछ विशेष अशाता होने का भी संभव नहीं है । इस वास्ते इन के निवारण की भी कुछ जरूरत नहीं है । परंतु पूर्वोक्त दुष्ट पुरुषों के निवारण की तो अवश्य जरूरत है ।

जेठमल सरीखे बेअकल रिखों के ऐसे लेख तथा उपदेश से यह तो निश्चय होता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि उनकी आर्या अर्थात् ढूंढिनी साध्वी का कोई शीलखंडन करे अथवा ढूंढिये साधुओं को कोई प्रहार करे यावत् मरणांतकष्ट देवे तो भी अकल के दुश्मन ढूंढिये श्रावक उस कार्य करने वाले को अपराधी न गिने, शिक्षा न करें, और उस का किसी प्रकार निवारण भी न करें। इस से ढूंढिये तेरापंथी भीखम के भाई हैं ऐसा जेठमल ही सिद्ध कर देता है क्योंकि उस की श्रद्धा उन जैसी ही है। यहां सत्य के खातर मालूम करना चाहते हैं कि कितनेक ढूंढियों की श्रद्धा पूर्वोक्त जेठे सदृश नहीं है, क्योंकि वे तो धर्म के प्रत्यनीक का निवारण करना चाहिये ऐसे समझते हैं। इस वास्ते जेठे की श्रद्धा समस्त जैनशास्त्रों से विपरीत है इतना ही नहीं बल्कि ढूंढियों से भी विपरीत है।

इस बाबत जेठे ने लिखा है "जो ऐसी भक्ति करने का जिनशासन में कहा हो तो दो साधुओं को जलाने वाला गोशाला जीता क्यों जावे ?" उत्तर - यह मूढ इतना भी नहीं समझता कि उस समय वीर भगवान प्रत्यक्ष विराजते थे, और उन्हों ने भावी भाव ऐसा ही देखा था। इस वास्ते ऐसी ऐसी कुतर्कें करना सो महा मिथ्यादृष्टि अनंत संसारी का काम है।

इस प्रश्नोत्तर के अंत में जेठेने **श्रीआचारांगसूत्र** का पाठ लिखा है जिस का भावार्थ यह है कि साधु को कोई उपसर्ग करे तो साधु उस का घात न चिंते। सो यह बात तो हम भी मंजूर करते हैं। क्योंकि पूर्वोक्त पाठ में कहे मुताबिक हरिकेशी मुनि ने अपने मन में ब्राह्मणों के पुत्र की थोडी भी घात चिंतवन नहीं की थी। और साधु को अपने वास्ते परिषह सहने का तो धर्म ही है, परंतु जो कोई शासन को उपद्रव करे तो साधु तथा श्रावक जिनाज्ञापूर्वक यथाशक्ति उस के निवारण करने में ही उद्युक्त हो

॥ इति ॥

३१. बीस विहरमान के नाम बाबत :

ढूंढियों के माने बत्तीस सूत्रों में बीस विरहमान के नाम किसी ठिकाने भी नहीं हैं। परंतु ढूंढिये मानते हैं सो किस शास्त्रानुसार ? इस प्रश्न के उत्तर में जेठमल ढूंढक लिखता है कि "तुम कहते हो वही बीस नाम हैं ऐसा निश्चय मालूम नहीं होता है, क्योंकि **श्रीविपाकसूत्र** में कहा है कि भद्रनंदी कुमार ने पूर्वभव में महाविदेह क्षेत्र में पुण्डरगिणी नगरी में जुगबाहुजिन को प्रतिलाभा, और तुम तो पुंडरगिणी नगरी में श्रीसीमंधरस्वामी कहते है सो कैसे मिलेगा ?" उत्तर-श्रीसीमंधरस्वामी पुष्कलावती विजय में पुंडरगिणी नगरी में जन्मे हैं सो सत्य है, परंतु जिस विजय में जुगयहु जिन विचरते हैं उस विजय में क्या पुंडरगिणी नामा नगरी नहीं होगी ? एक मान की बहुत नगरियां एक देश में होती हैं जैसे काठियावाड सरीखे छोटेसे प्रांत(सूबा)में भी एक नाम के बहुत शहर विद्यमान हैं तो वैसे देश में जुदी जुदी विजय में एक नाम की कई नगरियां हो तो इस में कुछ आश्चर्य नहीं है। इस वास्ते जेठमलजी की की कुयुक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

झूठी है, और जैनशास्त्रानुसार बीस विहरमान के नाम कहलाते हैं सो सच्चे हैं । यदि जेठा हाल में कहलाते बीस नाम सच्चे नहीं मानता है तो कौन से बीस नाम सच्चे हैं ? और वे क्यों नहीं लिखे ? बेचारा कहां से लिखे ? फक्त जिनप्रतिमा के द्वेष से ही सर्व शास्त्र उत्थापे उन में विरहमान की बात भी गई तो अब लिखे कहां से ? जब बोलने का कोई ठिकाना न रहा तो सच्चे नाम को खोटे ठहराने के वास्ते धुयें की मुट्ठियां भरी हैं । परंतु इस से उसके झूठे पंथ की कुछ सिद्धि नहीं हुई हैं, और होने की भी नहीं है ।

तथा ढूंढिये बत्तीस सूत्रों में जो बात नहीं है सो तो मानते ही नहीं हैं । तो यह बात भी उन को माननी न चाहिये । मतलब यह कि बीस विरहमान भी नहीं मानने चाहिये । परंतु उलटे कितनेक ढूंढिये बीस विरहमान की स्तुति करते हैं, युग्म (काव्य) बनाते हैं, परंतु किस के आधार से बनाते हैं इसके जवाब में उन के पास कुछ भी साधन नहीं है ।

अंत में जेठमल ने लिखा है कि "इस बात में हमारा कुछ भी पक्षपात नहीं है" यह लेख उस ने ऐसा लिखा है कि जब कोई हथियार हाथ में नहीं रहा, दोनों हाथ नीचे पड गये तब शरण आने वास्ते जी जी करता है परंतु यह उस ने मायाजाल का फंद रचा है ।

३२. चैत्यशब्द का अर्थ साधु तथा ज्ञान नहीं इस बाबत :

बत्तीसवें प्रश्नोत्तर की आदि में चैत्य शब्द का अर्थ साधु ठहराने वास्ते जेठमलने चौबीस बोल लिखे हैं सो सर्व झूठे हैं । क्योंकि चैत्य शब्द का अर्थ सूत्रों में किसी ठिकाने भी साधु नहीं कहा हैं । चौबीस ही बोलों में जेठे ने चैत्य शब्द का अर्थ "**देवयं चेइयं**" इस पाठ के अर्थ में साधु और अरिहंत ऐसा किया है, परंतु ये दोनों ही अर्थ खोटे हैं । किसी भी सूत्र की टीका में अथवा टब्बे में ऐसा अर्थ नहीं किया है । उस का अर्थ तो इष्टदेव जो अरिहंत उस की प्रतिमा की तरह "**पज्जुवासामि**" अर्थात् सेवा करुं ऐसा किया है । परंतु कितनेक ढूंढियों ने हडताल से मेट के नवीन कितनेक पुस्तकों में जो मन माना सो अर्थ लिख दिया है, इस वास्ते वह मानने योग्य नहीं है ।

किसी कोष में भी चैत्य शब्द का अर्थ साधु नहीं किया है और तीर्थंकर भी नहीं किया है । कोष में तो "**चैत्यं जिनौकस्तद्बिंबं चैत्यो जिनसभातरु**"[१] अर्थात् जिनमंदिर और जिनप्रतिमा को `**चैत्य**" कहा है और चौतरेबन्ध वृक्ष का नाम `**चैत्य**' कहा है । इन के उपरांत और किसी वस्तु का नाम चैत्य नहीं कहा है । तथा तेइसवें और चौबीस में बोल में आनंद तथा अंबड का अधिकार फिरा कर लिखा है । उस बाबत सोलहवें तथा सत्राहवें प्रश्न में हम लिख आए हैं । ढूंढिये चैत्य शब्द का अर्थ साधु कहते हैं परंतु सूत्र में तो किसी ठिकाने भी साधु को चैत्य कह कर नहीं बुलाया है । "**निग्गंथाण वा निग्गंथिण वा**" ऐसे कहा है, "**साहु वा साहुणी वा**" ऐसे कहा है, और "**भिक्खु**

१ अभिधान चिंतामणि - कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचायजी कृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा भिक्खुणी वा" ऐसे भी कहा है, परंतु "**चैत्यं वा चैत्यानि वा**" ऐसे तो एक ठिकाने भी नहीं लिखा है । तथा यदि चैत्य शब्द का अर्थ साधु हो तो सो चैत्य शब्द स्त्रीलिंग में तो बोला ही नहीं जाता है तो साध्वी को क्या कहना ?

तथा श्रीमहावीरस्वामी के चौदह हजार साधु सूत्र में कहे हैं परंतु चौदह हजार चैत्य नहीं कहे । श्रीऋषभदेवस्वामी के चौरासी हजार साधु कहे परंतु चौरासी हजार चैत्य नहीं कहे । केशीगणधर का पांच सौ साधु का परिवार कहा परंतु चैत्य का परिवार नहीं कहा । इसी तरह सूत्रों में अनेक ठिकाने आचार्य के साथ इतने साधु विचरते हैं ऐसे तो कहा है । परंतु किसी ठिकाने इतने चैत्य विचरते हैं ऐसे नहीं कहा है । फक्त ढूंढिये स्वमतिकल्पना से ही चैत्य शब्द का अर्थ साधु करते हैं परंतु सो झूठा है ।

और जेठे ने जिस जिस बोल में चैत्य शब्द का अर्थ साधु किया है सो अर्थ फक्त शब्द से यथार्थ अर्थ जानने वाले पुरुष देखेंगे तो मालूम हो जावेगा कि उसका किया अर्थ विभक्ति सहित वाक्ययोजना में किसी रीति से भी नहीं मिलता है । तथा जब सर्वत्र "**देवयं चेइयं**" का अर्थ साधु अथवा तीर्थंकर ठहराता है तो **श्रीभगवतीसूत्र** में दाढा के अधिकार में भगवंतने गौतमस्वामी को कहा कि जिन दाढा देवता को पूजने योग्य हैं यावत् "**देवयं चेइयं पज्जुवासामि**" ऐसा पाठ है उस ठिकाने ढूंढिये "**चेइयं**" शब्द का क्या अर्थ करेंगे; यदि `साधु' अर्थ करेंगे तो यह उपमा दाढा के साथ अघटित है और यदि `तीर्थंकर' ऐसा अर्थ करेंगे तो दाढा तीर्थंकर समान सेवा करने योग्य होगी । जो कि दाढा तीर्थंकर की होने से उन के समान सेवा के लायक है तथापि उस ठिकाने तो दाठा जिन प्रतिमा के समान सेवा करने योग्य कही हैं । इस वास्ते `चेइयं' शब्द का अर्थ पूर्वोक्त हमारे कथन मुताबिक सत्य है । क्योंकि पूर्वाचार्यों ने यही अर्थ किया है ।

२५ से २९ तक पांच बोलों में चैत्य शब्द का अर्थ ज्ञान ठहराने वास्ते जेठमल ने कुयुक्तियां की हैं । परंतु सो मिथ्या हैं, क्योंकि सूत्र में ज्ञान को चैत्य नहीं कहा है । **श्रीनंदिसूत्रादि** जिस जिस सूत्र में ज्ञान का अधिकार है वहां सर्वत्र ज्ञानार्थ वाचक "**नाण**" शब्द लिखा है । जैसे "**नाणं पंचविहं पण्णत्तं**" ऐसे कहा है परंतु "**चेइयं पंचविहं पण्णत्तं**" ऐसे नहीं कहा है । तथा सूत्रों में जहां जहां ज्ञानी मुनिमहाराजा का अधिकार है वहां वहां "**मइनाणी, सुअनाणी, ओहीनाणी, मणपज्जवणाणी, केवलनाणी**" ऐसे कहा है । परंतु एक ठिकाने भी "**मइचैत्यी, सुअचैत्यी, ओहीचैत्यी, मणपज्जवचैत्यी, केवलचैत्यी**" ऐसे नहीं कहा है ।

तथा जहां जहां भगवंत को तथा साधुओं को अवधिज्ञान, मनपर्य्यवज्ञान, परमावधिज्ञान, तथा केवलज्ञान उत्पन्न होने का अधिकार है, वहां वहां ज्ञान उत्पन्न हुआ ऐसे तो कहा है । परंतु अवधि चैत्य उत्पन्न हुआ, मनपर्यव चैत्य उत्पन्न हुआ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या केवल चैत्य उत्पन्न हुआ, इत्यादि किसी ठिकाने भी नहीं कहा है । और सम्यग्दृष्टि श्रावक प्रमुख को जातिस्मरणज्ञान तथा अवधिज्ञान उत्पन्न होने का अधिकार सूत्र में जहां जहां है वहां वहां भी अमुक ज्ञान उत्पन्न हुआ ऐसे तो कहा है । परंतु जातिस्मरण चैत्य पैदा हुआ, अवधि चैत्य पेदा हुआ ऐसे नहीं कहा है । इत्यादि अनेक प्रकार से यही सिद्ध होता है कि सूत्रों में किसी ठिकाने भी ज्ञान को चैत्य नहीं कहा है । इस वास्ते जेठे का कथन मिथ्या है । चैत्य शब्द का अर्थ ज्ञान ठहराने वास्ते जो बोल लिखे हैं उन को पुनः विस्तारपूर्वक लिखने से मालूम होता है कि २६ वें बोल में जंघाचारण मुनि के अधिकार में `**चेइयाइं वंदित्तए**' ऐसा शब्द है । उस का अर्थ जेठमल ने वीतराग को वंदना की ऐसा किया है सो खोटा है, वीतराग की प्रतिमा को जंघाचारणने वंदना की यह अर्थ सच्चा है । इस बाबत पंद्रहवें प्रश्नोत्तर में खुलासा लिखा गया है ।

२७ वें बोल में जेठमल ने चमरेंद्र के अलावे में "अरिहंते वा अरिहंत चेइयाणि वा" और "**अणगारे वा**" ऐसा पाठ है । ऐसे लिखा है इस पाठ से तो प्रत्यक्ष "**चेइयं**" शब्द का अर्थ 'प्रतिमा' सिद्ध होता है । क्योंकि इस पाठ में साधु भी जुदे कहे हैं, और अरिहंत भी जुदे कहे हैं, तथा `**चेइयं**' अर्थात् जिनप्रतिमा भी जुदी कही है, इस वास्ते इस अधिकार में अन्य कोई भी अर्थ नहीं हो सक्ता है । तथापि जेठे ने तीनों ही बोलों का अर्थ अकेले अरिहंत ही जानना ऐसा किया है सो उसकी मूर्खता की निशानी है । कोई सामान्य मनुष्य फक्त शब्दार्थ के जानने वाला भी कह सकता है कि इन तीनों बोलों का अर्थ अकेले अरिहंत ऐसा करनेवाला कोई मूर्खशिरोमणि ही होगा । जेठमलजी लिखते हैं कि "पूर्वोक्त पाठ में चैत्य शब्द से जिनप्रतिमा हो और उस का शरण लेकर चमरेंद्र सुधर्मा देवलोक तक जा सकता हो तो तीरछे लोकमें द्वीपसमुद्र में शाश्वती प्रतिमा थी । ऊर्ध्वलोक में मेरुपर्वत ऊपर तथा सुधर्मा विमान में सिद्धायतन में नजदीक शाश्वती प्रतिमा थी तो जब शक्रेंद्रने उस के (चमरेंद्र के) ऊपर वज्र छोडा तब वह जिनप्रतिमा के शरणे नहीं गया और महावीरस्वामी के शरणे क्यों आया ? "। इस का उत्तर - जेठमलने भद्रिक जीवों को फंसाने वास्ते यह प्रश्न जालरूप गूंथा है । परंतु इस का जवाब तो प्रत्यक्ष है कि जिसका शरण लेकर गया हो उसी की शरण पीछा आवे । चमरेंद्र श्रीमहावीर स्वामी का शरण लेकर गया था । इस वास्ते पीछा उन के शरण आया है । जेठमल के कथन का आशय ऐसा है कि "उस के आते हुए रास्ते में बहुत शाश्वती प्रतिमा और सिद्धायतन थे तो भी चमरेंद्र उन के शरण नहीं गया । इस वास्ते चैत्य शब्द का अर्थ जिनप्रतिमा नहीं और उस का शरण भी नहीं" । वाह रे मूर्खशिरोमणि ! रास्ते में जिनप्रतिमा थी, उन के शरण चमरेंद्र नहीं गया परंतु रास्ते में श्रीसीमंधर स्वामी तथा अन्य विहरमानजिन विचरते थे । उनके शरण भी चमरेंद्र नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया । तब तो जेठे के और अन्य ढूंढियों के कहे मुताबिक विरहमान तीर्थंकर भी उसको शरण करने योग्य नहीं होगे ! समझने की तो बात यह है कि अरिहंत की शरण लेकर गया हो तो अरिहंत के समीप पीछा आ जावे । अरिहंत की प्रतिमा की शरण लेकर गया हो तो अरिहंत की प्रतिमा के समीप आ जावे । और भावितात्मा अणगार की शरण लेकर गया हो तो उसके समीप आ जावे । इस वास्ते सिद्ध होता है कि जेठेने जिनप्रतिमा के निषेध करने वास्ते झूठे अर्थ करने का ही व्यापार चलाया है । तथा जेठे की अकल का नमूना देखो कि इस अधिकार में तो बहुत ठिकाने सिद्धायतन हैं । और उन में शाश्वती जिनप्रतिमा हैं, ऐसे कबूल करता है; और पूर्वोक्त नव में प्रश्नोत्तर में तो सिद्धायतन ही नहीं हैं ऐसे कहता है । अफसोस !

२८ वें बोल में "वन को भी चैत्य कहा है" ऐसे जेठमल लिखता है । उत्तर - जिस वन में यक्षादिक का मंदिर होता है, उसी वन को सूत्रों में चैत्य कहा है, अन्य वन को सूत्रों मे किसी ठिकाने भी चैत्य नहीं कहा है । इससे भी चैत्य शब्द का ज्ञान अर्थ नहीं होता है ।

२९ वें बोल में जेठमलजी लिखते हैं कि "यक्ष को भी चैत्य कहा है"। उत्तर - यह लेख भी मिथ्या है, क्योंकि सूत्र में किसी ठिकाने भी यक्ष को चैत्य नहीं कहा है । यदि कहा हो तो अपने मत की स्थापना करने की इच्छा वाले पुरुष को सूत्रपाठ लिख कर उस का स्थापन करना चाहिये । परंतु जेठमलजी ने सूत्रपाठ लिखे बिना जो मन में आया सो लिख दिया है ।

३० तथा ३१ वें बोल में दुर्मति जेठा लिखता है, कि "आरंभ के ठिकाने तो चैत्य शब्द का अर्थ प्रतिमा भी होता है" उत्तर - आहा ! कैसी द्वेषबुद्धि ! ! कि जिस जिस ठिकाने जिनप्रतिमा की भक्ति, वंदना तथा स्तुति वगैरह के अधिकार सूत्रों में प्रत्यक्ष हैं उस उस ठिकाने तो चैत्य शब्द का अर्थ प्रतिमा नहीं ऐसे कहता है , और आरंभ के स्थानमें चैत्य अर्थात् प्रतिमा ठहराता है । यह तो निःकेवल जिनप्रतिमा प्रति द्वेष दर्शाने वास्ते ही उसकी जबान ऊपर खर्ज (खुजली) हुई होगी ऐसे मालूम होता है । क्योंकि जिन तीन बातों में चैत्य शब्द का अर्थ प्रतिमा ठहराता है उन तीनों बातों का प्रत्युत्तर प्रथम विस्तार से लिखा गया है ।

३२ वें बोल में चैत्य शब्द का अर्थ प्रतिमा है ऐसे जेठमलने मंजूर किया है । सो इस बात में भी उसने कपट किया है । इस लिये ऐसी बातों में लिखान करके निकम्मा ग्रंथ बढाना अयोग्य जान कर कुछ भी नहीं लिखते हैं । पूर्वोक्त सर्व हकीकत ध्यान में लेकर निष्पक्षपाती होकर जो विचार करेगा उसको निश्चय हो जावेगा कि ढूंढिये चैत्य शब्द का अर्थ साधु और ज्ञान ठहराते हैं सो मिथ्या है ।

॥ इति ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. जिनप्रतिमा पूजने के फल सूत्रों में कहे हैं इस बाबत :

३३ वें प्रश्नोत्तर में जेठमल लिखता है कि "सूत्रों में दश सामाचारी, तप, संयम, वेयावच्च वगैरह धर्मकरणी के तो फल कहे हैं । परंतु जिनप्रतिमा को वंदन पूजन करने का फल सूत्रों में नहीं कहा है" उत्तर - जेठमल का यह लिखना बिलकुल असत्य है । सूत्रों में जिनप्रतिमा को वंदन पूजन करने का फल बहुत ठिकाने कहा है । तीर्थंकर भगवंत को वंदन पूजन करने से जिस फलकी प्राप्ति होती है उसी फलकी प्राप्ति जिन प्रतिमा के वंदन पूजनसे होती है । क्योंकि जिनप्रतिमा जिनवर तुल्य हैं, तथा प्रतिमा द्वारा तीर्थंकर भगवंत की ही पूजा होती है । इस तरह जिनप्रतिमा की भक्ति करने से फलप्राप्ति के दृष्टांत सूत्रों में बहुत हैं, जिन में से कितनेक यहाँ लिखते हैं :

१. श्रीजिनप्रतिमा की भक्ति से श्रीशांतिनाथजी के जीवने तीर्थंकर गोत्र बांधा, यह कथन प्रथमानुयोग में है ।

२. श्रीजिनप्रतिमा की पूजा करने से सम्यक्त्व शुद्ध होती है, यह कथन श्रीआचारांग की निर्युक्ति में है ।

३. "थय थूइय मंगल" अर्थात् स्थापना की स्तुति करने से जीव सुलभबोधी होता है । यह कथन श्रीउत्तराध्ययनसूत्र में है ।

४. जिनभक्ति करने से जीव तीर्थंकर गोत्र बांधता है । यह कथन श्रीज्ञातासूत्र में हैं । जिनप्रतिमा की जो पूजा है सो तीर्थंकर की ही है, और इसी से बीस स्थानक में से प्रथम स्थान की आराधना होती है ।

५. तीर्थंकर के नाम गोत्र के सुनने का महाफल है ऐसे श्रीभगवतीसूत्र में कहा है, और प्रतिमा में तो नाम और स्थापना दोनों हैं । इस वास्ते उस के दर्शन से तथा पूजा से अत्यंत फल है ।

६. जिनप्रतिमा की पूजा से संसार का क्षय होता है, ऐसे श्रीआवश्यकसूत्र में कहा है ।

७. सर्व लोक में जो अरिहंत की प्रतिमा हैं उन का कायोत्सर्ग बोधिबीज के लाभ वास्ते साधु तथा श्रावक करे, ऐसे श्रीआवश्यकसूत्र में कहा है ।

८. जिनप्रतिमा के पूजने से मोक्षफल की प्राप्ति होती है, ऐसे श्रीरायपसेणीसूत्र में कहा है ।

९. जिनमंदिर बनवाने वाला बारहवें देवलोक तक जा सकता है ऐसे श्रीमहानिशीथसूत्र में कहा है ।

१०. श्रेणिक राजा ने जिनप्रतिमा के ध्यान से तीर्थंकरगोत्र बांधा है; यह कथन श्रीयोगशास्त्र में है ।

११. श्रीगुणवर्मा महाराजा के सत्रह पुत्रों ने सत्रह भेद में से एक एक प्रकार से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनपूजा की है, और उस से उसी भव में मोक्ष गये हैं । यह अधिकार श्रीसत्रह भेदी पूजा के चरित्रों में है, और सत्रह भेदी पूजा **श्रीरायपसेणीसूत्र** में कही है ।

इत्यादि अनेक ठिकाने जिनप्रतिमा पूजने का महाफल कहा है । इस वास्ते जेठे की लिखी सर्व बातें स्वमतिकल्पना की हैं ।

जेठे ने द्रौपदी की जिनप्रतिमा की पूजा बाबत यहां कितनीक कुयुक्तियां लिखी है, परंतु उन सर्व का प्रत्युत्तर प्रथम (१२)वें प्रश्नोत्तर में खुलासा लिख आये हैं ।

जेठा लिखता है कि पानी, फल, फूल, धूप, दीप वगैरह के भगवंत भोगी नहीं हैं । जेठे के सदृश श्रद्धा वाले ढूंढियों को हम पूछते हैं कि तुम भगवंत को वंदना नमस्कार करते हो तो क्या प्रभु वंदना नमस्कार भोगी हैं ? क्या प्रभु ऐसे कहते हैं कि मुझे वंदना नमस्कार करो ? जैसे भगवंत वंदना नमस्कार के भोगी नहीं हैं और आप कहते भी नहीं हैं कि तुम मुझे वंदना नमस्कार करो । वैसे ही पानी, फल, फूल, धूप, दीप बगैरह के प्रभु भोगी नहीं हैं, आप कहते नहीं हैं कि मेरी पूजा करो, परंतु उस कार्य में तो करने वाले की भक्ति है, महालाभ का कारण है, सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है । और उस से बहुत जीव भवसमुद्र से पार हो गए हैं, ऐसे शास्त्रों में कहा है । इस लिये इस में जिनेश्वर की आज्ञा भी है ।

॥ इति ॥

३४. महिया शब्द का अर्थ :

श्रीलोगस्स में "**कित्तिय वंदिय महिया**" ऐसा पाठ **श्रीआवश्यकसूत्र** का है, इन में प्रथम के दो शब्दों का अर्थ "**कीर्त्तिताः** - कीर्त्तना की और **वंदिताः** - वंदना करी" ऐसा है अर्थात् यह दोनों शब्द भावपूजावाची हैं, और तीसरे शब्द का अर्थ - `**महिताः पुष्पादिभिः**'-पुष्पादिक से पूजा की है, अर्थात् **महिया** शब्द द्रव्यपूजावाची है । टीकाकारों ने तथा प्रथम टब्बा बनाने वालों ने भी ऐसा ही अर्थ लिखा है । परंतु कितनीक प्रतियों में ढूंढियों ने सच्चा अर्थ फिरा कर मनःकल्पित अर्थ लिख दिया है । उस मुताबिक जेठमल भी इस प्रश्न में `**महिया**' शब्द का अर्थ "भावपूजा" ठहराता है सो मिथ्या है ।

जेठमल फूलों से श्रावक पूजा करते हैं उस में हिंसा ठहराता है सो असत्य है । क्योंकि पुष्पपूजा से तो श्रावकों ने उन पुष्पों की दया पाली है, विचारो कि माली फूलों की चंगेर लेकर बेचने को बैठा है । इतने में कोई श्रावक आ निकले और विचारे कि पुष्पों को वेश्या ले जावेगी तो अपनी शय्या में बिछा के उस पर शयन करेगी, और उस में कितनीक कदर्थना भी होगी । कोई व्यसनी ले जावेगा तो फूल के गुच्छे गजरे बना कर सूंघेगा, हार बना कर गले में डालेगा, या उन का मर्दन करेगा, कोई धनी गृहस्थी ले जावेगा तो वह भी उन का यथेच्छभोग करेगा, और स्त्रियों के शिर में गूंथे जावेंगे । जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्तर के व्यापारी ले जावेंगे तो चुल्हेपर चढा के उनका अत्तर निकालेंगे । तेलके व्यापारी ले जावेगे तो फूलेल वगैरह बनाने में उन की बहुत विटंबना करेंगे, इत्यादि अनेक विटंबना का संभव होने से प्राप्त होने वाली विटंबना के दूर करने वास्ते और अरिहंत की भक्तिरूप शुद्ध भावना निमित वे पुष्प श्रावक खरीद करके जिनप्रतिमाको चढावे तो उस से अरिहंतदेव की भक्ति होती है, और फूलों की भी दया पलती है; हिंसा क्या हुई ?

जेठमल लिखता है कि "गणधरदेव सावद्य करणी में आज्ञा न देवें" उत्तर - सावद्यकरणी किस को कहना ? और निरवद्यकरणी किस को कहना ? इसका जेठे को और अन्य ढूंढियों को ज्ञान हो ऐसा मालूम नहीं होता है । जिन पूजादि करणी को वे सावद्य गिनते हैं । परंतु यह उन की मूर्खता है, क्योंकि मुनियों को आहार, विहार, निहारादिक क्रिया में और श्रावकों को जिनपूजा साधर्मिवात्सल्य प्रमुख कितनीक धर्मकरणियों में तीर्थंकरदेव ने भी आज्ञा दी है, और जिस में आज्ञा हो सो करणी सावद्य नहीं कहलाती है । इस बाबत २७ वें प्रश्नोत्तर में खुलासा लिखा गया है । तथा गणधरमहाराजाओं ने भी उपदेश में सर्व साधु श्रावकों को अपना अपना धर्म करने की आज्ञा दी है । ढूंढियों के कहे मुताबिक गणधरदेव ऐसी करणी में आज्ञा न देते हो तो साधु को नदी उतरने की आज्ञा क्यों देते ? बरसते बरसाद में लघुनीति बडीनीति परिठवने की आज्ञा क्यों देते ? साध्वी नदी में बह जाती हो तो उस को निकाल लेने की साधु को आज्ञा क्यों देते ? इसी तरह कितनी ही आज्ञा दी हैं; इस वास्ते यह समझना कि जिस जिस कार्य में उन्हों ने आज्ञा दी हैं, हिंसा जान कर नहीं दी हैं । इस वास्ते इस बाबत जेठे मूढ़मति का लेख बिलकुल मिथ्या सिद्ध होता है ।

सामायिक में साधु तथा श्रावक पूर्वोक्त महिया शब्द से पुष्पादिक द्रव्यपूजा की अनुमोदना करते हैं । साधु को द्रव्यपूजा करने का निषेध है, परंतु उपदेश द्वारा द्रव्यपूजा करवाने का और उसकी अनुमोदना करने का त्याग नहीं है, ऐसा भाष्यकार ने कहा है ।

जेठमल पांच अभिगम बाबत लिखता है । परंतु पांच अभिगम में जो सचित्तवस्तु का त्याग करना हे सो अपने शरीर के भोग की वस्तु का है । प्रभुपूजा के निमित्त पुष्पादि द्रव्य ले जाने का त्याग नहीं । यदि सर्व सचित्त वस्तु का त्याग करके समवसरण में जाना कहोगे तो समवसरण में जानुप्रमाण सचित्त फूलों की वर्षा होती है सो क्यों कर ? इस बाबत सूर्याभ के अधिकार में खुलासा लिखा गया है ।

॥ इति ॥

३५. छीकाया [षड्काय] के आरंभ बाबत :

पैंतीसवें प्रश्नोत्तर में छीकाया के आरंभ निषेधने वास्ते जेठमल ने **श्रीआचारांगसूत्र** का पाठ लिखा है-यतः-

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया इमस्स चेव जीवियस्स १ परिवंदण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२ माणण ३ पूयणाए ४ जाइमरणमोयणाए ५ दुक्खपडिघाय हेउ ६ तं से अहियाए त से अबोहिए एस खलु गंथे १ एस खलु मोहे २ एस खलु मारे ३ एस खलु निरए ४ ।

अर्थ - कर्मबंधन के कारण में निश्चय भगवंतने ज्ञानबुद्धि से हिंसा यह कर्मबंध है, और दया यह निर्जरा है, ऐसी प्रज्ञा कही । जीवितव्य के वास्ते १ प्रशंसा के वास्ते २ मान के वास्ते ३ पूजाश्लाघा के वास्ते ४ जनममरण से छूटने वास्ते ५ दुःख दूर करने वास्ते ६ इन पूर्वोक्त ६ कारणों से जीव हिंसा करते हैं । उस का फल उस पुरुष को अहित के वास्ते और मिथ्यात्व के वास्ते है । तथा पूर्वोक्त ६ कारणों से जो हिंसा करे उस को निश्चय कर्मबंध का कारण है १ यह निश्चय अज्ञानता का कारण है, २, यह निश्चय अनंतमरण बढाने वाला है, ३, यह निश्चय नरक का कारण है, ४ । इस पाठ के लेख से तो जितने ढूंढिये साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका हैं वे सर्व अहित, मिथ्यात्व, कर्मगांठ, मोह और अनंत मरण को प्राप्त होंगे और नरकमें भी जावेंगे । क्योंकि ढूंढक साधु साध्वी विहार में नदी उतरते हैं । उस में छीकाया की हिंसा धर्म के वास्ते करते हैं, पडिलेहण में असंख्य वायुकाय के जीव हनते हैं । तथा प्रतिक्रमणादि अनुष्ठानो में वायुकायादि जीवों की हिंसा धर्म के वास्ते अर्थात् - पूर्वोक्त पांचवें कारण में कहे मुताबिक जन्ममरण से छूटने वास्ते करते हैं । इस लिये नरकादि विटंबना को पावेंगे ।

और ढूंढक श्रावक श्राविका आजीविका के वास्ते छीकाया की हिंसा करते हैं । अपनी प्रशंसा के वास्ते [illegible] कार्यों में हिंसा करते हैं । अपने मान के वास्ते पुत्र-पुत्री के विवाहादि कार्यों में छीकाया की हिंसा करते हैं । गुरु के दर्शन वास्ते जाते हुए, सामायिक के वास्ते जाते हुए, पडिलेहण पडिक्कमणा करते हुए, थानक बनवाते हुए, दीक्षामहोत्सव करते हुए, छीकाया की हिंसा करते हैं । तथा कोई ढूंढक साधु साध्वी मर जावे तो विमान बनवाते हैं, दीवे जलाते हैं, अन्न उडाते हैं, बाजे बजवाते हैं, और अंत में लकडियों से चिता बना के उस में ढूंढक ढूंढकनी को अग्निदाह करते हैं । जिस में भी छीकाया की हिंसा करते हैं; इत्यादि धर्म के काम करके जन्ममरण से छूटना चाहते हैं; तथा शारीरिक और मानसिक दुःख दूर करने वास्ते भी छीकाया की हिंसा करते हैं । इस वास्ते ढूंढक श्रावक श्राविका जेठ के [illegible] मुताबिक पूर्वोक्त कामों के करने से नरक में जा[illegible] । ऐसा सिद्ध होता है । जेठ का यह सिद्धांत ढूंढियों के वास्ते [illegible] है, क्योंकि [illegible] सरीखे देवगुरु और शास्त्रों के निंदक, म्लेच्छ सरीखे पंथ के मानने वालों को [illegible] ऐसी ही गति होने का संभव है । यह प्रश्नोत्तर लिख के तो जेठमल्ल [illegible]कने ढूंढियों [illegible] जड उखाडी [illegible] और सर्व ढूंढक साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओं [illegible] है ! ! !

तत्त्वानुबोधी और सत्यार्थ के इच्छुक भव्य जीवों के वास्ते मालूम करते हैं कि पूर्वोक्त **श्रीआचारांगसूत्र** का पाठ मिथ्यात्वी की अपेक्षा है ऐसे टीकाकार और महापंडित पूर्वाचार्य कह गये हैं । इस वास्ते इस पाठ में कहे फल के भागी सम्यग्दृष्टि जीव नहीं. तो तेतीसवें प्रश्नोत्तर में लिखे जिनप्रतिमा की पूजादि शुभ कार्य के फल के भागी हैं । और जिनप्रतिमा की पूजादि का फल श्रीतीर्थंकर भगवंत ने यावत् मोक्ष कहा है ।

इस प्रश्न के अंत में जेठा लिखता है कि "मंदिर में वृक्ष लगा हो तो साधु आप काट डाले, ऐसे जैनधर्मी कहते हैं ।" उत्तर - यह लेख जेठमल की मूढ़ता का सूचक है, क्योंकि यह बात किस शास्त्र में कही है ? किस ने कही है ? किस तरह कही है ? उस का कारण क्या दर्शाया है ? उस कथन में क्या अपेक्षा है ? इत्यादि कुछ भी जेठ ने लिखा नहीं है । इस तरह सूत्र के या ग्रंथ के प्रमाण यिना लिखना सो उचित नहीं है । क्योंकि सूत्रादि के नाम लिखने से उस बात का ठीक खुलासा मिल सकता है, अन्यथा नहीं ।

॥ इति ॥

३६. जीवदया के निमित्त साधु के वचन बाबत :

३६. वें प्रश्नोत्तर में जेठमल ने **श्रीआचारांगसूत्र का** पाठ और अर्थ फिरा कर खोटा लिख कर प्रत्यक्ष उत्सूत्र की प्ररूपणा की है । इस वास्ते वह सूत्रपाठ यथार्थ अर्थ सहित तथा पूर्ण हकीकत सहित लिखते हैं ।

श्रीआचारांगसूत्र के दूसरे श्रुतस्कंध में ऐसे कहा है कि साधु ग्रामानुग्राम विहार करता जाता है । रास्ते में साधु के आगे होकर मृगां की डार निकल गई हो, और पीछे से उन हिरणों के पीछे वधक (अहेरी) आ जावे, और वह साधु को पूछे कि हे साधो ! तूने यहां से जाते हुए मृग देखे हैं ? तब साधु जो कहे सो पाठ यह है - **"जाणं वा नो जाणं वदेज्जा"** - अर्थ-साधु जाणता होवे तो भी कह देवे कि मैं नहीं जानता हूं, अर्थात् मैंने नहीं देखे हैं तथा **श्रीसूयगडांगसूत्र** के आठवें अध्ययन में कहा है कि - **"सादियं न मुसं बूया एस धम्मो । वुसिमओ"** अर्थ - मृग पृच्छादि बिना मृषा न बोले, यह धर्म संयमवंत का है, तथा श्रीभगवतीसूत्र के आठवें शतक के पहिले उद्देश में लिखा है कि- **"मणसच्च जोग परिणया वयमोस जोग परिणया"**- अर्थ - मृग पृच्छादिक में मन में तो सत्य है, और वचन में मृषा है । इन तीनों पाठों का अर्थ हड़ताल से मिटा के ढूंढकों ने मनःकल्पित और का और ही लिख छोडा है । इस वास्ते ढूंढिये महामिथ्या दृष्टि अनंत संसारी हैं । तथा जेठमल ढूंढक ने जो जो सूत्रपाठ मृषाबाद बोलने के निषेध वास्ते लिखे हैं, उन सर्व में उत्सर्ग मार्ग में मृषा बोलने का निषेध किया है । परंतु अपवाद में नहीं, अपवाद में तो मृषा बोलने की आज्ञा भी है, सो पाठ ऊपर लिख आए हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जेठा मूढ़मति लिखता है कि "पांचों ही आश्रव का फल सरीखा है"। तब तो जेठा प्रमुख सर्व ढूंढक जैसे कारण से नदि उतरते हैं, मेघ वर्षते में लघुनीति परिठवते हैं, और स्थंडिल जाते हैं, प्रतिलेखना प्रतिक्रमण करते वायुकाय की हिंसा करते हैं, ऐसे ही कारण से मैथुन भी सेवते होंगे, परिग्रह भी रखते होंगे, मूली गाजर भी खा लेते होंगे, तथा जैसी ढूंढकों की श्रद्धा है, ऐसी ही इन के श्रावकों की भी होगी, तब तो उन के श्रावक ढूंढिये भी जैसा पाप अपनी स्त्री से मैथुन सेवने से मानते होगे, वैसा ही पाप अपनी माता, बहिन, बेटी से मैथुन सेवने से मानते होगे ? "**स्त्रीत्वाविशेषात्** " स्त्रीत्व में विशेष न होने से, मूर्ख जेठे का "पांचों ही आश्रव का फल सरीखा है" यह लिखना अज्ञानता का और एकांत पक्ष का है, क्योंकि वह जिनमार्ग की स्याद्वादशैली को समझा ही नहीं है ।

जेठा लिखता है, कि "तीर्थंकर भी झूठ बोलते हैं ऐसा जैनधर्मी कहते हैं"। उत्तर - यह लिखना बिलकुल असत्य है, क्योंकि तीर्थंकर असत्य बोले ऐसा कोई भी जैनधर्मी नहीं कहता है । तीर्थंकर कभी भी असत्य न बोले ऐसा निश्चय है । तो भी इस तरह जेठा तीर्थंकर भगवंत के वास्ते भी कलंकित वचन लिखता है तो इस से यही निश्चय होता है कि वह महामिथ्यादृष्टि था ।

श्रीपन्नवणासूत्र में ग्यारहवें पदे-सत्य, असत्य, सत्यामृषा और असत्यामृषा ये चारों भाषा उपयोगयुक्त बोलने वाले को आराधक कहा है । इस बाबत जेठा लिखता है कि "शासन का उड्डाह होता हो, चौथा आश्रव सेव्या हो तो झूठ बोले ऐसे जैनधर्मी कहते हैं"। उत्तर - यह लेख असत्य है, क्योंकि शासन का उड्डह होता हो तब तो मुनि महाराजा भी असत्य बोले, ऐसा **पन्नवणा सूत्र** के पूर्वोक्त पाठ की टीका में खुलासा कहा है, परंतु `चौथा आश्रव सेव्या हो तो झूठ बोले' इस कथनरूप खोटा कलंक जेठा निन्हव जैनधर्मियों के सिर पर चढाता है सो असत्य है, क्योंकि इस तरह हम नहीं कहते हैं । परंतु कदापि जेठे को ऐसा प्रसंग आया हो और उस से ऐसा लिखा गया हो तो वह जाने और उसके कर्म !

इस प्रश्नोत्तर के अंत में जेठा लिखता है कि "सम्यग्दृष्टि को चार भाषा बोलने की भगवंत की आज्ञा नहीं है" और वह आप ही समकितसार (शल्य) के पृष्ठ १६५ की तीसरी पंक्ति में "सम्यग्दृष्टि चार भाषा बोलने वाला आराधक है ऐसा **पन्नवणाजी** के ग्यारह में पद में कहा है" ऐसे लिखता है । इस तरह एक दूसरे से विरुद्ध वचन जेठे ने वारंवार लिखे हैं । इसलिये मालूम होता है कि जेठे ने नशे में ऐसे परस्पर विरोधी वचन लिखे हैं ।

श्रीपन्नवणाजी का पूर्वोक्त सूत्रपाठ साधु आश्री है, ऐसे टीकाकारों ने कहा है, जब साधु को उपयोगयुक्त चार भाषा बोलने वाला आराधक कहा, तब सम्यग्दृष्टि श्रावक उसी तरह चार भाषा बोलने वाले आराधक हो उस में क्या आश्चर्य है ? इस वास्ते जेठे की कल्पना मिथ्या है ।

।। इति ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. आज्ञा यह धर्म है इस बाबत :

सैंतीसवें प्रश्नोत्तर के प्रारंभ में ही जेठेने लिखा है कि "आज्ञा यह धर्म, दया यह नहीं ऐसे कहते हैं" यह मिथ्या है, क्योंकि दया यह धर्म नहीं ऐसा कोई भी जैनधर्मी नहीं कहता है, परंतु जिनाज्ञायुक्त जो दया है उसमें हीं धर्म है, ऐसा शास्त्रकार लिखते हैं ।

जेठा लिखता है कि "दया में ही धर्म है, और भगवंत की आज्ञा भी दया में ही है, हिंसा में नहीं" । उत्तर - यदि एकांत दया ही में धर्म है तो कितनेक अभव्यजीव अनंतीवार तीनकरण तीनयोग से दया पाल के इक्कीस में देवलोक तक उत्पन्न हुए परंतु मिथ्या दृष्टि क्यों रहे ? और जमालि ने शुद्ध रीति दया पाला तो भी निन्हव क्यों कहाया ? और संसार में पर्यटन क्यों किया ? इस वास्ते ढूंढियो ! समझो कि अभव्य तथा निन्हवों ने दया तो पूरी पाली परंतु भगवंत की आज्ञा नहीं आराधी । इस से उनकी अनंतसंसार भटकने की गति हुई । इस वास्ते आज्ञा ही में धर्म है ऐसे समझना ।

१. यदि भगवंत की आज्ञा दया ही में है तो **श्रीआचारांगसूत्र** के द्वितीय श्रुतस्कंध के ईर्याध्ययन में लिखा है कि साधु ग्रामानुग्राम विहार करता रास्ते में नदी आ जावे तब एक पग जल में और एक पग थल में करता हुआ उतरे सो पाठ यह है:

"भिक्खु गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से नई आगच्छेज्ज एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा एवएहं संतरइ"।।

यहां भगवंत ने हिंसा करने की आज्ञा क्यों दी ?

२. **श्रीठाणांगसूत्र** में पांचवें ठाणे में कहा है । यत -

"णिग्गंथे णिग्गंथिं सेयंसि वा पंकंसि वा पणगंसि वा उदगंसि वा उक्कस्समाणिं वा उवुज्जमाणिं वा गिण्हमाणे अवलंबमाणे णातिक्कमति।" ।।

अर्थ - काठा चीकड़, पतला चीकड, पंचवरणी फूलन और पानी इन में साध्वी खूंच जावे, अथवा पानी में बही जाती हो, उस को साधु काढ लेवे तो भगवंत की आज्ञा का अतिक्रम नहीं है ।

इस पाठ में भगवंतने हिंसा की आज्ञा क्यों दी ?

३. ढूंढिये भी धर्मानुष्ठान की क्रिया करते हैं, मेघ वर्षते में स्थंडिल जाते हैं, शिष्यों के केशों का लोच करते हैं, आहारविहार निहारादिक कार्य करते हैं, इस सर्व कार्यों में जीव विराधना होती है, और इन सर्व कार्यों में भगवंतने आज्ञा दी है । परंतु जेठा तथा अन्य ढूंढियों को आज्ञा, अनाज्ञा, दया, हिंसा, धर्म, अधर्म की कुछ भी खबर नहीं है; फक्त मुख से दया दया पुकारना जानते हैं । इस वास्ते हम पूछते हैं कि पूर्वोक्त कार्य जिन में हिंसा होने का संभव है ढूंढिये क्यों करते हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. धर्मरुचि अणगार ने जिनाज्ञा में धर्म जान के और निरवद्य स्थंडिल का अभाव देखके कड़वे तूंबे का आहार किया है । इस बाबत जेठे ने जो लिखा है सो मिथ्या है । धर्मरुचि अणगार ने तो उस कार्य के करने से तीर्थंकर भगवंत की तथा गुरुमहाराज की आज्ञा आराधी है, और इस से ही सर्वार्थसिद्ध विमान में गया है ।

५. **श्रीआचारांगसूत्र** के पांचवें अध्ययन में कहा है । यत -

अणाणाए एगे सोवट्ठाणे आणाए एगे निरूवट्ठाणे एवं ते मा होउ ।।

अर्थ - जिनाज्ञा से बाहिर उद्यम, और जिनाज्ञा में आलस, यह दोनों ही कर्मबंध के कारण हैं, हे शिष्य ! यह दोनों ही तुझ को न होवें । इस पाठ से जो मूढ़मति जिनाज्ञा से बाहिर धर्म मानते हैं, वह महामिथ्या दृष्टि हैं, ऐसे सिद्ध होता है ।

६. जेठा लिखता है कि "साधु नदी उतरते हैं सो तो अशक्य परिहार है" यह लिखना उस का स्वमतिकल्पना का है, क्योंकि सूत्रकार ने तो किसी ठिकाने भी अशक्य परिहार नहीं कहा है; नदी उतरनी सो तो विधिमार्ग है, इस वास्ते जेठे का लिखना स्वयमेव मिथ्या सिद्ध होता है ।

७. जेठा लिखता है कि "साधु नदी न उतरे तो पश्चात्ताप नहीं करते हैं, और जैनधर्मी श्रावक तो जिनपूजा न हो तो पश्चात्ताप करते है" उत्तर-जैसे किसी साधु को रोगादि कारण से एक क्षेत्र में ज्यादह दिन रहना पड़ता है तो उस के दिल में मुझ से विहार नहीं हो सका, जुदे जुदे क्षेत्रों में विचर के भव्यजीवों को उपदेश नहीं दिया गया, ऐसा पश्चात्ताप होता है; परंतु विहार करते हिंसा होती है सो न हुई उसका कुछ पश्चात्ताप नहीं होता है । वैसे ही श्रावकों को भी जिनभक्ति न हो तो पश्चात्ताप होता है, परंतु स्नानादि न होने का पश्चात्ताप नहीं होता है, इस वास्ते जेठे की कुयुक्ति मिथ्या है ।

।। इति ।।

३८. पूजा सो दया है इस बाबत :

३८. वें प्रश्नोत्तर में पूजा शब्द दयावाची है, और जिनपूजा अनुबंधे दयारूप ही है । इस का निषेध करने वास्ते जेठेने कितनीक कुयुक्तियां लिखी हैं सो मिथ्या हैं, क्योंकि जिनराज की पूजा जो श्रावक फूलादि से करते हैं वह स्वदया है । **श्रीआवश्यकसूत्र** में कहा है कि:-

अकसिण पवत्तगाणां विरयाविरयाणा एस खलु जुत्तो ।

संसारपयणुकरणे दव्वत्थए कूवदिट्ठंतो ।।१।।

अर्थ - सर्वथा व्रतों में प्रवृत्त विरताविरती अर्थात् श्रावक को यह पुष्पादिक से पूजाकरणरूप द्रव्यस्तव निश्चय ही युक्त उचित है, संसार पतला करने में अर्थात् घटाने में, क्षय करने में कूप का दृष्टान्त जानना ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊपर के पाठ में श्रावक को द्रव्यपूजा करने का भगवंत का उपदेश है, कूप के पानी समान भावशुचि जल है, और शुभ अध्यवसाय रूप पानी होने से अशुभबंध रूप मल करके आत्मा मलिन होती ही नहीं है, यह पूर्वोक्त सूत्र चौदह पूर्वधर का रचा हुआ है । जब ढूंढिये इस सूत्र को नहीं मानते हैं तो नीच लोगों के शास्त्र को मानते होंगे ऐसा मालूम होता है ।

जब पुष्पादिसे जिनराज की पूजा करने से कर्म का क्षय हो जाता है तो इस से उपरांत अन्य दूसरी दया कौन सी है ? जेठा लिखता है कि "यदि जिनमंदिर बनवाना, प्रतिमाजी स्थापन करना, यावत् नाटक पूजा करनी इन सर्व में हिंसारूप धूल निकलती है । तो पानी निकलने का कूप का दृष्टांत कैसे मिलेगा ।" उत्तर-हम ऊपर लिख चूके है उसी मुताबिक शुभ अध्यवसाय रूप जल से संयुक्त होने से अशुभबंध रूप मलसे आत्मा मलिन नहीं होती है, मतलब यह है कि जिनमंदर बनवाने से लेकर यावत् सत्रहभेदी पूजा करनी यह सर्व श्रावकों को शुभ भाव से संयुक्त है, इस से हिंसाक्षय करने को पीछे नहीं रहती है, हिंसा तो द्रव्यपूजा भावसंयुक्त करने से ही क्षय हो जाती है, और पुण्य की राशि का बंध होती जाती है । दृष्टांत जो होता है सो एकदेशी होता है । इस वास्ते यहां बंधरूप मल, और शुभ अध्यवसाय रूप जल, इतना ही कूप के दृष्टांत साथ मिलाने का है, क्योंकि जैसा आत्मा का अध्यवसाय हो वैसा ही उस को बंध होता है । जिनपूजा में जो फूल, पानी आदि की हिंसा कहती है, सो उपचार से है । क्योंकि पूजा करने वाले श्रावक के अध्यवसाय हिंसा के नहीं होते है । इस वास्ते फूल प्रमुख के आरंभ का अध्यवसाय विशेष करके नाश होता है । जैसे नही उतरते हुए मुनिमहाराजा का पानी के ऊपर दया का भाव है; अंशमात्र भी हिंसा का परिणाम नहीं; ऐसे ही श्रावकों का भी जल, पुष्प, धूप, दीप आदि से पूजा करते हुए पुष्पादिक के उपर दया का भाव है, हिंसा का परिणाम अंशमात्र भी नहीं ।

यदि कोई कुमति कहे कि "**मिथ्यात्व गुणठाणे** में पूजा करे तो उस को क्या फल हो ?" उत्तर-**श्रीविपाकसूत्र** में सुबाहुकुमार का अधिकार है । वहां कहा है कि पूर्वभव में सुबाहुकुमार पहिले गुणठाणे था । भद्रिक सरल स्वभावी था, उस ने सुपात्र में दान देने से बडा भारी पुण्य बांधा । संसार परित्त किया, और शुभ विपाक (फल) प्राप्त किया । इसी तरह मिथ्यात्वी हो, परंतु उदार भक्ति से जिन पूजा करे तो शुभ विपाक प्राप्त करे । इस बाबत **श्रीमहानिशीथसूत्र** में सविस्तार पूजा के फल कहे हैं, सो आत्मार्थी प्राणी को देख लेना ।

श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्र के पहिले संवरद्वार में दया के ६० नाम कहे हैं । उन में "पूया" अर्थात् पूजा सो भी दया का नाम है । इस वास्ते पूजा सो दया ही जाननी, इस बात को खोटी ठहराने वास्ते जेठा लिखता है कि "पूर्वोक्त" ६० नाम दया के जो हैं उन में 'यज्ञ' भी दया का नाम कहा है तो पशुवध सहित जो यज्ञ सो दया में कैसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ठहरेगा ?" उत्तर-पशुवध से संयुक्त जो यज्ञ है उस को दया में ठहराने का हम नहीं कहते हैं; हम तो श्रीहरिकेशी मुनिने जो यज्ञ (**श्रीउत्तराध्यनसूत्र** में) वर्णन किया है, और जेठे ने भी पृष्ठ (१६८) में लिखा है, उस यज्ञ को दया कहते हैं । इस वास्ते इस बाबत से जेठे की कुयुक्ति वृथा है ।

तथा हरिकेशी मुनि के वर्णन से यज्ञपूजा मुनियों के वास्ते है, और यहां तो श्रावक को द्रव्यपूजा का करना सिद्ध करना है, सो श्रावक के अधिकार में साधु की पूजा भद्रिक जीवों को भुलाने वास्ते लिखनी यह महाधूर्त्त मिथ्यादृष्टियों का काम है और मूढमति जेठा तीस में प्रश्नोत्तर में लिख आया है कि "हरिकेशी मुनि चार भाषा का बोलने वाला उसके वचन की प्रतीति नहीं"। तो फिर वही जेठा यहाँ हरिकेशी मुनि के वचन मानने योग्य क्यों लिखता है ? परंतु इस में अकेले जेठेका ही दोष नहीं हैं, किंतु जिन के हृदय की आंख न होती है, ऐसे सर्व ढूंढियों का हाल देखने में आता है ।

और पूजा, श्रमण, माहन, मंगल, ओच्छव प्रमुख दया के नाम हैं, इस बाबत जेठा कुयुक्तियां करता है परंतु सो वृथा है, क्योंकि वे नाम लोकोत्तर पक्ष के ही ग्रहण करने के है । लौकिक पक्ष के नहीं, क्योंकि लौकिक में तो अन्य दर्शनी भी साधु, आचार्य, ब्रह्मचारी, धर्म आदि शब्द अपने गुरु तथा धर्म के संबंध में लिखते हैं तो जैसे वह साधु आदि नाम जैनमत मुताबिक मंजूर नहीं होते हैं । वैसे ही यहां दया के नाम में भी पूजा से जिनपूजा समझनी, श्रमण माहण सो जैनमुनि मानने, मंगल सो धर्म गिनना, ओ छव सो धर्म के अठाई महोत्सवादि महोत्सव समझने । परंतु इस बाबत निकम्मी कुतर्क नहीं करनी । यदि पूजा में हिंसा हो और पूजा ऐसा हिंसा का नाम हो तो उसी सूत्र में हिंसाके नाम हैं, उनमें पूजा ऐसा शब्द क्यों नहीं है ? सो आंख खोल कर देखना चाहिये ।

श्रीमहानिशीथसूत्र का जो पाठ नवानगर के बेअकल ढूंढकों की तर्फ से आया हुआ था । **समकितसार** (शल्य) के छपाने वाले बुद्धिहीन नेमचंद कोठारीने जैसा था वैसा ही इस प्रश्नोत्तर के अंत में पृष्ठ १६९ में लिखा है । परंतु उस में इतना विचार भी नहीं किया है कि यह पाठ शुद्ध है या अशुद्ध ? खरा है कि खोटा ? और भावार्थ इस का क्या है ? प्रथम तो वह पाठ ही महा अशुद्ध है, और जो अर्थ लिखा है सो भी खोटा लिखा है । तथा उस का भावार्थ तो साधु को द्रव्यपूजा नहीं करनी ऐसा है, परंतु सो तो उस की समझ में बिलकुल आया ही नहीं है । इसी वास्ते उस ने यह सूत्रपाठ श्रावक के संबंध में लिख मारा है । जब ढूंढिये **श्रीमहानिशीथसूत्र** को मानते नहीं है तो उस ने पूर्वोक्त सूत्रपाठ क्यों लिखा है ? यदि मानते हैं तो इसी सूत्र के तीसरे अध्ययन में कहा है कि "जिनमंदिर बनवाने वाले श्रावक यावत् बारह में देवलोक जावें" यह पाठ क्यों नहीं लिखा है ? इसवास्ते निश्चय होता है कि ढूंढियों ने फक्त भद्रिक जीवों को फँसाने वास्ते समकितसार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(शल्य) पोथीरूप जाल गूंथा है । परंतु उस जाल में न फँसने वास्ते और फंसे हुए के उद्धार वास्ते हमने यह उद्यम किया है सो पढ़ कर यदि ढूंढिकपक्षी, निष्पक्ष न्याय से विचार करेंगे तो उन को भी सत्यमार्ग का परिचय हो जावेगा ।

॥ इति ॥

३९. प्रवचन के प्रत्यनीक को शिक्षा करने बाबत :

"जैनधर्मी कहते हैं कि प्रवचन के प्रत्यनीक को हनने में दोष नहीं" ऐसा ३९वें प्रश्नोत्तर में मूढ़मति जेठेने लिखा है, परंतु हम इस तरह एकांत नहीं कहते हैं । इस वास्ते जेठे का लिखना मिथ्या है । जैनशास्त्रों में उत्सर्ग मार्ग में तो किसी जीव को हनना नहीं ऐसे कहा है । और अपवाद मार्ग में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव देख के महालब्धिवंत विष्णुकुमार की तरह शिक्षा भी करनी पड़ जाती है; क्योंकि जैन शास्त्रों में जिनशासन के उच्छेद करने वाले को शिक्षा देनी लिखी है । **श्रीदशाश्रुतस्कंध** सूत्र के चौथे उद्देश में कहा है कि "**अवण्णवाइणं पडिहणित्ता भवइ**" जब ढूंढिये प्रवचन के प्रत्यनीक को भी शिक्षा नहीं करनी ऐसा कह कर दयावान् बनना चाहते हैं तो ढूंढिये साधु रेच (जुलाब) लेकर हजारों कृमियों को अपने शरीर के सुख वास्ते मार देते हैं तो उस वक्त दया कहाँ चली जाती है ?

जेठेने **श्रीनिशीथचूर्णिका** तीन सिंह के मरने का अधिकार लिखा है । परंतु उस मुनिने सिंह को मारने के भाव से लाठी नहीं मारी थी । उस ने तो सिंह को हटाने वास्ते यष्ठिप्रहार किया था । इस तरह करते हुए यदि सिंह मर गये तो उसमें मुनि क्या करे ? और गुरुमहाराजा ने भी सिंह को जान से मारने का नहीं कहा था । उन्हों ने कहा था कि जो सहज में न हटे तो लाठी से हटा देना । इस तरह चूर्णि में खुलासा कथन है । तथापि जेठे सरीखे ढूंढिये कुयुक्तियां करके तथा झूठे लेख लिख के सत्यधर्म की निंदा करते हैं सो उन की मूर्खता है ।

इस की पुष्टि वास्ते जेठेने, गोशाले के दो साधु जलाने का दृष्टांत लिखा है, परंतु सो मिलता नहीं है, क्योंकि उन मुनियों ने तो काल किया था, और पूर्वोक्त दृष्टांत में ऐसे नहीं था । तथा पूर्वोक्त दृष्टांत में साधुने गुरुमहाराजा की आज्ञा से यष्ठिप्रहार किया है । और गोशाले की बाबत प्रभुने आज्ञा नहीं दी है । इस वास्ते गोशाले के शिक्षा करने का दृष्टांत पूर्वोक्त दृष्टांत के साथ नहीं मिलता है ।

फिर जेठेने गजसुकुमाल का दृष्टांत दिया है । परंतु जब गजसुकुमाल काल कर गया तो पीछे उसने उपसर्ग करने वाले का निवारण ही क्या करना था ? अगर कृष्ण महाराजा को पहले मालूम होता कि सोमिल इस तरह उपसर्ग करेगा तो जरूर उसका निवारण करता, तथा गजसुकुमाल के काल करने पीछे कृष्णजी के हृदय में उस को शिक्षा करने का भाव था । परंतु उपसर्ग करने वाले को तो स्वयमेव शिक्षा हो चूकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी । क्योंकि उस सोमिल ने कृष्णजी को देखते ही काल किया है । तो भी देखो कि कृष्णजी ने उस के मृतक (मुरदे) को जमीन ऊपर घसीटा है, और उस की बहुत निंदा की है और उस मृतक को जितनी भूमि पर घसीटा उतनी जमीन उस महादुष्ट के स्पर्श से अशुद्ध हुई मान के उस पर पानी छिडकाया है ऐसा **श्रीअंतगडदशांगसूत्र में** कहा है । इस वास्ते विचार करो कि मृत्यु हुए बाद भी इस तरह की बिटंबना की है तो जीता होता तो कृष्णजी उस की कितनी विटंबना करते ! इस वास्ते प्रवचन के प्रत्यनीक को शिक्षा करनी शास्त्रोक्त रीति से सिद्धि है, विशेष कर के तीस वें प्रश्नोत्तर में लिखा है ।

॥ इति ॥

४०. देवगुरु की यथायोग्य भक्ति करने बाबत :

चालीसवें प्रश्नोत्तर में जेठा लिखता है कि "जैनधर्मी गुरु महाव्रती और देव अव्रती मानते हैं"। उत्तर-यह लेख लिख के जेठे ने जैनधर्मियों को झूठा कलंक दिया है, क्योंकि ऐसी श्रद्धा किसी भी जैनी की नहीं है । जेठा इस बात में भक्ति की भिन्नता को कारण बताता है परंतु जैनी जिस रीति से जिस की भक्ति करनी उचित है उस रीति से उस की भक्ति करते है । देवकी भक्ति जल, कुसुम से करनी उचित है, और गुरु की भक्ति वंदना नमस्कार से करनी उचित है । सो उसी रीति से श्रावकजन करते हैं ।

अक्ष की स्थापना का निषेध करने वास्ते जेठेने अक्ष को हाड लिख के स्थापनाचाय की अवज्ञा, निंदा तथा आशातना की है । सो उस की मूर्खता है । क्योंकि आवश्यक करते समय अक्ष के स्थापनाचार्य की स्थापना करनी **श्रीअनुयोगद्वारसूत्र** के मूल पाठ में कहा है कि "**अक्खे वा**" इत्यादि "**ठवण ठविज्जइ**" अर्थात् अक्षादि की स्थापना स्थापनी । सो उस मुताबिक अक्ष की स्थापना करते हैं, तथा श्री **विशेषावश्यक** सूत्र में लिखा है कि "**गुरु विरहम्मि य ठवणा**" अर्थात् गुरु प्रत्यक्ष न हो तो गुरु की स्थापना करनी और उस को द्वादशावर्त वंदना करनी । जेठे ने स्थापनाचार्य को हाड कह कर अशातना की है । हम पूछते भी है कि ढूंढिये अपने गुरु को वंदना नमस्कार करते हैं । उस का शरीर तो हाड, मास, रुधिर, तथा विष्टा से भरा हुआ होता है तो उस को वंदना नमस्कार क्यों करते हैं ? इस वास्ते प्यारे ढूंढियों ! विचार करो, और ऐसे कुमतियों की जाल में फंसना छोड़ के सत्यमार्ग को अंगीकार करो ।

ढूंढिये शास्त्रोक्त विधि अनुसार स्थापनाचार्य स्थापे विना प्रतिक्रमणादि क्रिया करते हैं । उन को हम पूछते हैं कि जब उन को प्रत्यक्ष गुरु का विरह होता है, तब वह पडिक्कमणे में वंदना किस को करते हैं ? तथा "**अहोकायं काय संफासं**" इस पाठ से गुरु की अधोकाया चरणरूप को स्पर्श करना है, सो जब गुरु ही नहीं तो अधोकाया कहां से आई ? तथा जब गुरु नहीं तो ढूंढिये वंदना करते हैं तब किस के साथ मस्तकपात करते हैं ? और गुरु के अवग्रह से बाहिर निकलते हुए "**आवस्सही**" कहते हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो जब गुरु ही नहीं तो अवग्रह कैसे होवे ? इस से सिद्ध होता है कि स्थापनाचार्य विना जितनी क्रिया ढूंढिये श्रावक तथा साधु करते हैं, सो सर्व शास्त्र विरुद्ध और निष्फल है ।

श्रावकजन द्रव्य और भाव दोनों की पूजा करते हैं । उन में जिनेश्वर भगवंत की जल, चंदन, कुसुम, धूप, दीप, अक्षत, फल और नैवेद्य आदि से द्रव्यपूजा जिस रीति से करते हैं उसी रीति से स्थापनाचार्य की भी जल, चंदन, बरास, वासक्षेप आदि से पूजा करते हैं । इस वास्ते जेठे ढूंढक का लिखना कि "स्थापनाचार्य को जल, चंदन, धूप, दीप कुछ भी नहीं करते हैं" सो झूठ है । और साधु मुनिराज जैसे अरिहंत भगवंत की भावपूजा ही करते हैं वैसे स्थापनाचार्य की भी भावपूजा ही करते हैं । इस वास्ते जेठे की कुयुक्ति वृथा है ।

इस प्रश्नोत्तर के अंत में जेठा लिखता है "सचित्त का संघट्टा देव जो तीर्थंकर उन को कैसे घटेगा ? "। उत्तर - जो भावतीर्थंकर हैं उन को सचित्त का संघट्टा नहीं है और स्थापनातीर्थंकर को सचित्त संघट्टा कुछ भी बाधक नहीं है । ऐसे प्रश्नों के लिखने से सिद्ध होता है कि जेठे को चार निक्षेपेका ज्ञान बिलकुल नहीं था ।

।। इति ।।

४१. जिनप्रतिमा जिनसरीखी है इस बाबत :

इकतालीस वें प्रश्नोत्तर में जेठे हीनपुण्यीने "जिनप्रतिमा जिन सरीखी नहीं" ऐसे सिद्ध करने वास्ते कितनीक कुयुक्तियां लिखी हैं । परंतु सो सर्व मिथ्या है; क्योंकि सूत्रो में बहुत ठिकाने जिनप्रतिमा को जिनसरीखी कहा है । जहाँ दो भाव तीर्थंकर को वंदना नमस्कार करने वास्ते आने का अधिकार है वहां वहां **"देवयं चेइयं पज्जुवासामि"** अर्थात् देव संबंधी चैत्य जो जिनप्रतिमा उसकी तरह पर्युपासना करूंगा ऐसे कहा है । तथा **श्रीरायपसेणी सूत्र** में कहा है **"धूवं दाऊण जिनवराणं"** यह पाठ सूर्याभ देवताने जिन-प्रतिमा पूजी तब धूप किया उस वक्त का है, और इस में कहा है कि जिनेश्वर को धूप किया और इस पाठ में जिनप्रतिमा को जिनवर कहा । इस से तथा पूर्वोक्त दृष्टांत से जिनप्रतिमा जिनसरीखी सिद्ध होती है । इस वास्ते इस बात के निषेधने को जेठे मूढ़मति ने जो आलजाल लिखा है सो सर्व झूठ और स्वकपोलकल्पित है ।

जेठा लिखता है कि "प्रभु जल, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र, भूषण वगैरह के भोगी नहीं थे और तुम भोगी ठहराते हो"। उत्तर - यह लेख अज्ञानता का है, क्योंकि प्रभु गृहस्थावस्था में तो सर्व वस्तु के भोगी थे । इस मुताबिक श्रावकवर्ग जन्मावस्थाका आरोप करके स्नान कराते हैं, पुष्प चढाते हैं, यौवनावस्था को आरोप के अलंकार पहनाते हैं, और दीक्षावस्था का आरोप करके नमस्कार करते है, इस वास्ते अरिहंत देव भोगी अवस्था में भोगी हैं, और त्यागी अवस्था में त्यागी हैं, भोगी नहीं । परंतु भोगी तथा त्यागी दोनों अवस्थाओं में तीर्थंकरत्व तो है ही, और उस से तीर्थंकरदेव गर्भ से लेकर निर्वाण पर्यंत पूजनीय ही हैं । इस वास्ते जेठे के लिखे दूषण जिनप्रतिमा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को नहीं लगते हैं । तथा ढूंढियों को हम पूछते हैं कि समवसरण में जब तीर्थंकर भगवंत विराजते थे तब रत्नजडित सिंहासन पर बैठते थे, चामर होते थे, सिर पर तीन छत्र थे, इत्यादि कितनीक संपदा थी, तो वह अवस्था त्यागी की हैं कि भोगी की ? जो त्यागी है तो चामरादि क्यों ? और भोगी हैं तो त्यागी क्यों कहते हो ? इस में समझने का तो यही है कि भगवंत तो त्यागी ही हैं, परंतु भक्तिभाव से चामरादि करते हैं । ऐसे ही जिनप्रतिमा की भी भक्तजन पूजा करते हैं । तो उस को देख के ढूंढियों के हृदय में त्यागी भोगी का शूल क्यों उठता है ? जेठा लिखता है कि "भगवंत को त्यागी हुई वस्तु का तुम भोग कराते हो तो उस में पाप लगता है" तथा इस बाबत अनाथी मुनि का दृष्टांत लिखा है । परंतु उस दृष्टांत का जिनप्रतिमा के साथ कुछ भी संबंध नहीं है । क्योंकि जिनप्रतिमा है सो स्थापनातीर्थंकर है । उस को भोगने न भोगने से कुछ भी नहीं हैं । फक्त करने वाले की भक्ति है । त्यागी हुई वस्तु नहीं भोगनी सो तो भावतीर्थंकर आश्री बात है । इस वास्ते यह बात वहाँ लिखने की कुछ भी जरूरत नहीं थी । तो भी जेठे ने लिखी है सो वृथा है । वस्त्र बाबत जेठे ने इस प्रश्नोत्तर में फिर लिखा है, सो इस का प्रत्युत्तर द्रौपदी के अधिकार में लिखा गया है । इस वास्ते यहां नहीं लिखते हैं ।

जेठे ने लिखा हे कि "जिनप्रतिमा जिनसरीखी है, तो भरत ऐरावत में पांचवें आरे तीर्थंकर का विरह क्यों कहा है ?" उत्तर - यह लेख भी जेठे की बेसमझी का है, क्योंकि विरह जो कहाता है सो भावतीर्थंकर आश्री है । जेठा ढूंढक लिखता है कि "एक क्षेत्र में दो इकट्ठे नहीं होवे, होवे तो अच्छेरा कहा जावे । और तुम तो बहुत तीर्थंकरों की प्रतिमा एकत्र करते हो"। उत्तर - मूर्ख जेठे को इतनी भी समझ नहीं थी कि दो तीर्थंकर इकट्ठे नहीं होने की बात तो भावतीर्थंकर आश्री है और हम जो जिन प्रतिमा इकट्ठी स्थापते हैं सो स्थापनातीर्थंकर है, जैसे सर्व तीर्थंकर निर्वाणपद को पाकर सिद्ध होते हैं तब वे द्रव्य तीर्थंकर होते हुए अनंत इकट्ठे होते हैं । वैसे स्थापनातीर्थंकर भी इकट्ठे स्थापे जाते हैं । तथा सिद्धायतन का विस्तार से अधिकार **श्रीजीवाभिगमसूत्र में** कहा है । वहां भी एक सिद्धायतन में एक सौ आठ जिनप्रतिमा प्रकटतया कही हैं । इस वास्ते जेठे का लिखा यह प्रश्न बिलकुल असत्य है । यदि स्थापना से भी इकट्ठा होना न हो तो जंबूद्वीप में (२६९) पर्वत न्यारे न्यारे (जुदे जुदे) ठिकाने हैं । उन सब को मांडले में एकत्र करके अरे ढूंढियों ! पोथी में क्यों बांधी फिरते हो ? तथा वह चित्राम लोगों को दिखाते हो, समझाते हो, और लोग समझते भी हैं । तो वे पर्वत जुदे जुदे हैं और शाश्वती वस्तुओं के एकत्र होने का अभाव है तो तुम इकट्ठे क्यों करते हो सो बताओ ? जेठा लिखता है कि "तीर्थंकर जहां विचरे वहां मरी और स्वचक्र-परचक्र का भय न होवे तो जिनप्रतिमा के होते हुए भय क्यों होता है ? "-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस तरह के कुवचनों से जेठा और अन्य ढूंढिये जिनप्रतिमा का महत्त्व घटाना चाहते हैं । परंतु मूर्ख ढूंढिये इतना भी नहीं समझते हैं कि वे अतिशय तो सिद्धांतकारने भावतीर्थंकर के कहे हैं, और प्रतिमा तो स्थापनातीर्थंकर है । इस वास्ते इस बाबत तुम्हारी कोई भी कुयुक्ति चल नहीं सकती है ।

।। इति ।।

४२. ढूंढक मति का गोशालामती तथा मुसलमानों के साथ मुकाबला :

४२ वें प्रश्नोत्तर में जेठे निन्हवने जैन संवेगी मुनियों को गोशाले समान ठहराने वास्ते (११) बोल लिखे है परंतु उन में से एक बोल भी जैन संवेगी मुनियों को नहीं लगता है । वे सर्व बोल तो ढूंढियों के ऊपर लगते हैं और इस से वे गोशालामति समान हैं ऐसे निश्चय होता है ।

१. पहिले बोल में जेठे ने मूर्खवत् असंबद्ध प्रलाप किया है, परंतु उस का तात्पर्य कुछ लिखा नहीं है । इस वास्ते उस के प्रत्युत्तर लिखने की कुछ जरूरत नहीं है ।

२. दूसरे बोल में जेठा लिखता है कि "ढूंढियों को जैनमुनि तथा श्रावक सताते हैं"। उत्तर-जैसे सूर्य को देख के उल्लू की आंखें बंद हो जाती हैं, और उस के मन को दुःख उत्पन्न होता है । वैसे ही शुद्ध साधु को देख के गोशालामति समान ढूंढियों के नेत्र मिल जाते हैं, और उन के हृदय में स्वयमेव संताप उत्पन्न होता है । मुनिमहाराजा किसी को संताप करने का नहीं इच्छते हैं । परंतु सत्य के आगे असत्य का स्वयमेव नाश हो जाता है ।

३. तीसरे बोल में "जैनधर्मियोंने नये ग्रंथ बनाये हैं" ऐसे जेठा लिखता है । परंतु जो जो ग्रंथ बने हैं, वह सर्व ग्रंथ गणधर महाराजा, पूर्वधारी तथा पूर्वाचार्यों की निश्रायसे बने हैं, और उन में कोई भी बात शास्त्रविरुद्ध नहीं है । परंतु ढूंढियों को ग्रंथ पढ़ने ही नहीं आते हैं तो नये बनाने की शक्ति कहां से लावें ? फक्त ग्रंथकर्ताओं की कीर्ति सहन नहीं होने से जेठे ने इस तरह लिख के पूर्वाचार्यों की अवज्ञा की है ।

४. चौथे बोल में "मंत्र, जंत्र, ज्योतिष, वैदक से आजीविका करते हो" ऐसे जेठे ने लिखा है । सो असत्य है, क्योंकि संवेगी मुनि तो मंत्र, जंत्रादि करते ही नहीं है । ढूंढिये साधु मंत्र, जंत्र, ज्योतिष, वैद्यक वगैरह करते हैं । नाम लेकर विस्तार से प्रथम प्रश्नोत्तर में लिखा गया है । इस वास्ते ढूंढियों का मत **आजीविकमत** ठहरता है ।

५. पांचवें बोल में "१४४४-बौद्धों को जला दिया" ऐसे जेठा लिखता है, परंतु किसी भी जैनमुनिने ऐसा कार्य नहीं किया है । और किसी ग्रंथ में जला दिये ऐसे भी नहीं लिखा है । इस वास्ते जेठे का लिखना झूठ है । जेठा इस तरह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोशाले के साथ जैनमति की सादृश्यता करना चाहता है, परंतु सो नहीं हो सकता है । किंतु ढूंढिये वासी सडा हुआ आचार, विदल वगैरह अभक्ष्य वस्तु खाते हैं । जिस से बेइंद्रिय जीवों का भक्षण करते हैं । इस से इन की तो गोशालामति के साथ सादृश्यता हो सकती है ।

६. छठे बोल में "गोशाले को दाह ज्वर हुआ तब मिट्टी पानी छिटका के साता मानी" ऐसे जेठा लिखता हे । उत्तर-यह दृष्टांत जैनमुनियों को नहीं लगता है, परंतु ढूंढियों से संबंध रखता है । क्योंकि ढूंढिये लघुनीति (पिशाब) से गुदा प्रमुख धोते हैं और खुशियां मनाले हैं[१] ।

७. सातवें बोल में जेठा लिखता है कि 'गोशाले ने अपना नाम तीर्थंकर ठहराया । अर्थात् तेईस हो गये और चौवीसवां मैं' ऐसे कहा । इसी तरह जैनधर्मी भी गौतम, सुधर्मा, जंबू वगैरह अनुक्रम से पाट बताते हैं"। उत्तर - जेठे का यह लेख स्वयमेव स्खलना को प्राप्त होता हैं । क्योंकि गोशाला तो खुद वीर परमात्मा का निषेध करके तीर्थंकर बन बैठा था । और हम तो अनुक्रम से परंपराय पाटानुपाट बता के शिष्यत्व धारण करते हैं । इस वास्ते हमारी बात तो प्रत्यक्ष सत्य है; परंतु ढूंढकमति जिनाज्ञा रहित नवीन पंथ के निकालने से गोशाले सदृश सिद्ध होते हैं ।

८. आठवें बोल में जेठा लिखता है कि "गोशालेने मरने समय कहा कि मेरा मरणोत्सव करना और मुझे शिबिका में रख कर निकालना । इसी तरह जैनमुनि भी कहते हैं"। उत्तर-जेठे का यह लिखना बिलकुल झूठ है, क्योंकि जैनमुनि ऐसा कभी भी नहीं कहते हैं । परंतु ढूंढिये साधु मर जाते हैं तब इस तरह करने का कह जाते होंगे कि मेरा विमान बना के मुझे निकालना, पांच झंडे रखना इस वास्ते ही जेठे आदि ढूंढियों को इस तरह लिखने का याद आ गया होगा ऐसे मालूम होता है इंद्र ने जिस तरह प्रभु का निर्वाण महोत्सव किया है, जैनमति श्रावक तो उसी तरह अपने गुरु की भक्ति के निमित्त स्वेच्छा से यथाशक्ति निर्वाणमहोत्सव करते हैं ।

९. नवमें बोल में स्थापना असत्य ठहराने वास्ते जेठे ने कुयुक्ति लिखी है । परंतु **श्रीठाणांगसूत्र** वगैरेह में स्थापना सत्य कही है । तो भी सूत्रों के कथन को ढूंढिये उत्थापते हैं । इस लिये वह गोशालेमती समान हैं ऐसे मालूम होता है ।

१०. दशवें बोल में जेठा लिखता है कि "क्रिया करने से मुक्ति नहीं मिलती है । भवस्थिति पकेगी तब मुक्ति मिलेगी, ऐसे जैनधर्मी कहते हैं"। यह लेख मिथ्या है, क्योंकि जैनमुनि इस तरह नहीं कहते हैं"। जैनमुनियों का कहना

१ यह तो प्रकट ही है कि जब रात्रि को पानी नहीं रखते तो कभी बडी नीति (पाखाना) हो तो जरूर पिशाब से ही गुदा धो कर अशुचि टालते होंगे । बलिहारी इस शुचि की ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो जैनसिद्धांतानुसार यह है कि ज्ञान सहित क्रिया करने से मोक्ष प्राप्त होता है, परंतु जो एकांत खोटी क्रिया से ही मोक्ष मानते हैं वे जैनसिद्धांत की स्याद्वाद शैली से विपरीत प्ररूपणा करने वाले हैं । और इसी वास्ते ढूंढिये गोशालापंथी सदृश सिद्ध होते हैं ।

११. ग्यारहवें बोल में जेठा लिखता है कि "जैनधर्मी जिनप्रतिमा को जिनवर सरीखी मानते हैं । इस से ऐसे सिद्ध होता है कि वे अजिन को जिन तरीके मानते हैं" उत्तर - पुण्यहीन जेठे का यह लेख महामूर्खतायुक्त है, क्योंकि सूत्र में जिनप्रतिमा जिनवर सरीखी कही है । और हम प्रथम इस बाबत विस्तार से लिख आए हैं, जब ढूंढिये देवीदेवताकी मूर्तियों को तथा भूतप्रेत को मानते हैं तो मालूम होता है कि फक्त जिनप्रतिमा के साथ ही द्वेष रखते हैं । इससे वे तो गोशालामति के शरीक [समान] सिद्ध होते हैं ।

ऊपर मुताबिक जेठे के लिखे (११) बोलों के प्रत्युत्तर हैं । अब ढूंढिये जरूर ही गोशाले समान है । यह दर्शाने वास्ते यहां और (११) बोल लिखते हैं ।

१. जैसे गोशाला भगवंत का निंदक था, वैसे ढूंढिये भी जिन प्रतिमा के निंदक हैं ।

२. जैसे गोशाला जिनवाणी का निंदक था, वैसे ढूंढिये भी जिनशास्त्रों के निंदक हैं ।

३. जैसे गोशाला चतुर्विधसंघ का निंदक था, वैसे ढूंढिये भी जैनसंघ के निंदक हैं ।

४. जैसे गोशाला कुलिंगी था, वैसे ढूंढिये भी कुलिंगी हैं । क्योंकि इनका वेष जैनशास्त्रों से विपरीत है ।

५. जैसे गोशाला झूठा तीर्थंकर बन बैठा था, वैसे ढूंढिये भी खोटे साधु बन बैठे हैं ।

६. जैसे गोशाले का पंथ सन्मूर्च्छिम था वैसे ढूंढियों का पंथ भी सन्मूर्च्छिम है क्योंकि इन की परंपरा शुद्ध जैनमुनियों के साथ नहीं मिलती है ।

७. जैसे गोशाला स्वकपोलकल्पित वचन बोलता था, वैसे ढूंढिये भी स्वक-पोलकल्पित शास्त्रार्थ करते हैं ।

८. जैसे गोशाला धूर्त्त था, वैसे ढूंढिये भी धूर्त्त हैं । क्योंकि यह भद्रिक जीवों को अपने फंदे में फंसाते हैं ।

९. जैसे गोशाला अपने मन में अपने आप को झूठा जानता था परंतु बाहिर से अपनी रूढि तानता था, वैसे कितनेक ढूंढिये भी अपने मन में अपने मत को झूठा जानते हैं परंतु अपनी रूढि को नहीं छोड़ते ।

१०. जैसे गोशाले के देवगुरु नहीं थे, वैसे ढूंढियों के भी देवगुरु नहीं है । क्योंकि इन का पंथ तो गृहस्थ का निकाला हुआ है ।

११. जैसे गोशाला महा अविनीत था, वैसे ढूंढिये भी जैनमत में महा अविनीत हैं ।

इत्यादि अनेक बातों से ढूंढिये गोशाले तुल्य सिद्ध होते हैं । तथा ढूंढिये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कितनेक कारणों से मुसलमानों सरीखे भी हो सकते हैं, सो वह लिखते हैं ।

१. जैसे मुसलमान नीला तहमद पहनते हैं, वैसे कितनेक ढूंढिये भी काली धोती पहनते हैं ।

२. जैसे मुसलमानों के भक्ष्याभक्ष्य खाने का विवेक नहीं है, वैसे ढूंढिये के भी वासी, संधान (अचार) वगैरह अभक्ष्य वस्तु के भक्षण का विवेक नहीं है ।

३. जैसे मुसलमान मूर्ति को नहीं मानते हैं, वैसे ढूंढिये भी जिनप्रतिमा को नहीं मानते हैं ।

४. जैसे मुसलमान पैरों तक धोती करते हैं, वैसे ढूंढिये भी पैरों तक धोती (चोलपट्टा) करते हैं ।

५. जैसे मुसलमान हाजी को अच्छा मानते हैं, वैसे ढूंढिये भी वंदना करने वाले को `हाजी' कहते हैं ।

६. जैसे मुसलमान लसण, प्याज अर्थात् प्याज, कांदा, गंडे खाते हैं, वैसे ढूंढिये भी खाते हैं ।

७. जैसे मुसलमानों का चालचलन हिंदुओं से विपर्यय है, वैसे ढूंढियों का चालचलन भी जैनमुनियों से तथा जैनशास्त्रों से विपरीत है ।

८. जैसे मुसलमान सर्व जाति के घर का खा लेते हैं, वैसे ढूंढिये भी कोली, भरवाड़, छींबे, नाई, कुम्हार वगैरह सर्व वर्ण का खा लेते हैं ।

इत्यादि बहुत बोलों से ढूंढिये मुसलमानों के समान सिद्ध होते हैं । और ढूंढिये श्रावक तो स्त्री के ऋतु के दिन न पालने से उन से भी निषिद्ध सिद्ध होते हैं[१] ।

।। इति ।।

४३. मुंह पर मुंहपत्ती बंधी रखनी सो कुलिंग है इस बाबत :

४३ वें प्रश्नोत्तरमें मुंह पर मुहपत्ती बांध रखनी सिद्ध करने वास्ते जेठेने कितनीक युक्तियां लिखी हैं । परंतु उन्हीं युक्तियों से वह झूठा होता है, और मुहपत्ती मुंहको नहीं बांधनी ऐसे सिद्ध होता है । क्योंकि जेठे ने इस बाबत मृगारानी के पुत्र मृगालोढीए को देखने वास्ते श्रीगौतमस्वामी को जाने का दृष्टांत दिया है, तो उस संबंध में श्रीविपाकसूत्र में खुलासा पाठ है कि मृगारानी ने श्रीगौतमस्वामी को कहा कि :-

"तुज्झेणं भंते मुहपत्तियाए मुहं बंधह"

अर्थ-'तुम हे भगवन् ! मुखवस्त्रि का से मुख बांध लेवो' इस पाठ से सिद्ध है कि गौतमस्वामी का मुख मुखवस्त्रिका से बांधा हुआ नहीं था । इस से विपरीत ढूंढिये

१ ढूंढनियां अर्थात् ढूंढक साध्वीयां - आरजा भी ऋतु के दिन नहीं पालती है ! प्रतिक्रमण करती है और सूत्रों को भी छूती हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुख बांधते हैं । और वह विरुद्धाचरण के सेवन करने वाले सिद्ध होते हैं ।

जेठा लिखता है "जो गोतमस्वामी ने इस वक्त ही मुंहपत्ती बांधी तो पहिले क्या खूले मुख से बोलते थे ? " उत्तर - अकल के दुश्मन ढूंढियों में इतनी भी समझ नहीं है कि उघाडे (खूले) मुख से बोलते थे ऐसा हम नहीं कहते हैं, परंतु हम तो मुंहपत्ती मुख के आगे हस्त में रख कर यत्नो से बोलते थे ऐसे कहते हैं । **श्रीअंगचूलियासूत्र** में दीक्षा के समय मुंहपत्ती हाथ में देनी कही है, यतः-

तओ सूरिहं तदानुणएहिं पिट्ठोवरि कूपरि विंठ्ठिएहिं रयहरणं ठावित्ता वामकरानामियाए मुहपत्तिलवं धरित्तु ।।

अर्थ - तब आचार्य की आज्ञा के होते हुए कूणी ऊपर रजोहरण रखे । रजोहरण की दशियां दक्षिण दिशी (सज्जे पासे) रखे, और वामें हाथ में अनामिका अंगुलि ऊपर ला के मुंहपत्ती धारण करे ।

पूर्वोक्त सूत्र में सूत्रकारने मुहपत्ती हाथ में रखनी कही है, परंतु मुंह को बांधनी नहीं कही है, ढूंढिये मुंहपत्ती मुंह को बांधते हैं इसलिये जिनाज्ञा के बाहिर हैं । **श्रीआवश्यकसूत्र** में तथा **ओघनिर्युक्ति** में (कायोत्सर्ग करने की विधि में) कहा है कि "**मुंहपोत्तियं उज्जु हत्थे**" अर्थात् मुखवस्त्रिका दाहिने हाथ में रखनी, इस तरह कहा है, तो भी ढूंढिये सदा मुंह को मुखपाटी बांध के फिरते हैं । इस वास्ते वे मूर्खशिरोमणि हैं ।

ढूंढिये मुंह को मुखपाटी बांध के कुलिंगी बनने से जैनमत के साधुओं की निंदा और हँसी कराते हैं । यदि वायुकाय की रक्षा वास्ते मुंह को पाटी बांधते हैं तो नाक तथा गुदा को पाटी क्यों नहीं बांधते हैं ? जेठा लिखता है कि "जितना पलता है उतना पालते हैं"। जब ढूंढिये जितना पले उतना पालते हैं तो मुख से तो ज्यादा नाक से वायुकाय के जीव हन जाते हैं । क्योंकि मुख से जब बोले और मुख की पवन बाहिर निकले तब ही वायुकाय की हिंसा का संभव हो सकता है । और नाक से तो व्यवधान रहित निरंतर श्वासोच्छ्वास बहा करता हैं । इस वास्ते मुंह को बांधने से पहले नाक को पट्टी क्यों नहीं बांधी ? और साधु के तो ६ काया की हिंसा करने का त्रिविध त्रिविध पच्चक्खाण होता है । तथापि जेठे के लिखे मुताबिक जब इतना भी पाल नहीं सकते हैं तो किस वास्ते चारित्र लेकर ऋषिजी बन बैठे हैं ? ।

ढूंढियो ! इससे तो तुम अपने मत से चारित्र की विराधना करने वाले सिद्ध होते हो ।

तथा ढूंढियों के ऋषि - साधु कों मुंह को मुखपाटी बांधा हुआ कौतुकी वेष देखकर किसी दो वक्त पशु डरते हैं, स्त्रियाँ डरती हैं, बालक डरते हैं, कुत्ते भौंकते हैं और मुंह को सदा पट्टी बांधने से असंख्याते सन्मूर्च्छिम जीव मरते हैं, निगोदीये जीव उत्पन्न होते हैं, इस से यह मालूम होता है कि ढूंढियों ने जीवदया के वास्ते मुखपट्टी नहीं बांधी है किंतु जीवहिंसा करने वाला एक अधिकरण (शस्त्र) बांधा है इस बाबत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पांचवें प्रश्नोत्तर में खुलासा लिखा गया है ।

।। इति ।।

४४. देवता जिनप्रतिमा पूजते हैं सो मोक्ष के वास्ते है इस बाबत :

४४. वें प्रश्नोत्तर में जेठा लिखता है कि "देवता जिनप्रतिमा पूजते हैं सो संसार खाते है" उत्तर - यह लेख मिथ्या है, क्योंकि **श्रीरायपरोणीसूत्र** में जिनप्रतिमा पूजने के फल का पाठ ऐसा है, यतः-

हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए अणुगामित्ताए भविस्सइ ।।

अर्थ - जिनप्रतिमा के पूजने का फल पूजने वाले को हित के तक, सुख के तक योग्यता के तक, मोक्ष के तक, और जन्मांतर में भी साथ आने वाला है ।

इस बाबत जेठे ने **श्रीआवश्यकनिर्युक्ति** का पाठ लिख के ऐसे दिखलाया है कि "अभव्य देवता भी जिनप्रतिमा को पूजते हैं । इस वास्ते सो संसार खाता है" उत्तर - फल की प्राप्ति भावानुसार होती है । अभव्यमिथ्यादृष्टि जो प्रतिमा पूजते हैं उन को अपने भावानुसार फल मिलता है और भव्यसम्यगदृष्टि पूजते हैंख उन को मोक्षफल प्राप्त होता है । जैसे जैनमत की दीक्षा अभव्यमिथ्यादृष्टियों को मोक्षदायक नहीं है, और भव्य सम्यगदृष्टियों को मोक्षदायक है । दोनों को फल जुदा जुदा मिलते हैं । जैसे जैनमत की दीक्षा सच्ची और मुक्ति का हेतु है, ऐसे ही जिनप्रतिमा भी भक्तजनों को मुक्ति का हेतु है । और उस के निंदक ढूंढकमति वगैरह को नरक का हेतु है अर्थात् जिन पापीजीवों के निंदकता के भाव हैं उनको तो जरूर नरक का फल प्राप्त होता है, और जिन के भक्तित्व के भाव हैं उनको जरूर मोक्षफल प्राप्त होता है ।

।। इति ।।

४५. श्रावक सूत्र न पढे इस बाबत :

४५. वें प्रश्नोत्तर में "श्रावक सूत्र पढे" इस बात को सिद्ध करने वास्ते जेठे ने कितनीक कुयुक्तियां लिखी हैं । परन्तु उन में से एक भी कुयुक्ति बन नहीं सकती है । उलटा उन्हीं कुयुक्तियों से वह झूठा होता है तो भी "*मिया गिर पडा लेकिन टांग ऊंची*" *इस कहावत के अनुसार जो मन में आया, सो लिख मारा है । और इस से जैसे 'डूबता आदमी झग को हाथ मारे' ऐसे किया है ।* इस बाबत लिखने को बहुत है । परन्तु ग्रंथ अधिक हो जाने से जेठे की कुयुक्तियों को ध्यान में न लेकर फक्त कितनेक सूत्रों के प्रमाणपूर्वक दृष्टांत लिख के श्रावक को सूत्र पढ़ने का निषेध सिद्ध करते हैं ।

श्रीभगवतीसूत्र के दूसरे शतक के पांचवें उद्देश में तुंगिया नगरी के श्रावकों के अधिकारमें कहा है, यत -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा अभिगयट्ठा विणिच्छियट्ठा ।।

अर्थ- प्राप्त करा है अर्थ जिन्हों ने, ग्रहण किया है अर्थ जिन्हों ने, संशय के होने पर पूछा है अर्थ जिन्हों ने, प्रश्न करके अर्थ निर्णय किया है जिन्हों ने, इस वास्ते निश्चित किया है अर्थ जिन्हों ने । इस तरह कहा परंतु **"लद्ध सुत्ता गहिय सुत्ता"** ऐसे नहीं कहा है तथा **श्रीव्यवहारसूत्र** के दश में उद्देशमें कहा है, यत -

तिवास-परियागस्स निग्गंथस्स कप्पइ आयारकप्पे नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए वा, चउवास-परियागस्स निग्गंथस्स कप्पति सूयगडे नामं अंगे उद्दिसित्तए वा, पंचवासपरियागस्स समणस्स कप्पति दसाकप्पववहारा नामज्झयणे उद्दिसित्तए, अट्ठवास-परियागस्स समणस्स कप्पति ठाणं समवाए नामं अंगे उद्दिसित्तए दसवास-परियागस्स कप्पति विवाहनामं अंगे उद्दिसित्तए एक्कारस-वास परियागस्स कप्पति खुड्डियाविमाणपविभत्ति महल्लिया विमाणपविभत्ति अंगचूलिया वग्गचूलिया विवाहचूलिया नामं उद्दिसित्तए, बारसवास-परियागस्स कप्पति अरुणोववाए वरुणोववाए गरुलोववाए धरणोववाए वेसमणोववाए वेलंधरोववाए अज्झयणे उद्दिसित्तए, तेरसवास-परियाए कप्पति उट्ठाणसुए समुट्ठाणसुए देविंदोववाए नागपरियावलिया नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए, चउदसवास परियागस्स कप्पति सुवण्ण-भावणा-नामं अज्झयणं उद्दिसित्तए, पन्नरसवास० कप्पति चारणभावणा नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए, सोलसवास० कप्पति तेयणिसग्गं नामं अज्झयणे उद्दिसत्तए, सत्तरसवास० कप्पति आसीविस-नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए, अट्ठारस वास० कप्पति दिट्ठिविसभावणानामं अज्झयणे उद्दिसित्तए, एगुण-वीसइवास-परियागस्स कप्पति दिट्ठिवाए नाम अंगे उद्दिसित्तए वीस-वास-परियाए समणे निग्गंथे सव्वसूआण वाइ भवति ।।

अर्थ - तीन वर्ष की दीक्षापर्याय वाले साधु को **आचारप्रकल्प** अर्थात् **आचरांगसूत्र** पढ़ना कल्पे हैं, चार वर्ष की दीक्षा वाले को **श्रीसूयगडांगसूत्र** पढ़ना कल्पे हैं । पांच वर्ष के दीक्षित को **दशाकल्प** तथा **व्यवहार** अध्ययन पढ़ने कल्पे हैं । आठ वर्ष की पर्याय वाले को **ठाणांग समवायांग** पढ़ना कल्पे है । दश वर्ष की पर्याय वाले को **श्रीभगवतीसूत्र** पढ़ना कल्पे है । इग्यारह वर्ष की पर्याय वाला साधु **खुड्डिया विमान प्रविभक्ति, महल्लिया विमानप्रविभक्ति, अंगचूलिया, वग्गचूलिया और विवाहचूलिया** पढे । बारह वर्ष की पर्याय वाला **अरुणोपपात, वरुणोपपात, गरुडोपपात, धरणोपपात, वैश्रमणोपपात** और **वेलंधरोपपात** पढे, तेरह वर्ष की पर्याय वाला **उवट्ठाणश्रुत समुट्ठाणश्रुत देवेंद्रोपपात** और **नागपरियावलिया** अध्ययन पढे । चौदह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष की पर्याय वाला **सुवर्णभावना** अध्ययन पढे, पंद्रह वर्ष की पर्याय वाला **चारणभावना** अध्ययन पढे । सोलह वर्ष की पर्याय वाला **तेयनिसग्ग** अध्ययन पढे । सत्रह वर्ष की पर्याय वाला **आशीविष अध्ययन** पढे, अठारह वर्ष की पर्याय वाला **दृष्टिविष भावना** अध्ययन पढे, उन्नीस वर्ष की पर्याय वाला **दृष्टिवाद पढे** और बीस वर्ष की पर्याय वाला **सर्व सूत्रों** का वादी हो ।

मूढमति ढूंढिये कहते हैं कि श्रावक सूत्र पढे तो उन श्रावकों के चारित्र की पर्याय कितने कितने वर्ष की है सो कहो ? अरे मूढ़मतियों ! इतना भी विचार नहीं करते हो कि सूत्र में साधु को भी तीन वर्ष दीक्षा पर्याय पीछे आचारांग पढ़ना कल्पे ऐसे खुलासा कहा है तो श्रावक सर्वथा ही न पढे ऐसा प्रत्यक्ष सिद्ध होता है ।

श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रके दूसरे संवरद्वार में कहा है कि-

तं सच्चं भगवंत तित्थगर सुभासियं दसविहं चउदस पुव्वीहिं पाहुडत्थवेइयं महरिसिणय समयप्पदिन्नं देविंद नरिंदे भासियत्थं ।

भावार्थ यह है कि भगवंत वीतराग ने साधु सत्य वचन जाने और बोले इस वास्ते सिद्धांत उन को दिये, और देवेंद्र तथा नरेंद्र को सिद्धांत का अर्थ सुन के सत्य वचन बोले । इस वास्ते अर्थ दिया इस पाठ में भी खुलासा साधु को सूत्र पढना और श्रावक को अर्थ सुनना ऐसे भगवंत ने कहा है । जेठा लिखता है कि "श्रावक सूत्र पढे तो अनंत संसारी होवे ऐसा पाठ किस सूत्र में है ? "उत्तर - **श्रीदशवैकालिकसूत्र** के षट्जीवनिका नामा चौथे अध्ययन तक श्रावक पढे, आगे नहीं; ऐसे **श्रीआवश्यकसूत्र** में कहा है । इस के उपरांत आचारांगादि सूत्रों के पढ़ने की आज्ञा भगवंत ने नहीं दी है, तो भी जो श्रावक पढते हैं वे भगवंत की आज्ञा का भंग करते हैं । और आज्ञाभंग करने वाला यावत् अनंत संसारी हो ऐसे सूत्रों में बहुत ठिकाने कहा है, और ढूंढिये भी इस बात कों मान्य करते है ।

जेठा लिखता है कि "**श्रीउत्तराध्ययनसूत्र** में श्रावक कों `कोविद' कहा है, तो सूत्र पढे बिना `कोविद' कैसे कहा जावे ? "

उत्तर - `कोविद' का अर्थ `चतुर - समझवाला' ऐसा होता है तो श्रावक जिन-प्रवचन में चतुर होता है । परंतु इस से कुछ सूत्र पढे हुए नहीं सिद्ध होते हैं। यदि सूत्र पढे होवें तो "**अधित**" क्यों नहीं कहा ? जेठा मंदमति लिखता है कि "**श्रीभगवतीसूत्र** में केवली आदि दश के समीप केवली प्ररूप्या धर्म सुन के केवलज्ञान प्राप्त करे उन को `सुच्चा केवली' केवली कहना ऐसे कहा है । उन दश बोलों में श्रावक श्राविका भी कहे हैं तो उनके मुख से केवली प्ररूप्या धर्म सुने सो सिद्धांत या अन्य कुछ होगा ? इस वास्ते सिद्धांत पढने की आज्ञा सब को मालूम होती है"। उत्तर - सिद्धांत पढ के सुनाना उसका नाम ही फक्त केवली प्ररूपित धर्म नहीं है परंतु जो भावार्थ केवली भगवंत ने बताया है सो भावार्थ कहना उस का नाम भी केवली प्ररूप्या धर्म ही कहलाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है । इस वास्ते जेठे की कल्पना असत्य है तथा **श्रीनिशीथसूत्र** में कहा है कि -

से भिक्खु अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा वाएइ वायंतं वा साइज्जइ तस्स णं चउमासियं ।।

अर्थ - जो कोई साधु अन्य तीर्थी को पढने दे, तथा गृहस्थी को वांचने दे अथवा वांचने देने में साहाय्य दे, उस को चौमासी प्रायश्चित्त आवे ।

इस बाबत जेठा लिखता है कि इस पाठ में अन्य तीर्थी तथा अन्य तीर्थी के गृहस्थ का निषेध है । परंतु वह मूर्ख इतना भी नहीं समझा है कि अन्य तीर्थी के गृहस्थ तो अन्य तीर्थी में आ गये तो फिर उसके कहने का क्या प्रयोजन ? इस वास्ते गृहस्थ शब्द से इस पाठ में श्रावक ही समझने ।

यदि श्रावक सूत्र पढ़ते हो तो **श्रीठाणांग सूत्र** के तीसरे ठाणे में साधु के तथा श्रावक के तीन तीन मनोरथ कहे हैं । उन में साधु श्रुत पढ़ने का मनोरथ करे ऐसे लिखा है । श्रावक के श्रुतपढ़ने का मनोरथ नहीं लिखा है । अब विचारना चाहिये कि श्रावक सूत्र पढ़ते हो तो मनोरथ क्यों न करें ? सो सूत्रपाठ यह है. - यतः -

तिहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ कयाणं अहं अप्पं वा बहुं वा सुअं अहिज्जिस्सामि कयाणं अहं एकल्लविहारं पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरिस्सामि कयाणं अहं अपच्छिममारणंतियं संलेहणा झूसणा झूसिए भत्तपाण पडिया इक्खिए पाओवगमं कालमणवक्कंखेमाणे विहरिस्सामि एवं समणसा सवयसा सकायसा पडिजागरमाणे निग्गंथे महाणिज्जरे पज्जवसाणे भवइ ।

अर्थ - तीन स्थान के श्रमणनिर्ग्रंथ महानिर्जरा और महापर्यवसान करे (वे तीन स्थान कहते हैं) कब मैं अल्प (थोडा) और बहुत श्रुत सिद्धांत पढूंगा ? १, कब मैं एकलविहारी प्रतिमा अंगीकार करके विचरूंगा ? २, और कब मैं अंतिममारणांतिक संलेषणा जो तप उस का सेवन कर के रुक्ष होकर भातपानी का पच्चक्खाण करके पादपोपगम अनशन करके मृत्यु की वांच्छा नहीं करता हुआ विचरूंगा ? ३, इस तरह साधु मन, वचन, काया तीनों करण करके प्रतिजागरण करता हुआ महा निर्जरा पर्यवसान करे ।

अब श्रावक के तीन मनोरथों का पाठ कहते हैं ।

तिहिं ठाणेहिं समणोवासए महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवई तंजहा कयाणं अहं अप्पं वा बहुं वा परिग्गहं चइस्सामि कयाणं अहं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि कयाणं अहं अपच्छिममारणंतियं संलेहणा झूसिय भत्तपाणपडिया इक्खिए पाओवगमं कालमणवक्कंखेमाणे विहरिस्सामि एवं समणसा सवयसा सकायसा पडिजागरमाणे समणोवासए महाणिज्जरे महापज्जव-साणे भवई ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ - तीन स्थान के श्रावक महा निर्जरा महा पर्यवसान करें तद्यथा कब मैं धनधान्यादिक नव प्रकार का परिग्रह थोडा और बहुत त्याग करूंगा ? १, कब मैं मुंड होकर आगार जो गृहवास उस को त्याग के अणगारवास साधुत्व अंगीकार करूंगा ? २, तीसरी संलेषणा का मनोरथ पूर्ववत् जानना ।

इस से भी ऐसै ही सिद्ध होता है कि श्रावक सूत्र पढे नहीं इत्यादि अनेक दृष्टांतों से खुलासा सिद्ध होता है कि मुनि सिद्धांत पढें और मुनियों को ही पढावे । श्रावकों को तो आवश्यक, दशवैकालिक के चार अध्ययन और प्रकरणादि अनेक ग्रंथ पढ़ने, परंतु श्रावक को सिद्धांत पढने की भगवंत ने आज्ञा नहीं दी है ।

॥ इति ॥

४६. ढूंढिये हिंसाधर्मी हैं इस बाबत :

इस ग्रंथ को पूर्ण करते हुए मालूम होता है कि जेठे ढूंढक का बनाया **समकितसार** नामा ग्रंथ गोंडल (सूबा काठियावाड) वाले कोठारी नेमचंद हीराचंद ने छपवाया है । उस में आदि से अंत तक जैनशास्त्रानुसार और जिनाज्ञा मुताबिक वर्तने वाले परंपरागत जैन मुनि तथा श्रावकों को (हिंसाधर्मी) ऐसा उपनाम दिया है । और आप दयाधर्मी बन गये हैं, परंतु शास्त्रानुसार देखने से तथा इन ढूंढियों का आचारव्यवहार, रीतिभांति और चालचलन देखने से खुलासा मालूम होता है कि यह ढूंढिये ही हिंसाधर्मी हैं और दया का यथार्थ स्वरूप नहीं समझते हैं ।

सामान्य दृष्टि से भी विचार करें तो जैसे गोशाले जमालि प्रमुख कितनेक निन्हवों ने तथा कितनेक अभव्य जीवों ने जितनी स्वरूपदया पाली है उतनी तो किसी ढूंढक से भी नहीं पल सकती है; फक्त मुंह से दया दया पुकारना ही जानते हैं, और जितनी यह स्वरूपदया पालते हैं उतनी भी इन को निन्हवों की तरह जिनाज्ञा के विराधक होने से हिंसा का ही फल देने वाली है । निन्हवों ने तो भगवंत का एक एक ही वचन उत्थाप्या है और उन को शास्त्रकार ने मिथ्यादृष्टि कहा है यत

पयमक्खरंपि एक्कंपि जो न रोएइ सुत्तनिद्धिट्ठं ।
से सं रोयंतोवि हु मिच्छदिट्ठी जमालिव्व ॥१॥

मूढ़मति ढूंढियों ने तो भगवंत के अनेक वचन उत्थापे है, सूत्र विराधे हैं, सूत्रपाठ- फेर दिये हैं । सूत्रपाठ लोपे हैं, विपरीत अर्थ लिखे हैं, और विपरीत ही करते हैं । इस वास्ते यह तो सर्व निन्हवों में शिरोमणिभूत हैं ।

अब ढूंढिये दयाधर्मी बनते हैं परंतु वे कैसी दया पालते हैं, गरज दया का नाम लेकर किस किस तरह की हिंसा करते हैं, सो दिखाने वास्ते कितनेंक दृष्टांत लिख के वे हिंसाधर्मी हैं, ऐसे सत्यासत्य के निर्णय करने वाले सुज्ञपुरुषों के समक्ष मालूम करते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. सूत्रों में उष्ण पानी का गरमीमें, श्याले में तथा चौमासे में जुदा जुदा काल कहा है । उस काल के उपरांत उष्ण पानीमें भी सचित्तत्व का संभव है, तो भी ढूंढिये काल के प्रमाण बिना पानी पीते हैं । इस वास्ते कालउल्लंघन किया पानी कच्चा ही समझना[१] ।

२. रात्रि को चुल्हे पर धरा पानी प्रातः को लेकर पीते हैं, जो पानी रात्रि को चुल्हा खुला न रखने वास्ते धरने में आता है । (प्रायः यह रिवाज गुजरात मारवाड, काठियावाड में है) जो कि गरम तो क्या परंतु कवोष्ण अर्थात् थोडा सा गरम होना भी असंभव है इस वास्ते वह पानी भी कच्चा ही समझना ।

३. कुम्हार के घर से मिट्टी सहित पानी लाकर पीते हैं जिस में मिट्टी भी सचित्त और पानी भी सचित्त होने से अचित्त तो क्या होना है परंतु यदि अधिक समय जैसे का वैसा पडा रहे तो उसमें बेइंद्रिय जीव की उत्पत्ति होने का संभव है ।

४. पाथियां थापने का पानी लाकर पीते हैं जो कि अचित्त तो नहीं होता है परंतु उस में बेइंद्रिय जीव की उत्पत्ति हुई दृष्टि गोचर होती है ।

५. स्त्रियों के कंचुकी (चोली) वगैरह कपडों का धोवण ला कर पीते हैं जिस में प्रायः जूव अथवा मरी हुई जू के कलेवर होने का संभव है । ऐसा पानी पीने से ही कई रिखों को जलोदर होने का समाचार सुनने में आया है[२] ।

६. पूर्वोक्त पानी में फक्त एकेंद्रिय का ही भक्षण नहीं है । परंतु बेइंद्रियों का भी भक्षण है । क्योंकि एसे पानीमें प्रायः पूरे निकलते है तथापि ढूंढियों को इस बात का कुछ भी विचार नहीं है । देखो इन का दयाधर्म[३] ! ! !

७. गतदिन की अथवा रात्रि की रखी अर्थात् वासी, रोटी, दाल, खिचडी वगैरह लाते हैं और खाते हैं । शास्त्रकारों ने उस में बेइंद्रिय जीवों की उत्पत्ति कही है ।

८. मर्यादा उपरांत का सडा हुआ आचार ला कर खाते हैं, उस में भी बेइंद्रिय जीवों की उत्पत्ति कही है ।

९. विदल अर्थात् कच्ची छास, कच्चा दूध तथा कच्चे दहीमें कठोल[१] खाते हैं

---

१ ढूंढिये धोवण का पाणी शास्त्रोक्त मर्यादारहित कच्चा ही पीते हैं ।

२ झूठे बर्तनों का धोवण, हलवाई की कडायोका पानी जिस मे से कई दफा कुत्ते भी पी जाते हैं जिस में मरी हुई मक्खियां भी होती हैं, सुनारों के कुंडो का पानी जिस में गहने आदि धोये जाते है, अतारों के अरकनि कालने का पानी इत्यादि अनेक प्रकार का गंदा पानी भी लेते है !

३ झूठे बर्तनों के धोवण में अन्नादि की लाग होने से तथा बाटी आदि के पानी में हाथ आदि के मैल आदि अशुचि होने से सम्मूर्च्छिम पंचेंद्रि की भी खूब दया पलती है !!!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस को शास्त्रकार ने अभक्ष्य कहा है और उस में बेइंद्रिय जीव की उत्पत्ति कही है । ढूंढकों को तो विदल का स्वाद अधिक आता है क्योंकि कितनेक तो फक्त मुफ्त की खिचडी और छास वगैरह खाने के लोभ से ही प्रायः ऋषजी बनते है, परंतु इस से अपने महाव्रतों का भंग होता है उस का विचार नहीं करते हैं ।

१०. पूर्वोक्त बोलों में दर्शाये मुताबिक ढूंढिये बेइंद्रिय जीवों का भक्षण करते हैं । देखिये इन के दयाधर्म की खूबी !

११. सूत्रों में बाईस अभक्ष्य खाने वर्जे हैं तो भी ढूंढिये साधु तथा श्रावक प्रायः सर्व खाते हैं । **श्रीअंगचूलियासूत्र** के मूलपाठमें कहा है, यत –

एवं खलु जंबु महाणुभावेहिं सूरिवरेहिं मिच्छत्तकुलाओ उस्सग्गोववाएणं पडिबोहिउण जिणमए ठाविया बत्तीस अणंतकायभक्खणाओ वारिया महु मज्ज मंसाई बावीस अभक्खणाओ णिसेहिया ।

अर्थ – ऐसे निश्चय हे जंबु ! महानुभावप्रधानाचार्यो ने मिथ्यात्वियों के कुल से उत्सर्गापवाद कर के प्रतिबोध के जिनमतमें स्थापन करे । बत्तीस अनंतकाय खाने से हटाये, और शहद, शराब, मांस वगैरह बाईस अभक्ष्य खाने का निषेध किया । शास्त्रकारों ने बाईस अभक्ष्य में एकेंद्रिय, बेइंद्रिय, तेइंद्रिय और निगोदिये जीवों की उत्पत्ति कही है तो भी ढूंढिये इन को भक्षण करते हैं ।

१२. ढूंढिये अपने शरीर से अथवा वस्त्रमें से निकली जुओं को अपने पहने हुए वस्त्रमें ही रखते हैं जिन का नाश शरीर की दाबसे प्रायः तत्काल ही हो जाता है यह भी दया का प्रत्यक्ष नमूना है ! !

१३. ढूंढिये साधुसाध्वी सदा मुंह के मुखपाटी बांधी रखते हैं । उस में वारंवार बोलने से थूंक के स्पर्श से सन्मूर्च्छिम जीव की उत्पत्ति होती है । और निगोदिये जीवों की उत्पत्ति भी शास्त्रकारो नें कही है । निर्विवेकी ढूंढिये इस वात को समझते हैं तो भी अपनी विपरीत रूढि का त्याग नहीं करते हैं । इस से वे सन्मूर्च्छिम जीव की हिंसा करने वाले निश्चय होते है ।

१४. कितनेक ढूंढिये जंगल जाते हैं तब अशुचि को राखमें मिला देते हैं । जिस में चूर्णिये जीवों की हिंसा करते हैं ऐसे जानने में आया है । यही इन के दयाधर्म की प्रशंसा के कारण मालूम होते हैं !

१५. ढूंढिये जब गोचरी जाते हैं तब कितनीक जगह के श्रावक उन को चौके से दूर खडे रखते हैं । मालूम होता है कि चौके में आने से वे लोक भ्रष्ट

१ जिस अनाज के दो फाड हो जावे और जिस के पीडने से तेल न निकले, ऐसा जो कठोल मांह, मूंगी, मोठ, चने, हरवे, मैथे, मसर, हरर आदि मिस्सा अनाज, उस की विदल संज्ञा है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होना मानते होंगे[१] दूर खडा होकर रिखजी सूझते हो ? ऐसे पूछकर जो देवे सो ले लेता है। इस से मालूम होता है कि ढूंढिये असूझता आहार ले आते हैं।

१६. ढूंढिये शहद खा लेते हैं, परंतु शास्त्रकार ने उस में तद्वर्ण वाले सन्मूर्च्छिम जीवों की उत्पत्ति कही है।

१७. ढूंढिये मक्खण खाते हैं। उस में भी शास्त्रकार ने तद्वर्णे जीवों की उत्पत्ति कही है।

१८. ढूंढिये लसून की चटनी भावनगर आदि शहरों में दुकान दुकान से लेते हैं। देखो इन के दयाधर्म की प्रशंसा ? इत्यादि अनेक कार्योंमें ढूंढिये प्रत्यक्ष हिंसा करते मालूम होते है। इस वास्ते दयाधर्मी ऐसा नाम धराना बिलकुल झूठा है। थोडे ही दृष्टांतों से बुद्धिमान और निष्पक्षपाती न्यायवान पुरुष समझ जावेंगे और ढूंढियों के कुफंदे को त्याग देंगे ऐसे समझ कर इस विषय को संपूर्ण किया है।

।। इति ।।

ग्रंथ की पूर्णाहुतिः ।

स्वांतं ध्वांतमयं मुखं विषमयं दृग्धूमधारामयी
तेषां यैर्न नता स्तुता न भगवन्मूर्ति न वा प्रेक्षिता
देवैश्चारणपुंगवैः सहृदयै रानंदितै र्वन्दिता ।
येत्वेतां समुपासते कृतधिय स्तेषां पवित्रं जनुः ।।१।। शार्दूलविक्रीडित वृत्तम्

भावार्थ - सम्यग्दृष्टि देवताओं ने और जंघाचारण, विद्याचारणादि मुनिपुंगवों ने शुद्ध हृदय और आनंद से वंदना करी है जिस को, ऐसी श्रीजिनेश्वर भगवंत की मूर्ति को जिन्हों ने नमस्कार नहीं किया है, उन का स्वांत जो हृदय अंधकारमय है, जिन्हों ने उस की स्तुति नहीं की है, उन का मुख विषमय है, और जिन्हों ने भगवंत की मूर्ति का दर्शन नहीं किया है, उन के नेत्र धूंयें की शिखा समान है; अर्थात् जिनप्रतिमा से विमुख रहने वालों के हृदय, मुख और नेत्र निरर्थक हैं। और जो बुद्धिमान् भगवंत की प्रतिमा की उपासना अर्थात् भक्तिपूजा आदि करते हैं उनका मनुष्यजन्म पवित्र अर्थात् सफल है।

इस पूर्वोक्त काव्य के सार को स्वहृदय में अंकित करके और इस ग्रंथ को आद्यंत पर्यंत एकाग्र चित्त से पढकर ढूंढकमती अथवा जो कोई शुद्धमार्ग गवेषक भव्यप्राणी

१ बेशक उन लोकों की बिलकुल नादानी मालूम होती है जो इन को अपने चौके में आने देते हैं क्योंकि प्रथम तो इन ढूंढियोंमें प्रायः जातिभांति का कुछ भी परहेज नहीं है, नाई, कुम्हार, छींबे, झीवर वगैरेह हरेक जाति को साधु बना लेते हैं, दूसरे रात्रि में पानी न होने से गुदा न धोते हों तो अशुचि हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक् प्रकार से निष्पक्षपात दृष्टि से विचार करेंगे तो उन को भ्रांति से रहित जैनमार्ग जो संवेग पक्ष में निर्मलता प्रवर्त मान है सो सत्य और ढूंढक वगैरह जिनाज्ञा से विपरीतमत असत्य है ऐसा निश्चय हो जावेगा; और ग्रन्थ बनाने का हमारा प्रयत्न भी तब ही साफल्यता को प्राप्त होगा ।

शुद्धमार्ग गवेषक और सम्यक्त्वाभिलाषी प्राणियों का मुख्य लक्षण यही है कि शुद्ध देव, गुरु और धर्म को पहचान के उन को अंगीकार करना और अशुद्ध देव, गुरु, धर्म का त्याग करना । परंतु चित्त में दंभ रख के अपना कक्का खरा मान बैठ के सत्यासत्य का विचार नहीं करना, अथवा विचार करने से सत्य की पहचान होने से अपना ग्रहण किया मार्ग असत्य मालूम होने से भी उस को नहीं छोड़ना, और सत्यमार्ग को ग्रहण नहीं करना, यह लक्षण सम्यक्त्व प्राप्ति की उत्कंठा वाले जीवों का नहीं है । और जो ऐसे हो, तो हमारा यह प्रयत्न भी निष्फल गिना जावेगा । इस वास्ते प्रत्येक भव्य प्राणी को हठ छोड़ के सत्यमार्ग के धारण करने में उद्यत होना चाहिये ।

यह ग्रन्थ हमने फक्त शुद्ध बुद्धि से सम्यक्दृष्टि जीवों के सत्यासत्य के निर्णय वास्ते रचा है । हम को कोई पक्षपात नहीं है, और किसी पर द्वेषबुद्धि भी नहीं है । इस वास्ते समस्त भव्यजीवों ने यह ग्रंथ निष्पक्षता से लक्ष में लेकर इस का सदुपयोग करना, जिस से वांचने वाले की और रचना करने वाले की धारणा साफल्य को प्राप्त हों ।

इति न्यायांभोनिधि-तपगच्छाचार्य श्रीमद्विजयानंदसूरि (आत्मारामजी)
विरचितः सम्यक्त्वशल्योद्धार-ग्रंथः समाप्तः ।।

卐 卐 卐

ढूंढक मत के शल्य को, दूर करे निरधार ।
सत्य नाम इस ग्रंथ का, समकीतशल्योद्धार ।।

卐 卐 卐

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढूंढक पंचविशी

[श्रीजिनप्रतिमा स्युं नहीं रंग, तेनो कबु न कीजे संग;] ए आंकणी

सरस्वती देवी प्रणमी कहेस्युं, जिनप्रतिमा अधिकार; ।
नवी माने तस वदन चपेटा, माने तस शणगार ।। श्री जिन ० १
केवल नाणी नहि चउनाणी, एणे समे भरत मोझार; ।
जिनप्रतिमा जिन प्रवचन जिननो, ए मोटो आधार ।। श्री जिन० २
एणे मूढे जिनप्रतिमा उथापी, कुमति हैयाफूट; ।
ते बिना किरिया हाथ न लागे, ते तो थोथाकूट ।। श्री जिन० ३
जिनप्रतिमा दर्शनथी दंसण, लहीये व्रतनुं ।
मूल तेही ज मूलकारण उथापे, शुं थयुं ए जगशूल ।। श्री जिन० ४
अभयकुमारे मूकी प्रतिमा, देखी आर्द्रकुमार; ।
प्रति बुझ्या संजम लइ सीध्या, ते साचो अधिकार ।। श्रीजिन ० ५
प्रतिमा आकारे मच्छ निहाली, अवर मच्छ सवि बुझे; ।
समकित पामे जातिस्मरणथी, तस पूरव भव सूझे ।। श्री जिन० ६
छट्ठे अंगे ज्ञाता सूत्रे द्रौपदीए जिन पूज्या; ।
एवा अक्षर देखे तोपिण, मूढमति नवी बुझ्या । श्री जिन० ७
चारणमुनिए चैत्य ज वांद्या, **भगवती** अंगे रंगे,
मरडी अर्थ करे तेणे स्थानक, कुमतितणे प्रसंगे ।। श्रीजिन ० ८
भगवतीअंगे श्रीगणधरजी, ब्राह्मीलिपि वंदे; ।
एवा अक्षर देखे तोपिण, कुमति कहो केम निंदे ।। श्री जिन० ९
चैत्य विना अन्य तीर्थी मुजने, वंदन पूजा निषेधे; ।
सातमें अंगे शाह आणंदे, समकित कीधुं शुद्धे ।। श्रीजिन० १०
सूर्याभदेवे वीरजिन आगल, नाटक कीधुं रंगे; ।
समकित दृष्टि तेह वखाणे, **रायपसेणी** उपांगे ।। श्री जिन ० ११
समकितदृष्टि श्रावकनी करणी, जिनवर बिंब भरावे; ।
ते तो बारमे देवलोक पहोंचे **महानिसीथे** लावे ।। श्री जिन ० १२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टापदगिरि उपर भरते, मणीमय बिंब भराव्या ।
एवा अक्षर **आवश्यक** सूत्रमां, गौतम वंदन आव्या ।। श्री जिन० १३
परंपरागत प्रतिमा पुस्तक, माने तेह ज नाणी, ।
नवी माने तेही ज अज्ञानी, एवी जिनवर वाणी ।। श्री जिन ० १४
ढूंढक वाणी कुमति से नाणी, सुणी मत भूलो प्राणी; ।
बोधि बीजनी करशे हाणी, केम वरश्यो शिवराणी ।। श्री जिन ० १५
खेतरपाल भवानी देरे, त्यां जावुं नवी वारे; ।
वीतरागनुं देहरुं वारे, ते कोण सूत्र आधारे ।। श्री जिन ० १६
मेलां कपडां मोढुं बांधे, घेर घेर भिक्षा फरता; ।
मांदा माणसनी पेरे थोडुं, बोले जाणे मरता ।। श्री जिन० १७
ढूंढत ढूंढत प्राणी, तो ही धर्म न पायो; ।
ते माटे ढूंढक कहेवाणा;, एले जन्म गमायो ।। श्री जिन ० १८
बाहीर काला मांही काला, जाणीए कालावाला; ।
पंचमें आरे दुष्ट ए प्रगटया, महामूढ विकराला ।। श्री जिन ० १९
भाव भेद ने तत्त्व न जाणे, दया दया मुख भाखे; ।
मुग्ध लोकने भ्रममां पाडी, तेने दुर्गति नांखे । श्रीजिन २०
भाष्य चूरणी टीका न माने, क्रेवल सूत्र पोकारे, ।
तै मांही निज मति कल्पना, बहु संसार वधारे ।। श्रीजिन ० २१
आगमनुं एक वचन उथापे, ते कहीए अनंत संसारी,
आखा जेओ ग्रंथ उथापे, तेहनी शी गति भारी ।। श्री जिन ० २२
चित्र लखी नारी जोवंता वाधे कामविकार, ।
तेम जिनप्रतिमा मुद्रा देखी, शुद्ध भाव विस्तार ।। श्री जिन० २३
ते माटे हठ छोडी भवीजन, प्रतिमा शुं दिल राखो, ।
जिनप्रतिमा जिनप्रवचन जिननो, अनुभवनो रस चाखो ।। श्रीजिन २४
ढूंढक पंचविशी में गाई नगर नांडोल मोझार; ।
जशवंत शिष्य **जिनेंद्र** पयंपे, हितशिक्षा अधिकार ।। श्री जिन ० २५

।। ढूंढक पंचवीशी संपूर्ण ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सवैये

माखन सहत पीव गसत असंख जीव, कुगुरु कुपंथ लीव यही वानी वाची है ।
विदल निगल रस गसत असंख तस, रसना रसक रस स्वादन में राची है ।
त्रसन की खान है संधान महा पापखान, जाने न अज्ञान एतो मूरी जैसे काची है ।
फेर मूढ़ दया दया रटत है रातदिन, दया का न भेद जाने दया तोरी चाची है ।।१।।

प्रथम जिनेश बिंब मूढमति करे निंद, मनमत धार चिंद लोग करे हासी है ।
गौतम सुधर्मस्वामी भद्रबाहु गुणधामी, उमास्वाति शुद्धख्याति निंद परे फासी है ।
हरिभद्र जिनभद्र अभैदेव अर्थ कीध, मलैगिरि हैमचंद्र छोर ओर भासी है ।
विना गुरु पंथ काढ़ जगनाथ मत फाढ़, फेर कहे दया दया दया तोरी मासी है ।।२।।

उसन उदक नित भोगत अमित चित, अरक सिरक लीत चख्खत अनाई है ।
चलत अनेक रस दधि तक्र कांजीकस, कंदमूल पूर कूर उतमति आइ है ।
बैंगन अनंतकाय खावत है दौर धाय, मनमें न घिन काय ऊंधी मति छाई है ।
फेर मूढ दया दया रटत है निशदिन, दया का न भेद जाने दया तोरी ताई है ।।३।।

लिखत सिद्धांत जैन मनमांही अति फैन, हिरदे अंधेर ऐन मूढ बहुताई है ।
अति ही किलेश कर लेही मन रोश घर, सात पन्ने छोर कर राड़ अति छाई है ।
मिथ्यामति वानी कहे पूरव न रीत गहे । मूढ़मति पंथ गहे दीक्षा मन ठाई है ।
विना गुरुवेश धर जिनमत दूर कर, फेर मूढ़ दया कहे लोके की लुगाई है ।।४।।

卐 卐 卐

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ सुमतिप्रकाश

बारह मास ।

(कुंडली छंद)

आदि ऋषभ जिन देव थी महावीर अरिहंत ।
जिनशासन चौवीस जिन पूजो वार अनंत ।
पूजो वार अनंत संत भव भव सुखकारी ।
संकट बंधन टूट गए निर्मल समधारी ।
जिन पडिमा जिन सारषी श्रावकव्रतनुं साध,
महावीर चौवीसमें ऋषभदेवजीआद ।

सवैया तेतीसा

चैत चितनुं सुधार प्रभु पूजा का विचार
समकित का आचार वीतराग जो वखानी है ।
लखसूतर की सार ठाम ठामअधिकार
वस्तु सतरां प्रकार अष्टद्रव्य से सुजानी है ।
देख सूतर उवाई पाठ अंबड बताई
पूजा ऐसी करो भाई ये तो मोक्ष की निशानी है ।
जेडे कुमति हैं धीठ प्रभु मुखडा ना दीठ
फिरें त्रसते अतीत मारे कुगुरु अज्ञानी है ।।१।।

कुंडली छंद

कारण विन कारज नहीं कारण कारज दोई,
कारण तज कारज करे मूल गवावे सोई,
मूल गवावे सोई नहीं आवश्यक जाने,
खूला फूलों पूज प्रभु ये पाठ बखाने,
जो कुमतिनर धीठ मुखों नहीं पाठ उच्चारण,
सो रुलदे संसार करे कारज बिन कारण ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सवैया

वैसाख वीसरो ना भाई प्रीत पूजा की बनाई
पूजा मोक्ष की सगाई सब सूत्र की सेली है,
चंवा मोतिया खेली कुंगु चंदन घसे ली
प्रभु पूजो मन मेली पूजा मोक्ष की सहेली है,
वीतराग जो बखानी प्राणी भव्य मन मानी
वाणी सूतरमें ठानी पूजे धन सो हथेली है,
जैसे मेघमें पपिया पिया पिया बोले
जिया छप्पे किरले खुड्डिया पूजा दुष्ट नुं दुहेली है ।।२।।

कुंडली छंद

मानो आज्ञा धर्म जिन आज्ञाधर्मसुमीत,
जो आज्ञा हृदये धरे सो सुमति की रीत,
सो सुमति की रीत नीत उववाई भाषी,
श्रावक घणे प्रमाण नगरी चंपा जी दासी,
जिनमंदिर जिनचैत्य घणे विध पूजा ठानो,
अर्थ सूत्र नित सुनो धर्म जिनआज्ञा मानो ।

सवैया

देख जेठ की जुदाई पाठ रख दे छिपाई करें
कूड की कमाई राह उलटा बतांव दे,
रुलें पापी सो अपार करें खोटा जो आचार
वगी धरमकी मार साध श्रावक कहां वदे,
झूठे बैन कहे जग सेवका से लैंदे
ठग सठ हठ कठ झग प्रभु मनमें न लांव दे,
जैसे रवि का प्रकाश नरनारी से हुलास नैन
उल्लू के विनाश देख पूजा नस जावंदे ।।३।।

कुंडली छंद

छाया जिनतरु बैठ के काटे तरु अविनीत,
पूजा से हिंसा कहे उलटी पकडे रीत,
उलटी पकडे रीते धीठ दुर्गति को जावें,
पभु मुख से वो चोर अर्थ सूत्र नहीं पावें,
जिनपडिमा स्वीकार उपासकदसा बताया,
श्रावक देख अनंद बैठ के तरु जिम छाया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सवैया

हाढ बोल दे हवान नहीं सूतर परमाण करें
उलटा ज्ञानपंथ आपना चलांव दे,
प्रभुआज्ञा न माने वोह कुलिंग रूप ठाने
उत सूतर बखाने मिथ्यादृष्टि को वधां वदे,
मुखों कहें हम साध करें ऐसे अपराध बैठे
डोब के जहाज पारदधि का न पांव दे,
जैसे मिसरी मिठाई मन गधे के ना भाई
प्रभुपूजा की रसोई बिन जनम गवांव दे ।।४।।

कुंडली छंद

मीतसु आचारंग की निर्युक्ति का ज्ञान,
पूर्ण सतगुरु हम मिले तिमर गए चढ भान,
तिमर गए चढ भान अर्थ जब पूर्ण पाये,
पूजायात्रा भेद सभी ये अर्थ बताये,
दूध बडो रस जगत मैं कुमति ज्वर ना पीत,
पीवत वो प्राण न हरे आचारंग सुमीत ।

सवैया

सुन सावण नकारे जैनसूतरों से न्यारे कहे
जैनी हम भारे ये पाखंड क्या मचाया है ।
कहें वीर के हुं साध करे सूतरा पराध
वीर प्रतिमा विराध ऐसी दुरदस छाया है ।
जिन सूतर बताये एक अखर मिटाये तो
नरकगति पाये पाप सठने बंधाया है ।
जिना सूतर हटाये पाठ उलटे सुनाये
हडताल से मिटाये तां का कौन छेडा आया है ।।५।।

कुंडली छंद

देख खुलासापाठ जो सूत्रमहानिसीथ,
जिनपडिमा से पूजिये उच्ची पदवी लीध,
उच्ची पदवी लीध अच्युतासुर पद पाये,
दशवैकालिक देख पाठ क्यों नैन छपाये,
साधु उस थां नहीं रहे नारी मूरत लेख,
ये अवगुण पडिमा सगुण पाठ खुलासा देख ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सवैया

देख भादरोजी भारी लगी कर्म की कटारी
करें नरक तैयारी खोटे रंगसंग दीन हैं,
समकित बन जारी शुद्ध बुद्ध गई मारी
टेर टरदी न टारी ऐसे जग में मलिन हैं ।
ऐसे उदय खोटे भाग स्वय देव से त्याग
अन्य देव करे राग जिन राज से वो छीन हैं,
देखो सठ की सठाई काक कारण उडाई
हाथे रतन चलाई ऐसे प्रतिमा सो हीन है ।।६।।

कुंडली छंद

धीर सतगुरु सिमरिये मारग दीयो बताय ।
ज्ञान करण संशयहरण वंदो ते चित्त लाय ।
वंदो ते चित्त लाय उत्तराध्ययन अनंदे,
निर्युक्ति का पाठ चैत अष्टापद वंदे ।
चरमशरीरी कथन करे त्रिभुवनस्वामीवीर
गौतमगिर गढ पर चढे सिमरिये गुरुसतधीर ।

सवैया

अस्सुं पुछ तुं असानुं असी दस्सीये तुसानुं
भम भूलियों तु कानुं ऐसे पूजाप्रभु पाइ है ।
जेडे सुगुरु हैं प्यारे रस टीका का विचारे
निरजुक्ति मूल सारे भासचूरण दिखाई है ।
देख पंचअंग बानी वीतराग जो वखानी
गणधरदेव मानी भव्यजीव मन भाई है ।
सोध सुगुरुसुजानी गुरु ग्यान की निशानी
बुद्धिविजय बतानी प्रभुपूजा चित्त लाई है ।।७।।

कुंडली छंद

ऐसा पाठ वखानिया महाकल्प की सार ।
साधु नित कर वंदना मंदिर जिन स्वीकार ।
मंदिर जिन स्वीकार आलसी जो ना जावें,
तो बेले का दंड साधु श्रावक से आवे ।
लखे न सूतरसार जीव तव माने कैसा,
कुगुरु न दसदे भेद वखाने पाठ ना ऐसा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सवैया

कत्ते कुगुरु कमाई मुखपटी जो बंधाई
किसे ग्रंथ न बताई ये कुगुरु की चलाई है ।
देखो कुमति की फाई भोले जीव ले फसाई
रीति धरम गवाई ऐसे नैन के अंधाई है ।
धागा कान में तनाई रूप दैत का बनाई
देख कूकर भुकाई आग्या वीर ना दुहाई है ।
पूजा हीरानग सार जौरी रख दे सुधार फैंके
मूरख गवार सठ पूजा सो न पाई है ।।८।।

कुंडली छंद

देखो नैन निहार के अर्थ सुनो श्रुतिदोय
बुद्धि विजय मुनीसजी विजयानंद जगजोय
विजयानंद जगजोय पाठ का अर्थ बतावें,
ज्ञाताजीमें कहा द्रौपदी पूजा पावें,
जिनचैत्यादि पूज स्वर्गमें लीनो लेखो,
ये समदिष्टन भई निहार नयन जब देखो ।

सवैया

देख मगर अभिमानी सार धर्म की न जानी
व्है नावा विना प्रानी दधि कौन पार लावेगा ।
ऐसे प्रभु की निंदाई जब नास तक आई
डूबे आप जो संगाई तुझे कोई न घडावेगा ।
जैसे जग में सलारा जब पृथवी में डारा
तब होत भार भारा फेर उडना न पावेगा ।
दास खुशीमन भाई प्रभु पूजो चित लाई
करो खिमत खिमाई ऐसा कारण बचावेगा ।।९।।

कुंडली छंद

करो सुगुरु का संग जो जानों सूतर सार ।
भगत करी सुरियाभ ने पडिमा पूजाधार ।
पडिमा पूजाधार । राय प्रसैनी भाषी,
देवसुरासुर इंदचंद प्रभु पूजा साखी ।
पावो तब समदिष्टि भगत जिन दाढा धरो,
सवी देव से कहा सुगुरु की संगत करो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सवैया

पोष पूजा कर प्यारी चढ़ हाथी की अंबारी
त्याग गधे की सवारी राम आतमा मिलाइये,
देख विजयजी आनंद चढे जगतमें चंद तेरे
काटे पापफंद मिल सम्यक् सुहाइये,
मुनि संत के महंत है अनंत गुणकंत
पभुआज्ञा सुहंत ऐसे सतगुरु ध्याइये,
घटामेघ की वरष मन मोर के हरष स्वान
जाने न परष कैसे सतगुरु पाइये ।।१०।।

कुंडली छंद

जानो आवश्यक कहे राय उदायन
भाष राणी तस परभावती निज धर मंदिर साष,
निजघर मंदिर साष आप नित पूजा कर दे
पुष्पालंकृत धूप दीप नैवेद सुधर दे,
ऐसा मरम सूत्र क्यों कुमत ना मानो
राय उदायन पाठ कहे आवश्यक जानो ।

सवैया

महा कुमति महंत हिये जरा बी ना संत करे
पाप सो अनंत मुखें दया दया आखदे,
दया का न जाने मरम छोड बैठे जैनधर्म
ऐसे करे दुष्ट करम मरम न चाख दे ।
मुखों पंडित कहावें पाठ छोड छोड जावें
अर्थ वाचना न आवे सो मनुक्त बैन आखदे ।
जैसे चंद की चंदाई चामचिड़ नैन खाई
सो चकोर मन भाई पूजा सुगुरु प्रकास दे ।

कुंडली छंद

कमला केतक भ्रमर जिम सूतर प्रीति आधार ।
भूंड कुमति जाने नहीं कमलसूत्र की सार ।
कमलसूत्र की सार चार निखेप वखाने,
ये अनुयोग दुवार नय सागर नहीं जाने,
भत्त पइन्ना पाठ जैनमंदिर कर अमला,
श्रावक जो बनवायें भ्रमर से जैसे कमला ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सवैया

फागण जो फूली वारी मिली वाणी सुधा प्यारी
फली सम्यक् उजारी ज्ञान बन सरकाईये,
नैन जैन के जगावो संग सुगुरु का चावो
वाना मर्म युत पावो नैन नींद की खुलाईये,
साखी सूतर की दाखी कछु निंदिया न भाखी
जेडे जैन अभिलाषी साखी भाखी न भूलाईये ।
करो सुगुरु संगाई रूप शिक्षा वरताई कुछ
डरो न डराई दास खुशी मन भाईये ।।१२।।

कुंडली छंद

दरवदरव सब जग दिसे भाव दिसे नहीं सोय
विना दरव थी ज्ञान कब ज्ञान दरव थी होय,
ज्ञान दरव थी होय दरव मुनि धार चरित्तर,
दरव सामायक ठवें दरव पूजा इम मितर,
अंत भाव जिन केवली जानें मन की सरव,
भावचिह्न कछु नहि दिसे दिसे जगत सब दरव ।

सवैया

मास आदित्य आनंद ऐसे संवत का छंद भूत
वन्ही गह चंद्र कृष्ण त्रोदशी वैशाख की ।
आदि अंत से विचार सबी दोष वमडार
भव्य सूतर आधार वानी सुधारस चाषकी ।
सुमत बन सर की कुमतमत हर की युगत
ज्ञान कर की भली हे शुभ भाष की ।
छोड झूठते जंजाल धरसूत्रमें ख्याल शहर
गुजरांजोवाल दास खुशी कहे लाषकी ।

कुंडली छंद

देख कुमति मन खिजो मत करो न रोस गुमान
जैसा सूत्रमें कहा तैसा दियो बखान,
तैसा दिया बखान जास नर मरम न भासे,
करे सुगुरु का संग नैन जग संसै नासै ।
पक्षपात तज देखिये खुशी सूतर की रेख,
जिनआज्ञा धर भाल पर खिजो न कुमति देख ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

रामबख्श के साथ शेरू जाती बानिया
लुदहानेवास बार मास सठ भाषियो ।
उलट ज्ञान की रीत जब हम वो अवणे सुनी
जो सूत्र की रीत तब हम भाषा ये करी ।

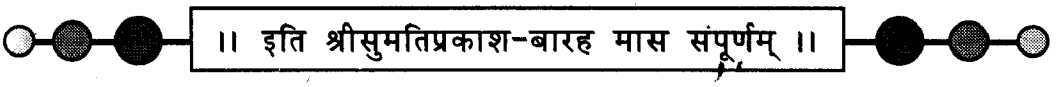

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्वशल्योद्धार ग्रंथ में ग्रंथकर्ता के द्वारा प्रदत्त संदर्भ ग्रंथ की सूचि

१. श्री अंगचूलिया सूत्र
२. श्री अंतगडदशांग सूत्र
३. श्री अनुयोगद्वार सूत्र
४. श्री अनेकार्थ संग्रह
५. अभव्यकुलक
६. आचार दिनकर
७. आचारांग सूत्र
८. आचारांग सूत्र निर्युक्ति
९. आवश्यक सूत्र
१०. आवश्यक निर्युक्ति
११. श्री ओघनियुक्ति सूत्र
१२. उत्तराध्ययन सूत्र तथा टीका
१३. उत्तराध्ययन सूत्र-निर्युक्ति तथा चूर्णि
१४. उपासकदशांग सूत्र
१५. उववाई सूत्र
१६. उपदेशमाला (धर्मदास गणिकृत)
१७. श्री कल्पसूत्र तथा वृत्ति
१८. कर्मग्रंथ
१९. कुमति विध्वंसन चौपाई
२०. गणिविजयपयन्ना
२१. चउसरणपयन्ना
२२. चन्दाविज्झयपयन्ना
२३. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र
२४. ज्योतिषशास्त्र
२५. जीवाभिगम सूत्र
२६. ज्योतिष्करंडक सूत्र
२७. जैनेन्द्र व्याकरण
२८. जीतकल्प सूत्र
२९. ठाणांग सूत्र
३०. ढूंढकपट्टावली
३१. तन्दुलवेआलिय पयन्ना
३२. दशवैकालिक सूत्र
३३. दशाश्रुतस्कंध सूत्र
३४. दीवसागरपन्नत्ती
३५. निशिथ सूत्र
३६. निशिथचूर्णि
३७. नंदीसूत्र
३८. पंचवस्तु प्रकरण
३९. पूजा पंचाशक
४०. पन्नवणा सूत्र
४१. प्रथम अनुयोग
४२. प्रश्न व्याकरण सूत्र
४३. प्रश्न व्याकरण वृत्ति
४४. बृहत्कल्प सूत्र
४५. भक्तपच्चक्खाण पयन्ना
४६. महापच्चक्खाण पयन्ना
४७. महानिशिथ सूत्र
४८. योगशास्त्र
४९. यति प्रतिक्रमण सूत्र (पगाम सज्झाय)
५०. रायपश्रेणि सूत्र
५१. लोगस्स सूत्र
५२. लघुनिशिथ सूत्र
५३. वग्गचूलिया सूत्र
५४. वास्तुशास्त्र
५५. विवेक विलास
५६. विशेषावश्यकभाष्य
५७. विपाक सूत्र
५८. विवाहपन्नत्ती (भगवती सूत्र)
५९. वीर स्तुतिरूप हुंडी स्तवन बालावबोध
६०. व्यवहार सूत्र
६१. व्यवहार भाष्य
६२. शत्रुंजय माहात्म्य
६३. समवायांग सूत्र
६४. सत्तरभेदी पूजा
६५. सूयगंडांग निर्युक्ति
६६. संघपट्टक
६७. संघाचार प्रकरण
६८. संघविजयपयन्ना
६९. संस्तारक पयन्ना
७०. सन्देह दोलावली
७१. हैमी कोश (अभिधान चिंतामणि नाममाला)
७२. ज्ञातासूत्र
७३. क्षेत्रसमास सूत्र
७४. श्राद्धविधि
७५. श्राद्धविधि कौमुदी
७६. श्राद्धदिनकृत्य
७७. श्रीपाल चरित्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनभक्ति : शास्त्र की नजरों से

तीर्थंकर भगवंत को वन्दन-पूजन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसी फल की प्राप्ति जिन प्रतिमा के वन्दन-पूजन करने से होती है । क्योंकि जिनप्रतिमा जिनवर तुल्य है तथा प्रतिमा द्वारा तीर्थंकर भगवंत की पूजा होती है ।

- 'जिनप्रतिमा की भक्ति से श्री शांतिनाथजी के जीव ने तीर्थंकर गोत्र बांधा' यह कथन प्रथमानुयोग में है ।
- 'श्री जिनप्रतिमा की पूजा करने से सम्यक्त्व शुद्ध होता है' यह कथन श्री आचारांग की निर्युक्ति में है ।
- 'थयथूइयमंगल' अर्थात् स्थापना की स्तुति करने से जीव सुलभबोधि होता है' यह कथन उत्तराध्ययन सूत्र में है ।
- 'जिनभक्ति करने से जीव तीर्थंकर गोत्र बांधता है' यह कथन श्रीज्ञाता सूत्र में है । जिनप्रतिमा की जो पूजा है सो तीर्थंकर की ही है और इससे वीसस्थानक में से प्रथम स्थान की आराधना होती है ।
- 'तीर्थंकर के नाम-गोत्र के सुनने का महाफल है' ऐसे श्रीभगवती सूत्र में कहा है और प्रतिमा में तो नाम और स्थापना दोनों हैं । इस वास्ते उसके दर्शन से तथा पूजा से अत्यंत फल है ।
- 'जिनप्रतिमा की पूजा से संसार का क्षय होता है' ऐसे श्री आवश्यक सूत्र में कहा है ।
- 'सर्वलोक में जो अरिहंत की प्रतिमा है, उनका कायोत्सर्ग बोधिबीज के लाभ वास्ते साधु तथा श्रावक करे' ऐसे श्री आवश्यक सूत्र में कहा है ।
- 'जिन प्रतिमा के पूजने से मोक्ष फल की प्राप्ति होती है' ऐसे श्रीरायपसेणी सूत्र में कहा है ।
- 'जिनमन्दिर बनवानेवाला बारवें देवलोक तक जावे' ऐसे श्रीमहानिशीथ सूत्र में कहा है ।
- 'श्रेणिक राजा ने जिनप्रतिमा के ध्यान से तीर्थंकर गोत्र बांधा है' यह कथन श्रीयोगशास्त्र में है ।
- 'श्री गुणवर्मा महाराज के सत्रह पुत्रों ने सत्रह भेद में से एक-एक प्रकार से जिनपूजा की हैं । और उससे उसी भव में मोक्ष गये है' यह अधिकार श्री सत्रहभेदी पूजा के चरित्रों में है, और सत्रहभेदी पूजा श्री रायपसेणी सूत्र में कहा है । इत्यादि अनेक जगह जिनप्रतिमा पूजने का महाफल कहा है ।

- पूज्याचार्यवर्य श्रीमद्विजयानन्दसूरि महाराज
सम्यक्त्व शल्योद्धार पृ.नं. १४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org